आई. एस. एस. एन. **0523-1418** **अंक 322, वर्ष 64**

मार्गशीर्ष—पौष—माघ

विक्रम संवत् 2082

भाषा

नवंबर—दिसंबर 2025

भारतीय ज्ञान परंपरा और विज्ञान लेखन विशेषांक

सत्यमेव जयते

केंद्रीय हिंदी निदेशालय

उच्चतर शिक्षा विभाग

शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

भाषा नवंबर—दिसंबर 2025

निदेशालय की योजनाओं का संक्षिप्त परिचय

भाषा/वार्षिकी/साहित्यमाला योजना

भाषा, वार्षिकी और साहित्यमाला केंद्रीय हिंदी निदेशालय के महत्वपूर्ण प्रकाशन हैं जो हिंदी में प्रकाशित होते हैं। इन प्रकाशनों का उद्‌देश्य विभिन्न भारतीय भाषाओं के बीच समानता की खोज करना और आदान–प्रदान का द्वार प्रशस्त करना है।

1. द्वैमासिक पत्रिका 'भाषा'

इसमें हिंदी और हिंदीतरभाषी लेखकों की मौलिक और अनूदित रचनाओं को प्रकाशित किया जाता है। विभिन्न साहित्यिक विधाओं यथा कहानी, कविता, यात्रा–वृत्तांत, संस्मरण, साक्षात्कार, विवेचनापूर्ण निबंधों और समीक्षा लेखों के अतिरिक्त पत्रिका में व्याकरण, भाषा, भाषा–विज्ञान और इन पर आधारित तुलनात्मक लेखों को भी प्राथमिकता दी जाती है। पत्रिका के सामान्य अंक के साथ–साथ समय–समय पर प्रासंगिक विषेशांक भी प्रकाशित किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त प्रख्यात साहित्यकारों की जन्मशती, पुण्यतिथि और विशेष अवसरों पर 'भाषा' में उससे संबंधित सामग्री का समावेश कर अंकों को विशिष्ट बनाया जाता है।

2. वार्षिक पत्रिका 'वार्षिकी'

इसमें संविधान–स्वीकृत सभी भारतीय भाषाओं में वर्ष भर में प्रकाशित साहित्य के आधार पर तथा हिंदी साहित्य की सभी विधाओं पर समीक्षात्मक, सर्वेक्षणात्मक आलेख प्रकाशित किए जाते हैं। इसका उद्‌देश्य इन सर्वेक्षणात्मक आलेखों के माध्यम से वर्षभर में भारतीय भाषाओं के साहित्य तथा हिंदी भाषा में प्रकाशित विभिन्न साहित्यिक विधाओं से संबंधित प्रकाशित पुस्तकों की जानकारी से पाठकों को अवगत कराना है। तुलनात्मक भारतीय साहित्य में रुचि रखने वाले सभी पाठकों और शोधार्थियों के लिए इसका प्रकाशन अत्यंत उपादेय है।

3. साहित्यमाला ग्रंथ

भारतीय भाषाओं की मूलभूत एकता को दृढ़ करने और साहित्य–प्रेमियों में विभिन्न भाषाओं के साहित्य की जानकारी और अभिरुचि में वृद्‌धि करने हेतु इसका प्रकाशन किया जाता है।

सत्यमेव जयते

भाषा

नवंबर–दिसंबर 2025

भारतीय ज्ञान परंपना और विज्ञान लेखन (विशेषांक)

प्रधान संपादक
हितेंद्र कुमार मिश्र

परामर्श मंडल
जी. गोपीनाथन
चक्रधर त्रिपाठी
श्रीराम परिहार
नरेंद्र मिश्र
किरण हजारिका
विशाला शर्मा
कुलदीप अग्निशेखर

संपादन मंडल
संपादक
एस. एम. नूर अहमद
सह-संपादक
अनुपम माथुर
नूतन पाण्डेय
सहायक संपादक
प्रदीप कुमार ठाकुर
रमना
रामअवतार
कार्यालयीन व्यवस्था
विक्रांत हुड्डा
संजीव कुमार

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

ISSN 0523-1418
भाषा (द्वैमासिक)
वर्ष : **64** अंक : **6** (**322**)

नवंबर–दिसंबर 2025

संपादकीय कार्यालय

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
उच्चतर शिक्षा विभाग
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.chdpublication.education.gov.in è www.chd.education.gov.in
ई–मेल : bhashaunit@gmail.com दूरभाषः 011-26105211è12

बिक्री केंद्र 1 :

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066 दूरभाषः 011-26105211è12 (सदस्यता हेतु ड्राफ्ट निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली के पक्ष में भेजें।)

बिक्री केंद्र 2 :

नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस, दिल्ली - 110054, वेबसाइट : www.deptpub.gov.in, ई–मेल : acop-dep@nic.in दूरभाष : 011-23817823è 9689 (सदस्यता हेतु ड्राफ्ट नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, दिल्ली के पक्ष में भेजें।)

निर्देश :

1. शुल्क सीधे www.bharatkosh.gov.in → Quick Payment → Ministry (007 Higher Educationn~èk → Purpose (Education receiptn~èk 211766 JR. ADMN. OFFICER CENTRAL HINDI DIRECTORATE में digital mode से जमा करवाई जा सकती है।
2. कृपया ऊपर दिए गए बिंदुओं के आधार पर सूचनाएँ देते हुए संलग्न प्रोफॉर्मा भरकर भेजें।
3. 'भाषा' पत्रिका की सदस्यता हेतु आवेदन पत्र निदेशालय की वेबसाइट www.chdpublication.education.gov.in से डाउनलोड किया जा सकता है।

मूल्य :			
1. एक प्रति का मूल्य	=	रु. 50.00	
2. वार्षिक सदस्यता शुल्क	=	रु. 250.00	
3. पंचवर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 1250.00	(डाक खर्च सहित)
4. दस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 2500.00	

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे भारत सरकार या संपादन मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

अनुक्रमणिका

प्रधान संपादक की कलम से

संपादकीय

आपने लिखा

आलेख

1.	भारतीय ज्ञान परंपरा	प्रो. श्रीराम परिहार	11
2.	भारतीय ज्ञान परंपराः संदर्भ और विचार	डॉ. आलोक सिंह	20
3.	भारतीय ज्ञान परंपरा के अन्वेषण में संस्कृत की भूमिका	प्रो. अजय कुमार मिश्र	25
4.	भारतीय ज्ञान परंपरा में भारतीयता के निर्वचन की समस्याएँ	डॉ. रमाकांत राय	38
5.	भारतीय ज्ञान परंपरा की समकालीन प्रासंगिकता	प्रो. पार्थ सारथी पाण्डेय	44
6.	भारतीय ज्ञान परंपरा के बहुआयाम और विज्ञान लेखन	प्रो. निर्मला एस. मौर्य	53
7.	प्राचीन भारतीय पांडुलिपियों में विज्ञान	प्रमोद भार्गव	61
8.	भारतीय ज्ञान परंपरा की अवधारणा का वैज्ञानिक स्वरूप	डॉ. दिनेश कुमार गुप्ता	67
9.	भारतीय ज्ञान परंपरा और लोक संस्कृति की वैज्ञानिकता	डॉ. रजनी प्रताप	79
10.	भारतीय ज्ञान परंपराः एक वैज्ञानिक परंपरा	प्रो. संध्या वात्स्यायन	87
11.	मणिपुर की पारंपरिक चिकित्सा पद्धति	प्रो. एलाङबम विजय लक्ष्मी	95
12.	भारतीय ज्ञान परंपरा और विज्ञान	प्रो. सी. जयशंकर बाबु	104
13.	भारत के मुख्य पंचाङ्ग, काल–गणना व भ्रांति	संजय गोस्वामी	113
14.	भारतीय ज्ञान परंपरा और ज्ञान–विज्ञान की विकास यात्रा	चेतनादित्य आलोक	121
15.	भारतीय ज्ञान परंपरा और हिंदी साहित्य में विज्ञान लेखन	डॉ. अमित सिंह	134
16.	भारतीय ज्ञान परंपरा की वैज्ञानिकताः विविध आयाम	डॉ. अनुशब्द	140
17.	भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित वैज्ञानिक उपलब्धियाँ	प्रो. रवि शर्मा मधुप	150
18.	प्राचीन भारतीय ग्रंथों में तकनीकी एवं वैज्ञानिक विकास का स्वरूप	राज बहादुर गुप्ता	156

19. भारतीय ज्ञान परंपरा में विज्ञानसम्मत सिद्धांतों का विवेचन	डॉ. राजीव रंजन	164
20. भारतीय ज्ञान परंपरा और जैन ग्रंथों की विज्ञान–विशिष्ट धारणाएँ	डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'	175
21. चरक संहिता की भाषा एवं शैली का वैशिष्ट्य	प्रो. अनूप कुमार गक्खड़	189
22. भारतीय ज्ञान परंपरा में पर्यावरणीय चेतना और उसका वैज्ञानिक आधार	डॉ. मनोज कुमार	196
23. मिथिला के सामाजिक–राजनीतिक दर्शन की बौद्धिक और वैज्ञानिक परंपरा: एक पुनर्विचार	डॉ. सुजीत ठाकुर	205
24. भारतीय ज्ञान परंपरा में पर्यावरणीय विज्ञान	शिवम	213
25. भारतीय परंपरागत ज्ञान साहित्य में खेल–विज्ञान	डॉ. सुधा पांडेय मधुबाला	221
26. भारतीय ज्ञान परंपरा: ज्ञान और विज्ञान का अनूठा समन्वय	डॉ. महेंद्र प्रजापति	229
27. भारतीय ज्ञान परंपरा: चिंतन एवं विज्ञान का समायोजन	डॉ. संगीता कुमारी	236

प्राप्ति स्वीकार	241
संपर्क सूत्र	242
सदस्यता फॉर्म	245

प्रधान संपादक की कलम से

भारत का वैज्ञानिक इतिहास केवल गौरवगाथा नहीं, बल्कि उस युग की वास्तविक उपलब्धियों का प्रमाण है जब ज्ञान, तर्क और प्रयोग एक साथ चलते थे। प्राचीन भारत में विज्ञान किसी विशेष वर्ग तक सीमित नहीं था, बल्कि यह समाज और संस्कृति का अंग था। ऋषि–मुनियों ने धर्म और दर्शन के साथ–साथ गणित, खगोल, चिकित्सा, रसायन, वास्तु, यांत्रिकी और ध्वनिविज्ञान सहित ज्ञान की सभी शाखाओं में गहन शोध किया और अपनी स्थापनाएँ स्थिर कीं। यही कारण है कि हमारे वाङ्मय वैज्ञानिक दृष्टि से समृद्ध हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा में दर्शन और अध्यात्म का गहरा संबंध है जिसने न केवल धर्म बल्कि विज्ञान, कला, राजनीति और दैनिक जीवन को भी प्रभावित किया है।

भारत की बौद्धिक विरासत हजारों वर्षों पुरानी है जिससे विविध विचारधाराएँ, आध्यात्मिक साधनाएँ और दार्शनिक सिद्धांत विकसित हुए। इसी परंपरा से आयुर्वेद, योग, खगोलशास्त्र, गणित, धातु विज्ञान और वास्तुशास्त्र जैसी पारंपरिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी की विधाएँ विकसित हुईं जिन्होंने मानव जीवन और प्रकृति के बीच संतुलन स्थापित किया। आज इन प्राचीन ज्ञान–प्रणालियों को आधुनिक विज्ञान और तकनीक के साथ जोड़कर सतत् विकास और वैश्विक कल्याण की दिशा में नए आयाम स्थापित किए जा रहे हैं।

भारतीय ज्ञान परंपरा और आधुनिकता के बीच गहरा संबंध है, विशेषकर आधुनिक विज्ञान के संदर्भ में। प्राचीन भारतीय विद्वानों द्वारा विकसित गणित, खगोलशास्त्र, चिकित्सा और धातुकर्म जैसे विज्ञान आज भी वैज्ञानिक सोच की नींव माने जाते हैं। इनका आधार केवल प्रयोग नहीं, बल्कि दार्शनिक चिंतन और अनुभवजन्य दृष्टिकोण था। आधुनिक विज्ञान जहाँ तकनीकी प्रगति पर केंद्रित है, वहीं भारतीय ज्ञान परंपरा उसे नैतिकता, संतुलन और मानव कल्याण की दिशा देती है। इस प्रकार भारतीय ज्ञान और आधुनिकता का संगम एक ऐसी समग्र वैज्ञानिक दृष्टि प्रस्तुत करता है जो केवल विकास नहीं बल्कि सतत् मानवीय प्रगति को भी सुनिश्चित करती है।

प्राचीन भारतीय ग्रंथों में अभियांत्रिकी और भौतिकी का भी उल्लेख मिलता है। रामायण और महाभारत में अनेक प्रसंग ऐसे हैं जो यांत्रिक ज्ञान और प्रक्षिप्त विज्ञान (Projectile Motion) के सिद्धांतों को स्पष्ट करते हैं। महाभारत और रामायण में धनुष और तीर चलाने के प्रसंग आधुनिक प्रक्षिप्त विज्ञान के सिद्धांतों

का उदाहरण हैं। अर्जुन और लक्ष्मण अपने बाणों की दिशा, वेग, कोण और दूरी का सही अनुमान लगाकर निशाना साधते हैं जिससे स्पष्ट होता है कि उस समय बल, वेग और गुरुत्वाकर्षण जैसी भौतिक अवधारणाओं की व्यावहारिक समझ थी।

आज जब भारत अंतरिक्ष, जैव प्रौद्योगिकी और डिजिटल विज्ञान के क्षेत्र में विश्व–नेतृत्व की ओर बढ़ रहा है, तब यह आवश्यक है कि हम अपने प्राचीन वैज्ञानिक ज्ञान से प्रेरणा लें। हमारे पूर्वजों ने यह सिद्ध किया था कि विज्ञान केवल आविष्कार नहीं बल्कि समाज, प्रकृति और मानवता के कल्याण का साधन है। यदि हम अपने प्राचीन ज्ञान की गहराई और आधुनिक तकनीक की गति को मिलाकर आगे बढ़ें, तो भारत न केवल वैज्ञानिक दृष्टि से अग्रणी बनेगा बल्कि मानवता के लिए संतुलन, शांति और प्रगति का मार्ग भी प्रशस्त करेगा। यही भारतीय वैज्ञानिक दृष्टि का सच्चा सार है– तर्क, प्रयोग और करुणा का संगम।

भारतीय ज्ञान परंपरा और संस्कृति सदियों से मानवता, नैतिकता और जीवन के मूल्यों का स्रोत रही है। रामायण, महाभारत, पुराण और अन्य ग्रंथ न केवल आध्यात्मिक और सामाजिक शिक्षाएँ देते हैं, बल्कि हमारे जीवन में कर्तव्य, सहिष्णुता और मानवता के सिद्धांतों को भी मजबूत करते हैं। भारत की लगभग सभी सुविकसित भाषाओं और बोलियों के पास अपनी अलग पहचान, इतिहास और संस्कृति है। इन भाषाओं ने विज्ञान, ज्ञान और व्यावहारिक समझ के क्षेत्र में अनोखा दृष्टिकोण विकसित किया है जिसे हम संजोकर और समाहित करके आधुनिक चुनौतियों के समाधान में उपयोग कर सकते हैं। आज जब हमारा देश वैश्वीकरण, तकनीकी प्रगति और पर्यावरणीय संकट जैसी चुनौतियों का सामना कर रहा है, तब यह अत्यंत आवश्यक हो गया है कि हम सभी भाषाओं और परंपराओं के ज्ञान को एकत्रित करें, पुनःकल्पित करें और रोचक एवं सुलभ तरीके से साझा करें। यह जिम्मेदारी हम सभी देशवासियों की है कि हम मिलकर अपनी सांस्कृतिक, भाषाई और वैज्ञानिक धरोहर को सुरक्षित, समृद्ध और जीवंत बनाएँ और इसे भावी पीढ़ियों के लिए संजोकर रखें ताकि वे भी इसमें योगदान देने और इसे आगे बढ़ाने के लिए प्रेरित हों। आशा है कि भाषा का यह अंक पारंपरिक विज्ञान की जिज्ञासा को और प्रखर करते हुए विचारों में नयी चेतना का संचार करेगा।

(हितेंद्र कुमार मिश्र)

संपादकीय

परंपरा कोई जड़ वस्तु नहीं है। यह एक सतत तथा निरंतर प्रवाहमान प्रक्रिया है। परंपरा की यह गतिशीलता ही इसे समय–सापेक्ष तथा प्रासंगिक बनाती है। परंपरा में समय तथा युग विशेष की साहित्यिक तथा सांस्कृतिक प्रवृत्तियाँ सन्निहित होती हैं। इसमें किसी देश विशेष की अंतरात्मा को सहज ही महसूसा जा सकता है। यह परंपरा भविष्य में उसकी ज्ञान–परंपरा का अभिन्न हिस्सा बन जाती है और कालांतर में उसकी समृद्ध विरासत के रूप में पहचानी जाती है। प्रत्येक देश की अपनी समृद्ध विरासत होती है जो उसकी ज्ञान परंपरा में सहज ही परिलक्षित होती है। परंपरा का यह गतिमान रूप सदैव प्रवाहित होता रहता है जो अपने प्रवाह के क्रम में कुछ तत्त्वों को जोड़ता हुआ तो कुछ पुरातन चीजों को छोड़ते हुए आगे बढ़ता रहता है। यही कारण है कि समय–समय पर इस परंपरा का मूल्यांकन आवश्यक होता है। परंपरा की इसी अनिवार्यता की ओर इशारा करते हुए रामविलास शर्मा जी अपने लेख 'परंपरा का मूल्यांकन' में कहते हैं कि "जो लोग साहित्य में युग परिवर्तन करना चाहते हैं, जो लकीर के फकीर नहीं है, जो रुढ़ियाँ तोड़कर क्रांतिकारी साहित्य रचना चाहते हैं, उनके लिए साहित्य की परंपरा का ज्ञान सबसे ज्यादा आवश्यक है।" वर्षों से संचित ज्ञान ही मिश्रित होकर किसी देश विशेष की अस्मिता का परिचायक बनता है और जिसके फलस्वरूप उसे वैश्विक परिदृश्य में एक अलग पहचान मिलती है। भारतीय ज्ञान–परंपरा को इस मामले में विशिष्ट स्थान प्राप्त है। यह प्राचीन भारतीय ज्ञान का समृद्ध और विविध भंडार है जिसमें धर्म, दर्शन, शास्त्र, अध्यात्म और विज्ञान से जुड़ी ऐसी अनूठी परंपराएँ अंतरगुंफित हैं जिसे एकवचन में व्याख्यायित नहीं किया जा सकता। भारतीय ज्ञान प्रणाली हजारों वर्षों के संग्रह, त्याग एवं संचय का अनूठा संकलन है जो प्राचीन धर्मग्रंथों तथा प्रगतिशील संतों, महात्माओं तथा विचारकों के सम्यक् प्रयास के फलस्वरूप विकसित एवं समृद्ध हुई है। इस ज्ञान परंपरा में भारत की श्रुति या मौखिक परंपरा का भी अद्भुत समन्वय है जो हमारी ज्ञान परंपरा के उत्कर्ष का प्रमाण है। यह केवल धर्म आधारित ज्ञान परंपरा नहीं है बल्कि इसमें ज्ञान और भक्ति का भी समाहार है जो मूल रूप से कर्म करने की प्रेरणा देती है। यही कारण है कि इसमें मानववाद, विश्वबंधुत्व तथा समरसता का भाव अंतर्निहित है।

भारतीय समाज ज्ञान आधारित समाज रहा है। प्रारंभ से ही इसमें शास्त्रार्थ, बहस, चर्चा तथा वैज्ञानिक चिंतन पर जोर दिया जाता रहा है। चरक, सुश्रुत आदि

विद्वान इसके स्तंभ रहे हैं। धर्म एवं चिंतन को छोड़ भी दें तो आज भी आयुर्वेद, दर्शन, गणित, खगोलशास्त्र, आयुर्विज्ञान, वास्तु और रसायन के क्षेत्र में विश्व भारतीय ज्ञान–प्रणाली का लोहा मानता है। ऐसे में यह आवश्यक है कि इस गौरवशाली ज्ञान–परंपरा को हम भारतीय भी पहचानें तथा अपनी भाषा, साहित्य और संस्कृति पर गर्व करें। हमारी पहचान वर्तमान की अपेक्षा हमारी समृद्धशाली अतीत और प्राचीन ज्ञान–प्रणाली से अधिक है। ऐसे में इसे सहेजना तथा इसके प्रगतिशील तत्त्वों को उजागर करना हमारा महत् दायित्व है। पश्चिम की तरह भारतीय ज्ञान–परंपरा एकांगी नहीं है बल्कि यह उदात्त, व्यापक तथा सर्वसमावेशी है। 'भाषा' पत्रिका के इस विशेषांक में भारतीय ज्ञान परंपरा पर केंद्रित विविध लेखों के जरिए इस चिंतनधारा के विविध पहलुओं को अलग–अलग दृष्टिकोण से उकेरने का प्रयास किया गया है। मुझे उम्मीद है कि यह विशेषांक आपके लिए ज्ञानवर्धक तथा संग्रहणीय बनेगा। आपके सुझावों का स्वागत है।

(एस. एम. नूर अहमद)

आपने लिखा

भाषा पत्रिका के सितंबर–अक्टूबर 2025 अंक को उपलब्ध कराने हेतु दिए गए लिंक के लिए आपका धन्यवाद। इसे देखकर मुझे अत्यंत प्रसन्नता हुई। मुझे विश्वास है कि विभिन्न विषयों पर गुणवत्तापूर्ण सामग्री से सुसज्जित यह अंक हिंदी–प्रेमियों, शोधकर्ताओं तथा पाठकों के लिए प्रेरणादायी सिद्ध होगा।

डॉ. शैलेश शुक्ला
सदस्य सचिव, नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति,
पन्ना (मध्य प्रदेश) एवं
उप प्रबंधक (राजभाषा), एनएमडीसी लिमिटेड,
हीरा खनन परियोजना
मझगवाँ,
पन्ना – 488001 (मध्य प्रदेश),

भाषा पत्रिका का जुलाई–अगस्त 2025 अंक हमेशा की तरह बेजोड़ है। हर पाठक के लिए भाषा पत्रिका अनिवार्य है जो हमारे संस्कारों को परिष्कृत करने के साथ ज्ञानवर्धक सामग्री को प्रस्तुत करती है। इसके लिए प्रबंधन समिति के साथ संपादकीय मंडल को भी बधाई कि लगातार बेहतरीन अंक निकल रहे हैं।

मैं चाहूंगा कि कोई एक अंक व्यंग्य–केंद्रित भी निकाला जाए ताकि राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर के व्यंग्यकार भी इससे जुड़ कर गौरवान्वित महसूस कर सकें।

डॉ ललित्य ललित
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

श्रद्धांजलि

हाल ही में कन्नड़ भाषा के सुचिंतित उपन्यासकार एवं मननशील दार्शनिक श्री संतेशिवरा लिंगन्नैया भैरप्पा 24 सितंबर, 2025 को परमज्योति में विलीन हो गए। भैरप्पा अपने गहन दार्शनिक चिंतन और सुद्रढ़ भारतीय सांस्कृतिक लेखन के कारण संपूर्ण भारतीय साहित्य जगत में एक जाज्वयतमान और प्रेरणादायक अशोक–स्तंभ थे।

31 अक्तूबर, 2025 को हिंदी साहित्य के युगद्रष्टा, प्रख्यात कवि, उपन्यासकार और समालोचक पद्मश्री प्रो. रामदरश मिश्र जी इस चराचर जगत को छोड़कर भूलोक से गमन कर गए। अपनी सहज, संवेदनशील और देशज अभिव्यक्ति से उन्होंने कविता, उपन्यास और निबंध सहित साहित्य की लगभग सभी विधाओं को समृद्ध किया। इसी वर्ष उन्हें साहित्य में अमूल्य योगदान के लिए पद्मश्री से सम्मानित किया गया था। उनके निधन से साहित्य जगत को एक अपूरणीय क्षति हुई है।

केंद्रीय हिंदी निदेशालय के भाषा परिवार की ओर से दोनों दिवंगत आत्माओं के प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि।

भारतीय ज्ञान परंपरा

✍ प्रो. श्रीराम परिहार

भारतीय ज्ञान परंपरा का उत्स वेदों से है। वेदों में ज्ञान–परंपरा पूर्व में वाचिक तथा बाद में शब्द में लिखित रूप में संकलित हुई। लेकिन इसके पूर्व ज्ञान की वाचिक या मौखिक परंपरा लोक में अवश्य रही होगी। लोक उस ज्ञान को परस्पर भाषा के द्वारा ही वाचिक रूप में संप्रेषित करता रहा होगा। स्पष्ट है कि भारतीय लोक के पास संस्कृत भाषा लोकभाषा के रूप में रही होगी। लोक के पास संस्कृत भाषा का समृद्ध स्वरूप रहा होगा। तभी तो उस भाषा को परिष्कृत कर वेदों और भारतीय वाङ्मय की रचना हुई है।

भारतीय ज्ञान परंपरा सनातन है। वह सनातन से निपजी है। इसका आधार सनातन तत्त्व हैं। सनातन वह है; जो चिरपुरातन है और चिरनवीन है। वह सनातन है, जो नित्य है, निरंतर है, शाश्वत है, स्थायी है। एष धर्मः सनातनः। इस संदर्भ में भारतीय ज्ञान परंपरा के चिंतन और व्यवहार पर आधारित धर्म भी सनातन है।

धर्म–चिंतन के केंद्र में नीति है। यह नीति एक ओर सत्य आधारित चिंतन से संयुक्त है। दूसरी ओर ऋत् आधारित प्रकृति–प्रसार से आलोकित है। सत्य–चिंतन की रेखा ऊँची उठते हुए ब्रह्म तक पहुँचती है। अपने ज्ञान–चिंतन में मनीषी उद्घोष करता है– सत्य ब्रह्म ही है। ब्रह्म ही सत्य है। ब्रह्म के ही दो शाश्वत आयाम–सत्य और ऋत् हैं। सत्य स्वयं सृष्टि के केंद्र में है। सृष्टि के निर्माण और परिचालन में ऋत् की आधार भूमि है। समस्त चराचर सृष्टि का स्रष्टा सत्य–ब्रह्म है। समस्त जड़–चेतन जगत की रचना ऋत् के अनुसार होती है। उसी से संचालन होता है। अतः यह चर–अचर जगत एक नियम से चल रहा है। वह शाश्वत–अटल नियम ही ऋत् है। अर्थात् सत्य या ब्रह्म, सूर्य–चंद्र–नक्षत्रों से परे कहीं ऊपर स्थित है। नीचे यह जगत उसी की रचना के रूप में पल्लवित है। स्वमेव चल रहा है। गीता के पंद्रहवें अध्याय में स्वयं भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं–

उर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पूर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्।।

इससे भारतीय ज्ञान परंपरा के दो बिंदु प्रकाशित होते हैं। एक यह कि ईश्वर है। दूसरा इस सृष्टि का निर्माण ईश्वर के द्वारा हुआ है। बहुत गहरे में भारतीय जीवन

के चरित्र–निर्माण के भी दो बिंदु आलोकित हैं। पहला–परमसत्ता के अस्तित्व का स्वीकार्य भाव। दूसरा मनुष्य के कर्ताभाव का विलोपन। ब्रह्म है। उसी की रचना मनुष्य है। मनुष्य का इस संसार में रचा हुआ कुछ नहीं है। मनुष्य उन कार्यों की रचना का निमित्त मात्र है। वह भी किसी की अनुपम रचना है। इससे मनुष्य के चरित्र में अहं भाव निःशेष होता है। मनुष्य भी परम प्रकृति की रचना में एक सदस्य है जैसे प्रकृति या जगत में अन्य जीव–प्रकृति सदस्य हैं। वह भी एक सदस्य मात्र है। सबके साथ वह है। प्रकृति है। उसके बीच मनुष्य है। प्रकृति से मनुष्य है। मनुष्य से प्रकृति नहीं है। इससे चरित्र में दूसरे के अस्तित्व के प्रति स्वीकृति आती है। उससे जुड़ा चरित्र–निर्माण का अगला बिंदु आता है–सहअस्तित्व। दूसरे के अस्तित्व की स्वीकृति में ही स्वयं का अस्तित्व अनुभव होता है। अस्तित्व की सुरक्षा भी होती है। ऋत् की प्रकृति–प्रवृत्ति ही सहअस्तित्व पर आधारित है। 'जियो और जीने दो' की भावधारणा ज्ञान और कर्म दोनों स्तरों पर यहीं से निकलती है। ऋग्वेद से निःसृत ज्ञान कहता है– संङ्गच्छध्वं संवदध्वम्। साथ चलो। साथ बोलो।

वेदों की अनेक सूक्तियाँ चरित्र–निर्माण के सूत्र प्रदान करती हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा की गंगोत्री वेद ही है। ऋग्वेद के दसवें मंडल के 129वें नासदीय सूक्त से ज्ञान की चमक–रेख प्रकाशित करती है– सत्–असत्, भूमि–पाताल, अंतरिक्ष–स्वर्ग, अमरता–मृत्यु, दिवस–रात्रि, कुछ नहीं था। बस एक ब्रह्म ही था। 'आनीदवातं स्वधया तदेकं'। उसी सत्य–ब्रह्म की इच्छा से ही यह जगत निर्मित है। तब मनुष्य के चरित्र निर्माण का एक तत्त्व और प्रकट होता है। सृष्टि में कोई अपनी इच्छा से नहीं है। अतः जन्म–मृत्यु की डोर कहीं और है। सृष्टि में कोई सुंदर–असुंदर, कोई सामान्य–विशिष्ट नहीं है। सौंदर्य दृष्टि में होता है। वस्तुएँ तो अपने अस्तित्व के साथ होती हैं। सृष्टि में सब हैं। अपने–अपने कर्म, अपने–अपने अस्तित्व, अपने–अपने लक्ष्य के साथ सब कर्मरत हैं। चरित्र का सुंदर बिंदु चमकता है कि सबके प्रति संवेदना के संबंध रखो। सब प्रकृति के हैं। सब में मनुष्य भी है। सब व्यापक स्तर पर एक का ही उत्पत्ति हैं। सब भाई–भाई हैं। सब एक सृष्टि–परिवार के सदस्य हैं। 'वसुधैव कुटुंबकम्' कहते और अनुभव करते ही दृष्टि बदल जाती है। दृष्टि बदलती है। व्यवहार भी तदनुरूप होता है। भारतीय ज्ञान परंपरा दृष्टि और व्यवहार दोनों को संवेदनात्मक और सर्वहितकारी बनाती है। चरित्र उत्तम होता है। आचरण की सभ्यता का जन्म होता है।

भारतीय ज्ञान परंपरा चरित्र का पथ बताते हुए कहती है कि जब सब एक से उत्पन्न हैं; तब वह एक सब में है। इसी ज्ञानधारा में अपने आचरण को मन, वचन, कर्म के स्तर पर धोते हुए संतों, भक्तों, विरागी, योगियों, सज्जनों, पूर्वजों ने कहा कि *'एक ज्योति का सकल पसारा'*। *'एक बूँद की रचना सारी'*। *'कबीर कुआँ एक है, पणिहारी अनेक'*। *'व्यापक विश्वरूप भगवाना'*। ज्ञान परंपरा के पथ पर चलते हुए

मध्यकाल या भक्तिकाल ने संपूर्ण भारतवर्ष में सांस्कृतिक चरित्र का निर्माण किया है। प्रभाव आज तक है। आज भी हम प्रकाश वहीं से ग्रहण करते हैं। इससे दृष्टि–विस्तार यह हुआ कि परमात्मा द्वारा सकल संसार है। तब संसार के प्रत्येक पदार्थ, प्रत्येक तत्त्व, प्रत्येक जीव, प्रत्येक मनुष्य में वह आत्मरूप स्थित है। चरित्र में एक अध्याय जुड़ता है– 'आत्मा सो परमात्मा'। परंपरा कहती है–*सोऽहम्। तत्त्वमसि।* गीता के अठारहवें अध्याय में श्रीकृष्ण कहते हैं– *ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन* तिष्ठति। चरित्र में समभाव और समदृष्टि के अध्याय जुड़ते हैं।

चारों वेदों के चार महावाक्य हैं। ऋग्वेद–अहंब्रह्मास्मि। यजुर्वेद–तत्त्वमसि। सामवेद–अयमात्मा ब्रह्म। अथर्ववेद–प्रज्ञानं ब्रह्म। इन चारों वाक्यों से निकली हुई ज्ञान परंपरा लौकिक व्यवहार में परिणत होकर जीवन–जगत को कौशल के आधार पर सुंदर और समृद्ध बनाती है। चरित्र निर्माण तो करती ही है। जैमिनी उपनिषद् में एक प्रसंग आता है–प्रजापति ने सृष्टि रचना के बाद अपनी प्रजा, पुत्रों को सामवेद का दान दिया। सामवेद का संबंध गीतों से, गायन से, संगीत से है। अर्थात् सामवेद शिल्प–कर्म है। गायन या संगीत भी शिल्प–कर्म है। यह शिल्प–कर्म जीवन के अनेक क्षेत्रों, कर्म–कौशल और कर्म–आचरण में रूपायित हुआ है। बहुत गहरे में चिंतन करने पर पाते हैं कि ज्ञान ही व्यवहार या कौशल रूप में शिल्प में ढलता है। प्रत्येक कार्य–कृति और कलाकृति में ज्ञान ही बज रहा है। उसी का संगीत झंकृत हो रहा है जैसा कि निराला की 'तुम और मैं' कविता में 'तुम तुंग हिमालय शृंग और मैं चंचल गति सुरसरिता' या अज्ञेय की 'असाध्य वीणा' कविता में झंकृत होता है। ज्ञान की धारा विभिन्न स्तरों पर नाना रूपों में अनेकविध कलाकृतियों में, शिल्प में ढलकर कर्म–कौशल के चरित्र का निर्माण करती है। एक कर्म–संस्कृति साकार होती है। यह संस्कृति चरित्र निर्माण में कलाकार या शिल्पी की प्रकृति में गहरे बैठ जाती है। वह शिल्पी का स्वभाव बन जाती है। स्वभाव व्यक्तित्व का निर्माण तो करता ही है, वह चरित्र का स्थायी भाव भी बन जाता है।

प्रत्येक जीव और प्रत्येक मनुष्य कोई न कोई गुण–विशेष लेकर ही जन्म लेता है। प्रकृति उसे किसी–न–किसी गुण–धर्म के साथ ही पैदा करती है। इसे ही विशेष संदर्भ में प्रतिभा भी कह सकते हैं। प्रतिभा से ही चिंतन की एक किरण ऊँची सीधी अंतरिक्ष और द्युलोक के पार जाती है। दूसरी से कौशल का सहज विस्तार होता है। इसमें बुद्धि, मेधा, ऋतंभरा, प्रज्ञा अपने–अपने क्षेत्रों में साधक साधना के स्तरों के अनुसार कार्य करती हैं। प्रज्ञा अपनी चरम अवस्था में मुक्त भी करती है। परा और अपरा दोनों विद्याओं के सूत्र अथर्ववेद के सारवाक्य 'प्रज्ञानं ब्रह्म' से ही निकलते हैं। प्रज्ञा ही अपने कर्म और कौशल के रूप में विद्या में रूपांतरित और प्रमाणित होती है। तत्त्व चिंतन या ब्रह्म–चिंतन के सारे आयाम परा विद्या क्षेत्र के हैं। अपरा विद्या में

दृश्यमान जीवन–जगत से सारे क्षेत्र आते हैं। इस अपरा विद्या का उत्तम और मंगल क्षेत्र ही धर्म, दर्शन, अध्यात्म, विज्ञान, इतिहास, साहित्य, कला, संस्कृति, वाङ्मय, ज्योतिष शास्त्र, खगोल विज्ञान, राजनीति विज्ञान, अर्थशास्त्र, समाज शास्त्र, नृतत्त्व शास्त्र के रूप में विस्तारित होता है। ये सब चरित्र–निर्माण के विवेकमय उपादान हैं जिनसे मनुष्य होने के अर्थ खुलते हैं। जीवन–जगत के रहस्यों के अबूझ पथ आलोकित होते हैं। तब विद्यावान चरित्र की चौपाल से उद्घोष करता है– 'सा विद्या या विमुक्तये'।

परा विद्या और अपरा विद्या के क्षेत्रों में सही मार्ग पर चलते हुए चरित्र का सुदृढ़ विकास होता है। असल बात है दृष्टि के सौंदर्य का सँवरना और उसके आधार पर आत्मविस्तार होना। 'अस विवेक जब देहिं विधाता' तब सनातन को जानने–समझने का सहज भाव चरित्र में आता है। उत्पत्ति निर्माण की प्रक्रिया समझ में आती है। स्वयं को सही रूप में या प्रकृत रूप में या वास्तविक रूप में जानने की सहज प्रकृति होती है। तब चरित्र का उदात्त रूप होता है। ऐसे ही अगले चरण में जन, भूमि, प्रकृति, परिवेश के प्रति व्यवहार के संस्कार प्रकट होते हैं। संस्कार नाना अनुष्ठान कराते हैं। सत्य का व्यावहारिक स्वरूप चरित्र में प्रविष्ट होता है। यह प्रविष्टि इतनी गुपचुप होती है कि पता नहीं चलता, पर चरित्र स्वयं उसका परिचय देने लगता है।

धर्म का सही रूप चरित्र में चरितार्थ होने लगता है। धर्म के चार चरण सत्य, दान, तप, दया अनुष्ठान या कर्म के रूप में संपन्न होते हैं। इससे चरित्र में सहिष्णुता झलकती है। समभाव और समदृष्टि से जीवन–जगत को देखने की बान आ जाती है। तब चरित्र स्तर पर ही प्रकट होने लगता है–सब एक की ही माया है। एक से ही अनेक हुए हैं। यह भी समझ में आता है कि यहाँ विविधता में एकता नहीं; एक का ही वैविध्य है। सब में एक ही बैठा है। एक ही अस्तित्व अवस्थित है। चरित्र में, फिर व्यवहार में, व्यक्तित्व में सामंजस्य का गुण आता है। सर्वसमावेशी संस्कृति और राष्ट्रीय चरित्र विहँसते हैं। 'मैं नहीं, मेरे साथ तुम भी हो' का विचार चरितार्थ होता है। चरित्र–विभूषित व्यक्तित्व हिंसा से अहिंसा के मार्ग पर बढ़ जाता है। वह पशु बुद्धि से ऊपर उठकर ऋतंभरा, प्रज्ञा के स्तर पर पहुँच जाता है। शक्तिशाली ही जीवित रहेगा; नहीं; सब जीवित रहें। यह चरित्रगत ऊँचाई और विस्तार तब होता है जब मानव ज्ञान परंपरा की नर्मदा में डुबकी लगाकर निखरता है और आत्मानुभव करता है–बल के विकास के साथ–साथ; आत्मा का विस्तार जीवन की चिंतामणि है। पूर्ण को पाने के लिए पूर्ण–ज्ञान मार्ग पर चलना ही होगा। ज्ञान–चरित्र ही जीवन–मूरि है, जो अपूर्ण को संपूर्ण बना सकती है।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

हमारी भारतीय ज्ञान परंपरा संपूर्ण तक पहुँचने और उसे पाने का सुगम मार्ग बताती है। वह मार्ग है— पुरुषार्थ चतुष्ट्य को चरित्र स्तर पर उतारकर क्रियात्मकता देने का मार्ग। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इसमें से त्रिवर्ग—धर्म, अर्थ, काम मानव क्रिया से ही सधते हैं। सधकर फलित होते हैं। ज्ञान परंपरा कहती है कि धर्म और मोक्ष के बीच में अर्थ और काम का स्थान है। ये परस्पर जुड़े हुए हैं। इन्हें परस्पर संतुलित चरितार्थ करना ही सहज मार्ग पर चलना है। अर्थ धर्म—सम्मत तरीके से अर्जित किया जाए। उसका उपयोग अपने लिए तो किया ही जाए, परमार्थ के लिए भी किया जाए। उसका मार्ग कल्याणक हो। विद्यार्थियों ने आचार्य से प्रश्न किया कि धन का उपयोग संग्रह में श्रेष्ठ है या दान देने में या खर्च करने में। आचार्य ने कहा—

पिपीलिकार्जितम् धान्यम् मधु।
लुब्धेन संचितम् द्रव्यम् समूलम् च विनश्यति।।

अर्थात् चींटी का संगृहीत अन्न, मधुमक्खी का संचित शहद, कृपण का संचित धन उनको छोड़ सबके काम आता है। अतः धन का सदुपयोग उसे सार्थक कार्यों के लिए दान देने और परोपकार के लिए खर्च करने में है। कामनाएँ असंख्य हैं। इच्छाएँ अनंत हैं। उनकी पूर्ति धर्मसम्मत हो। अपनी ईमानदारी की कमाई के अनुसार ही सदिच्छाओं की पूर्ति हो। तीनों में परस्पर धर्मसम्मत संतुलन बनाते हुए जीवन जिया जाएगा, तो मोक्ष मिल जाएगा। जीवन—मुक्ति का दूसरा नाम मोक्ष है। संसार में रहते हुए, दायित्वों का निर्वाह करते हुए, कर्म संस्कृति को रचते हुए, जीवन को परम सौभाग्य मानते हुए, मानव मूल्यों को चरित्र में उतारते हुए मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। जीवन की यह सहज नीति हमारे भारतवर्ष के चरित्र में थी। भारतवर्ष के चरित्र में पाँच 'स्व' स्थायीभाव की तरह रहे हैं। आज भी हैं। वे हैं—स्वाभिमान, स्वराज, स्वदेशी, स्वभाषा और स्वावलंबन।

अठारहवीं शताब्दी में हुई पश्चिम की औद्यौगिक क्रांति ने पश्चिम ही नहीं, संपूर्ण विश्व के चरित्र को बदल दिया। आज भी तकनीकी माध्यमों के प्रसार से संपूर्ण विश्व को आक्रांत किया जा रहा है। उसके माध्यम से पूरे विश्व मानव को पंगु और निष्क्रिय बनाया जा रहा है। आत्मनिर्भरता और स्वावलंबन उससे छीना जा रहा है। यह दो संस्कृतियों का घनघोर संघर्ष है। यह संक्रमण काल भी है। अपसंस्कृति के माध्यम से पूरे संसार को अलग दिशा में ले जाया जा रहा है। पूरा चिंतन अर्थकेंद्रित हो चला है। धन कमाओ। उपभोग करो। बाजार पर पूर्व के देशों को निर्भर कर दो। इस कुत्सित लोभ—वृत्ति ने आत्मनिर्भरता से मनुष्य को विलग कर दिया। स्वावलंबन का पाठ वह भूल गया। उसका आत्मविश्वास भी तार—तार हो गया। उसका चरित्र बिखर गया। दृष्टि बदली। स्वभाव बदला। क्रिया बदली। कार्य की प्रकृति बदली। चतुराई आयी। स्वार्थ सिर चढ़ गया। अकेलापन काँधे बैठ गया। कुंठा ने हृदय पर पत्थर रख

दिया। कुढ़न संग–साथ हो ली। संयुक्त परिवार टूटा। परिवार छूटा। अविश्वास ने धर दबोचा। मनुष्य भीड़ में अकेला हो गया। भीड़ में न कोई किसी की सुनता है, न ही चीख, न सिसकी सुनी जाती है। अपने ही कमीज से आँसू पोंछते हुए मनुष्य संकीर्णता के महल में एकांत भोगने को अभिशप्त हो चला है। वरना हमारी भारतीय ज्ञान परंपरा ने तो अनादि काल से मनुष्य को प्रकृति की सर्वश्रेष्ठ रचना बनाकर चरित्र के घर में बसा दिया था। उसके पास अपनी गाढ़ी कमाई से अर्जित संसाधन थे। उसकी गाँठ में संतोष रूपी धन था। वह चरित्र से मनुष्य था। हृदय से करुणा–पुरुष था। चिंतन से ऋषि था। आचरण से संस्कृति–निर्माता था। क्योंकि उसके पास भारतीय ज्ञान परंपरा का प्रकाश–पथ था।

परम् और परा शब्द मिलकर परंपरा शब्द बनता है। परम् का अर्थ है– उच्चतम, सर्वोत्तम, श्रेष्ठतम। परा का एक अर्थ है– परे या दूसरी ओर स्थित। बाद में होने वाला। आगे की ओर जाने वाला। अतः परंपरा दूसरी ओर स्थित की ओर सतत् जाने वाली ज्ञान–शृंखला है। सतत् आगे बढ़ते रहने वाली अनुभव–संपन्न शिव–संकल्पित ज्ञान–धारा है। परंपरा गंगा या नर्मदा का अविरल निर्मल प्रवाह है। रूढ़ि पोखर का ठहरा हुआ जल है। नदी का प्रवाहित जल कूड़े–कचरे को किनारे करता हुआ, निरंतर आगे बहता चला जाता है। परंपरा भी अविच्छिन्न है। निरंतर है।

भारतीय ज्ञान परंपरा से नानाविध क्षेत्रों में ज्ञान–विज्ञान कर्म–कौशल की शाखाएँ जन्मीं, विकसित हुईं और सर्वहितकारी बनीं। भूमि को खेती के योग्य बनाकर सबसे पहले पृथु ने कृषि–कार्य आरंभ किया; पृथु की भुजाएँ पृथुल थीं; इसलिए उसे पृथु कहा गया है। उसी ने सबसे पहले कृषि करना आरंभ किया, इसलिए धरती को पृथिवी कहा जाने लगा है। प्रजा भी खेती करने में तत्पर हुई। ऋषियों–मुनियों के आश्रमों तथा गुरुकुलों में भी कृषि–कार्य होता रहा है। कृषि–कार्य की शिक्षा बचपन से ही गुरुकुलों में दी जाती रही है। बटुक के चरित्र में बचपन से ही कृषि–कार्य चरित्र में और स्वावलंबन तथा कर्मनिष्ठा का गुण व्यक्तित्व में समाहित होने लगता था। यह ज्ञान और कर्म की सहयात्रा है। ज्ञान को कर्म में साकार करने की सीख है। यह ऋषि संस्कृति और कृषि संस्कृति की सहयात्रा है। भारतीय ज्ञान परंपरा ज्ञान योग, कर्मयोग, भक्तियोग का संदेश देती है। वेदों के भी विषयवस्तु की दृष्टि से ज्ञानकांड और कर्मकांड दो भाग हैं। बिना कर्म के ज्ञान का मंगल विधान नहीं रचा जा सकता है। ब्रह्म ज्ञानस्वरूप है। उसे निष्काम कर्म से ही पाया जा सकता है। इसलिए कृषि–कार्य पुण्य–कार्य भी माना गया है। कृषि कर्म परमार्थ–परोपकार का कर्म–मार्ग माना जाता है। भारतीय ज्ञान परंपरा में खेती कभी भी व्यवसाय नहीं मानी गई है। खेती करना लाभ का धंधा स्वीकार नहीं किया गया है। कृषि कार्य का उद्देश्य स्वयं का, परिवार का पालन करते हुए यथासंभव– यथायोग्य सबका पोषण करना रहा है।

यह उद्‌देश्य ज्ञान परंपरा आधारित सभी कर्म–शिल्प का रहा है। सभी कर्म सर्वभूतहितरत ही प्रमाणित होते हैं। यह शिक्षा वर्तमान में भी कृषि विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों और सर्वशिक्षा अभियान का अनिवार्य अंग होना चाहिए। धरती धारण करती है। माता के समान पोषण करती है। वह वसुधा है। वसुन्धरा है। वह अन्नगंधी है। वह हम सबकी माँ है। अथर्ववेद के बारहवें कांड के प्रथम सूक्त पृथ्वी–सूक्त में तिरसठ मंत्र हैं। वैदिक ऋषि भूमि की वंदना करता है– *भूमिः माता पुत्रो अहं पृथिव्याः।* 'हे भूमि माता! जो तुम्हारा मध्यभाग, नाभि देश है; उसमें पोषक तत्त्व घनेरे प्रकटित हों। हे माता! मोद भरकर, प्रमुदित होकर मुझे वहीं; उन्हीं में निवास देना। मुझ अपने अपावन पुत्र को पावन कर दो। हे वसुधा! हम तेरे पुत्र हैं। तू हम सबकी माता है'। वैदिक ऋषि की यह आदि प्रार्थना आज तक भारत माता की वंदना और राष्ट्र–आराधन के रूप में अविरल–आतुर–आकुल कोटि–कोटि कंठों से अमल–विमल–निर्मल बह रही है। यह भारतीय लोक के अनुष्ठानों में आज भी अपनी महिमा, गरिमा, अणिमा, लघिमा के साथ चरितार्थ हो रही है। लोकाचरण अपनी जड़ें इसी से सींचता है।

आज खेती से अधिकाधिक लाभ कमाने की होड़ाहोड़ी मची है। ज्ञान कहता है– मुझे कर्म में साकार कर मांगलिक बनाओ। कल्याणक करो। कृषि कार्य करते ही सर्वमंगल का भाव चरित्र में आता है। उससे जुड़े मांगलिक प्रतीक हमारे अनुष्ठानों में पूज्य हो जाते हैं। प्रकृति से साहचर्य होता है। हम प्रकृति–पूजक बनते हैं।

जिन्होंने हमारी भारतीय परंपरा में ज्ञान को भुवनम् से उतारकर कर्म की भूमि पर लाने का लोकहितकारी कार्य किया; उनकी एक समृद्‌ध श्रृंखला है। तत्त्व–चिंतन और ज्ञान–चिंतन को लोक में लाकर उसे कर्म के माध्यम से आचरण में उतारने और चरित्र में संस्थापित करने का पुण्य–पावन कार्य प्रस्थानत्रयी–ब्रह्मसूत्र, भगवद्‌गीता और उपनिषद ने किया है। वेद–वेदांत का ज्ञान लोक में प्रस्थानत्रयी के द्वारा चरितार्थ हुआ है। भारतीय ज्ञान परंपरा के मनीषी आचार्यों के प्रति यह पुण्यदा भारतभूमि, भारतीय जन और समस्त भुवन कृतज्ञ हैं। यास्क, आपस्तंब, आश्वलायन, बोधायन, कात्यायन, सत्याषाढ, कणाद, कपिल, जैमिनी, बादरायण, गार्गी, मैत्रेयी, कात्यायनी, जाबला, आत्रेय, औडुमौली, भर्तृहरि, गौतम, पास्कर, पाणिनि, पतंजलि, वररुचि, कौटिल्य, मनु, याज्ञवल्क्य, शबर, शांडिल्य, बृहस्पति, मार्कण्डेय, व्यास, वाल्मीकि, आर्यभट्‌ट, नागार्जुन, वराहमिहिर, बाणभट्‌ट, गौतम बुद्‌ध, महावीर स्वामी, वामन, जयादित्य, कुमारिल, गौड़पाद, उम्बेक, शालिकनाथ, शंकराचार्य, मंडन मिश्र, सुरेशाचार्य, उत्पल, भवदेव, लक्ष्मीधर, धारेश्वरभोज, विज्ञानेश्वर, गोविन्दराज, जीमूतवाहन, अपरार्क, शिलाहार, भास्कराचार्य, सोमेश्वर देव, कल्हण, राजशेखर, अनिरुद्‌ध भट्‌ट, श्रीधर, कुल्लूक, हरदल, सायण, चरक, सुश्रुत, धन्वन्तरि, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, निंबार्काचार्य, वल्लभाचार्य,

तिरुवल्लुवर, शंकरदेव, ज्ञानेश्वर, नरसी मेहता, गुरुनानक देव आदि की चिंतन परंपरा भारतीय भाषा साहित्य में शब्द–शब्द व्याख्यायित हुई है। प्रत्येक चिंतन धारा और प्रत्येक अनुशासन की अपनी–अपनी परंपराएँ हैं जैसे दर्शन के अंतर्गत षट्दर्शन– वैशेषिक, न्याय, सांख्य, मीमांसा, योग और वेदांत की परंपरा है। कश्मीर के शैव दर्शन की अपनी परंपरा है। परंतु ये सब एक ही मूल तत्त्व–चिंतन–धारा के भाग–प्रभाग हैं। दर्शन की परंपरा जे. कृष्णमूर्ति और यशदेव शल्य तक चली आती है।

भारतीय ज्ञान परंपरा कहती है– हम सब काल में स्थित हैं। जिस अगुण, अगोचर, अज, अरूप, अनाम चिद्‌बिंदु को हमारी परंपरा ब्रह्म संबोधन देती है; विज्ञान उसे ही ऊर्जा कहता है। ब्रह्म अनंत, अगुण, अक्षय, अक्षर है। ऊर्जा भी कभी नष्ट नहीं होती। ऊर्जा का रूपांतरण होता है। ब्रह्म का भी सृष्टि के कण–कण में विविध छवियों में रूपांतरण है। ज्ञान परंपरा पंच तत्त्वों का चिंतन करते हुए पाती है कि सबकी उत्पत्ति स्थिति और लय ब्रह्म से ही है। विज्ञान में काल और स्थान तथा ऊर्जा उत्पत्ति और रूपांतरण के कारक हैं। अंततः विज्ञान भी अपनी खोज में अंतिम बिंदु शून्य को ही पाता है जहाँ उपनिषद का शून्य अवस्थित है। भारतीय ज्ञान परंपरा काल की चक्रीय अवधारणा का चरित्रांकन करती है। काल की स्थिति चक्रीय है। काल की अवधारणा सहित जीवन की चरित्रावली में भारतीय ज्ञान परंपरा चतुष्पदों की स्थापना करती है। चार युग–सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग। जीवन के चार आश्रम – ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास। चार पुरुषार्थ – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। चार योग– ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, राजयोग। यह सब मानव जाति और जीव सृष्टि की एकता और सद्‌भाव, सभी धर्मों की एकता, व्यक्ति की चारित्रिक उदात्तता, राष्ट्रीय चरित्र की स्थापना और विश्वशांति की स्थापना के ही आकाशदीप हैं। चरित्र के पथ–दीप जलेंगे। सिंधु तट से उस पार तक जाने के लक्ष्य के आकाशदीप अवश्य दिखाई देंगे।

अब असल बात यह कि भारतीय ज्ञान परंपरा के तत्त्वों को वर्तमान व्यक्ति–चरित्र और समाज चरित्र में किस प्रकार से चरितार्थ किया जाए। इसके केंद्र में व्यक्ति ही है। व्यक्ति से समाज, समाज से संस्कृति, संस्कृति से राष्ट्र बनता है। व्यक्ति के चरित्र निर्माण में घर, परिवार, समाज, शिक्षा की अपरिहार्य और आधार भूमिका होती है। ज्ञान परंपरा में चरित्र निर्माण के संस्कार माता के गर्भ में शिशु के आने के साथ ही होते हैं। लोक ने गर्भाधान संस्कार या गोद भराई को सोलह संस्कारों में प्रथम स्थान दिया है। गर्भावस्था में माता–पिता–परिवार के संस्कार, कार्य, मानसिकता, सत्संग, श्रवण, कीर्तन सब कार्य करते हैं। ज्ञान परंपरा में अष्टावक्र और अभिमन्यु के उदाहरण हैं। जन्म के साथ शिशु को संस्कारित करने में चरित्र निर्माण की नींव डालने में माँ और परिवार ही आधार–स्तंभ हैं। इसलिए सबसे प्रमुखतः भारतीय परिवारों और अभिभावकों की सोच को सकारात्मक होना है। उसके बाद शिक्षा, पाठ्यक्रम, विद्यालय, शिक्षक,

वाचनालय, सत्संग, संगति, परिवेश का वातावरण, समाज की शुद्धता, खानपान आदि चरित्र को सुदृढ़ बनाते हैं। इसके लिए गुरुओं, आचार्यों, शिक्षकों का ज्ञान–संपन्न, विद्यावान, सदाचारी, भाषा–संस्कारी और आदर्श पुरुष होना अनिवार्य है। गुरु या शिक्षक पीढ़ियों को गढ़ता है। वह नागरिक बनाता है। वह राष्ट्र निर्माता है। चरित्र के निर्माण में मनुष्य की सकारात्मक सोच केंद्र में रहती है। उस सोच को मनुष्य के द्वारा ग्रहण किया गया अन्न–जल भी प्रभावित करता है। भारतीय लोक कहता है– जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन। जैसा पीवे पाणी, वैसी होवे बाणी।। यह भी कहा गया है – पाणी पीओ छानकर, गुरु करो जानकर।

अध्यात्म विद्या के वैज्ञानिक ऋषियों ने आहार के सूक्ष्म गुणों का गंभीरतापूर्वक अध्ययन किया और पाया कि प्रत्येक खाद्य पदार्थ अपने में सात्विक, राजसी और तामसी गुण धारण किए हुए है। उनके खाने से मनोभूमि का निर्माण भी वैसा ही होता है। निर्माण की क्रियात्मक परिणति मनुष्य के व्यक्तित्व के पंचकोषों द्वारा ही स्थायी रूप से होती है। ज्ञान–प्रसूत कर्म का प्रभाव– अन्नमयकोष, प्राणमयकोष, मनोमयकोष, विज्ञानमयकोष से भी आगे अंतिम आनंदमयकोष तक होना चाहिए। जो शिक्षा या विद्यार्जन किया जा रहा है, उसमें अंतर्निहित ज्ञान का रूपांतरण कर्म में होना ही चाहिए। उस कर्म के परिणाम का प्रभाव इन कोषों में संचरित हो। ज्ञान सत्य–आधारित होता है। इसलिए ज्ञान–आधारित कर्म भी सत्य का आरेखन हो। कर्म में सौंदर्य हो, तभी वह अन्नमयकोष से आगे प्राणमयकोष और मनोमय तक पहुँच बनाएगा। उस सौंदर्य में शिवत्व हो। शिवत्व में फलित कर्म की आभा ही विज्ञानमयकोष और उसके पार आनंदमयकोष तक प्रकाशित होगी। आनंद ही ज्ञान, भक्ति, कर्म का मोती है। सुनो! वैदिक ऋषि की प्रार्थना के स्वर सुनो। भारतीय ज्ञान परंपरा सामगान गा रही है।

भूमे मातार्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम्।

❑❑❑

भारतीय ज्ञान परंपरा: संदर्भ और विचार

✍ डॉ. आलोक सिंह

संतोष, समन्वय और शांति का वाङ्मय है भारतीय ज्ञान परंपरा। भारत ज्ञान की शाश्वत भूमि रही है, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है। इसके साथ–साथ तप है और तप के द्वारा महाज्ञान की सुखद अनुभूति को प्राप्त करना इसकी मुख्य विशेषता रही है। भारत में ज्ञान की एक समृद्ध परंपरा है और एक विरासत है जो सैकड़ों वर्षों से चली आ रही है। प्राचीन काल की शिक्षा प्रणाली, ज्ञान परंपराएँ और प्रथाएँ मानवता को प्रोत्साहित करती थीं। पुराण में ज्ञान को अप्रतिम माना गया है। भारत के तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला, वल्लभी, उज्जैनी, काशी आदि विश्वप्रसिद्ध शिक्षा एवं शोध के प्रमुख केंद्र थे तथा यहाँ कई देशों के शिक्षार्थी ज्ञान को अर्जित करने के लिए आते थे। प्राचीन भारतीय सनातन ज्ञान परंपरा अत्यंत समृद्ध थी तथा इसका उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को प्राप्त करते हुए व्यक्ति के संपूर्ण व्यक्तित्व को विकसित करना था। जब सारा विश्व अज्ञानरूपी अंधकार में भटकता था तब संपूर्ण भारत के मनीषी उच्चतम ज्ञान का प्रसार करके मानव को पशुता से मुक्त कर श्रेष्ठ संस्कारों से युक्त पूर्ण मनुष्य बनाते थे। भारतीय ज्ञान परंपरा में सबके मंगल के साथ सबके कल्याण और रोगों से मुक्ति का भाव चिर प्रवाहमान रहा है। इसीलिए भविष्यपुराण की यह पंक्ति अमर गीत के रूप में गाई जाती है–

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग् भवेत।।

वैदिक ऋषियों ने परिवार, समाज के साथ–साथ राष्ट्रधर्म को भारतीय ज्ञान के अंतर्गत हमेशा से महत्त्व दिया है। वैदिक ऋषि उद्घोष करते हैं कि– माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः अर्थात् धरती माता मेरी माता है तथा मैं धरती माता का पुत्र हूँ। मेरा राष्ट्र समृद्ध है। इस प्रकार सर्वत्र राष्ट्र के पूर्ण विकास एवं उन्नति की कामना हमारे ऋषि करते दिखाई देते हैं ।

भारतीय संस्कृति से तात्पर्य है वह संस्कृति जिसका जन्म भारत में हुआ। हालाँकि संस्कृति शब्द ही भारतीय है। भारतीय संस्कृति सिखाती है कि आपको किसी से युद्ध नहीं लड़ना, न ही किसी में कोई दोष निकलना है। आपको किसी को भी बुरा–भला नहीं कहना बल्कि आपको केवल और केवल स्वयं और मानव का उत्थान

करना है। अपने धर्म–राष्ट्र और संस्कृति की बात करना ही हमारी संस्कृति की ताकत है। हमारे आगम साहित्य की तमाम सूक्तियां मानवीय मूल्यों से भरी पड़ी हैं जो व्यक्ति को परिष्कार करने, आत्मदर्शी, अहिंसक, एकनिष्ठ होने तथा स्वयं को जानने पर बल देती हैं।

जे एगं जाणई, से सव्वं जाणई।
जे सव्वं जाणई, से एगं जाणई।

अर्थात् जो व्यक्ति इस प्रकार से अपनी आत्मा के सुख–दुख को जान लेता है, वह दूसरे सभी जीवों के सुख–दुख भी समझ लेता है। जिसने 'पर' में 'स्व' का दर्शन कर लिया, वह न किसी को दुख पहुँचा सकता है और न किसी के सुख में बाधक ही बन सकता है।

भारतीय संस्कृति का भाव व्यष्टि से समष्टि और वसुधैव कुटुम्बकम् का रहा है। इस संबंध में शिरोमणि दुबे अपनी पुस्तक 'भारतीय जीवन दृष्टि और परिवार परंपरा' में लिखते हैं कि– *भारतीय मनीषा में वसुधैव कुटुंबकम का विचार यूँ ही नहीं टपक गया था। इस देश में अंग्रेजों के आने से पूर्व संपूर्ण राष्ट्र कुटुंबभाव से ओतप्रोत था। बेटी की ससुराल में गाँव का व्यक्ति पानी नहीं पीता था क्योंकि यहाँ मेरे गाँव की बेटी ब्याही है। गुरु–शिष्य परंप्रा में गुरु शिष्य का मानस पिता कहलाता था। गुरु शिष्य के कौटुंबिक संबंध अत्यंत प्रगाढ़, आत्मीय और मधुर होते थे। राजा प्रजा का संबंध पिता–पुत्र का संबंध होता था। शबरी तो भीलनी है, दूर जंगल में झोपड़ी में रहती है, प्रभु राम शबरी की कुटिया में सरपट दौड़े चले आते हैं क्योंकि कोई यह न कहे कि महलों के राजकुमारों ने झोपड़ियों की ओर कभी मुड़कर देखा नहीं था। कुटुंब की यह विरासत एकात्म समाज जीवन की ऐसी रियासत है जिसे कोई सिरफिरा कभी खरोंच नहीं दे सका।*[1]

आधुनिक युग तनाव, टकराव, अशांति, शीतयुद्ध, दमित जीवनमूल्य, अस्थिरता, संघर्ष एवं विषमता का युग है। व्यक्ति स्वयं में भीड़ व भीड़ में अकेला है। क्रांतदर्शी महावीर ने समाज की जड़ता, अंधश्रद्धा, खोखलेपन पर चोट की तो व्यक्ति को प्रमाद एवं विकार से मुक्त करने के लिए झिंझोड़ा भी। मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी चर्चित रचना भारत–भारती में भारत बोध को स्पष्ट करते हुए लिखा है–

हम कौन थे, क्या हो गए, और क्या होंगे अभी।
आओ विचारें आज मिल कर, यह समस्याएँ सभी।।

भारतीय ज्ञान परंपरा के मूल्यों को बचाया जाए, उसे पुनर्जीवित किया जाए और इसको पुनर्जीवित करने के लिए आवश्यक है कि सोलह संस्कारों, यज्ञों, भारतीय आयुर्वेद पद्धतियों, प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धतियों, प्रकृति के प्रति भारतीय दृष्टिकोणों, भारत के अनुकूल शोध दृष्टियों की ओर लौटें। भारत के पास अपना दृष्टिकोण है जो

अपने पूर्वजों से मिला है। देश की एकता में ही सारी विविधताएँ हैं। सुख को ढूँढना है तो उसे अपने अंदर ढूँढो, सबके सुख में उसको देखना सीखो। सत्य, शुचिता, करुणा के साथ चलते हुए अपनों के लिए जीने से ही सुख मिलता है। हम विकारों के पीछे नहीं भागें, शरीर, मन और बुद्धि से पवित्र होकर रहें। यह बात हमारे ऋषि मुनियों ने हमें सिखाई और बताई भी है।

शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नयन में आज योग और ध्यान की भूमिका को वैश्विक मान्यता प्राप्त है। भारतीय षड्दर्शन आत्मचिंतन का अद्वितीय दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। न्याय दर्शन तर्क और ज्ञान मीमांसा पर केंद्रित है जबकि वैशेषिक दर्शन द्वारा परमाणुओं और उनके संयोजनों के विश्लेषण के माध्यम से प्रकृति की वास्तविकता का पता लगता है। सांख्य, योग, मीमांसा और वेदांत दर्शन ने गहरी दार्शनिकता की नींव रखी। आर्यभट्ट और ब्रह्मगुप्त जैसे प्राचीन भारतीय गणितज्ञ ने अंकगणित, बीजगणित और ज्यामिति में महत्त्वपूर्ण खोज की। सौरमंडल के सूर्य केंद्रित मॉडल पर आर्यभट्ट का ज्ञान अपने समय से सदियों आगे था। सुश्रुत संहिता चिकित्सा और सर्जरी का एक अद्वितीय ग्रंथ है। एनईपी के पाठ्यक्रमों में व्यावहारिक ज्ञान का एकीकरण है जो न केवल तकनीकी रूप से संपन्न होने बल्कि रोजमर्रा की जिंदगी में नवीनतम प्रौद्योगिकी के नैतिक उपयोग पर जोर देता है। आज मानवता के सामने सबसे बड़ी चुनौतियों– जलवायु परिवर्तन, आतंकवाद, जातिगत वैमनस्यता, मानसिक अवसाद आदि का सामना करने के लिए समन्वित दृष्टिकोण की आवश्यकता है जिससे मानव और प्रकृति में सामंजस्य स्थापित हो सके।

भारतीय परंपराओं की अवधारणाएँ हजारों साल पुरानी होने पर भी आज भी पूरा विश्व उन अवधारणाओं को शिरोधार्य करता है। अगर हम अपनी समृद्ध परंपराओं की ओर देखें तो पाते हैं कि वैदिक संस्कृत पूरी दुनिया की सबसे पुरानी भाषा है। विज्ञान, गणित, आयुर्वेद, संगीत, शिल्प, कलाएँ आदि संस्कृत भाषा में ही सबसे पहले प्राप्त होती हैं। पूरे भूमंडल की चर्चा सबसे पहले वेदों, पुराणों के अतिरिक्त रामायण, महाभारत और कालिदास जैसे कवियों के यहाँ ही देखने को मिलती है। नोबेल विजेता रोम्या रोलां लिखते हैं कि– *मानव ने आदिकाल में जो सपने देखने शुरू किए, उनके साकार होने का इस धरती पर कोई स्थान है, तो वह है भारत।*[2] ख्यात अमेरिकी लेखक मार्क ट्वेन भारत को 'एक अद्भुत देश', 'स्वप्न देश' बताते हुए भारत के लिए कहते हैं–..... *एक ऐसा देश जहाँ चाँदनी और कविता है.... जो हमारी दुनिया से, जहाँ हम रहते हैं, अविश्वसनीय–सा लगता है, एक स्वप्न देश! दूरवर्ती रहस्य!* मार्क ट्वेन आगे विस्मय प्रकट करते हैं– *वे कौन से नैतिक आध्यात्मिक बंधन हैं जो इस जनता को बाँधते हैं! गहन आध्यात्मिक अनुभवों को कैसे इतना सरल कर लिया जाता है कि वे जनता तक पहुँच सकें! यह आश्चर्य की बात है। इसे अंधविश्वास कैसे कहा जा*

सकता है? करोड़ों लोगों का विश्वास अंधविश्वास कैसे हो सकता है? मार्क ट्वेन का यह भी कहना है– *मनुष्य के इतिहास में जो भी मूल्यवान् और सृजनशील सामग्री है, उसका भंडार अकेले भारत में है।*[3]

ख्यात पाश्चात्य लेखक बिल ड्यूरां 'भारतमाता' को 'विश्व की माता' मानते थे। बिल डयूरां ने अपनी कृति 'Story of Civilization' में भारतीयता–विरोधी भारतीय विद्याविदों को कठोर फटकार लगाते हुए लिखा– *India will teach us the tolerance and gentleness of the mature mind, the quiet content of the unacquisite soul, the calm of the understanding spirit and a unifying, pacifying love for all being.*[4]

ब्रिटिश विचारक आर्थर शोपेनहावर का मानना था– *विश्व भर में ऐसा कोई अध्ययन नहीं है जो (भारतीय ग्रंथ) उपनिषदों जितना उपकारी और उदात्त हो। यही मेरे जीवन को शांति देता रहा है और वही मृत्यु में भी शांति देगा।*[5]

भारतीय आध्यात्मिकता के श्रेष्ठ ग्रंथ श्रीमद्भगवद्गीता के संबंध में पाश्चात्य विचारवेत्ता राल्फ वाल्डो इमर्सन का कहना था– *मैं भगवद्गीता का बहुत ऋणी हूँ जिसे पढ़ कर मुझे लगा कि किसी विराट शक्ति से हमारा संवाद हो रहा है।*[6]

श्रीमद्भगवद्गीता के संबंध में विल्हन वान हम्बोल्ट के विचार थे– *गीता एक अत्यंत सुंदर और संभवतः एकमात्र सच्चा दार्शनिक ग्रंथ है जो किसी अन्य भाषा में नहीं है। वह एक ऐसी गहन और उन्नत वस्तु है जिस पर सारी दुनिया गर्व कर सकती है।*[7]

ईस्ट इंडिया कम्पनी के आर्मी अफसर सर टामस मनरो (1761–1827 ई०) का भारत के बारे में अभिमत है– *अच्छी कृषि प्रणाली, बेजोड़ निर्माण कुशलता, सुविधाजनक तथा आरामदायक जीवन के लिए हर चीज उत्पन्न करने की क्षमता, लिखने–पढ़ने तथा गणित की शिक्षा के लिए प्रत्येक गाँव में स्थापित पाठशालाएँ, परस्पर अतिथि सत्कार तथा दानशीलता और सबसे ऊपर नारी के प्रति विश्वास, आदर तथा कोमलता से परिपूर्ण भावनामय व्यवहार–यदि सभ्य लोगों के लक्षण हैं तो 'हिंदू' यूरोप के किसी भी देश के लोगों से (सभ्यता में) कम नहीं हैं। इंग्लैंड और भारत के बीच यदि 'सभ्यता' व्यापार की सामग्री हो, तो मुझे पूरा विश्वास है कि इंग्लैंड को उसका आयात करने से लाभ ही होगा।*[8]

ख्यात वैज्ञानिक अलबर्ट आइन्स्टीन का कहना था *हम भारत के बहुत ऋणी हैं, जिसने हमें गिनती सिखाई, जिसके बिना कोई भी सार्थक वैज्ञानिक खोज संभव नहीं हो पाती।*[9]

संस्कृतविद् प्रो. मैकडानल (1845–1930 ई०) ने संस्कृत भाषा के प्राचीन ग्रंथों का गहन अध्ययन करके कहा था– *भारतीय साहित्य एवं संस्कृति का महत्त्व उनकी*

मौलिकता में है। जब यूनानियों ने ईसा के 400 वर्ष पूर्व उत्तर–पश्चिम में आक्रमण किए, तब तक भारतीयों ने अपनी संस्कृति स्थिर कर ली थी। फारसी, यूनानियों, सीथियन और मुसलमानों के एक के बाद दूसरे और निरंतर आक्रमणों और विजयों के बावजूद भारतीय आर्यों के जीवन और साहित्य का विकास अप्रतिहत गति से चलता रहा। संसार की कोई और जाति इस प्रकार 3–4 हजार वर्ष तक निरंतर धर्म, साहित्य और संस्कृति के विकास का दावा नहीं कर सकती।[10]

ख्यात चीनी विद्वान हू शिह का कहना है– *सीमा पर एक भी सैनिक न भेजते हुए भारत ने 20 सदियों तक सांस्कृतिक धरातल पर चीन को जीता और उसे प्रभावित भी किया।*

कुल मिलाकर भारतीय ज्ञान परंपरा राष्ट्रबोध, सेवाबोध एवं कर्तव्यबोध को आत्मसात करने की प्रेरणा देती है, साथ ही विभिन्न चुनौतियों से लड़ने का मार्ग भी प्रशस्त करती है। भारतीय ज्ञान परंपरा में समाहित उच्चतर जीवन मूल्यों का शिक्षा में समावेश कर मूल्याधारित और सर्वजन सुखाय समाज बनाया जा सकता है, इसी में हमारा और विश्व का कल्याण है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. भारतीय जीवन दृष्टि और परिवार परंपरा, शिरोमणि दुबे, अर्चना प्रकाशन, भोपाल, पृष्ठ–11
2. भारतीय राष्ट्रवाद का क ख ग, विजय रंजन, विकल्प प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–67
3. वही, पृष्ठ–67
4. वही, पृष्ठ–67
5. वही, पृष्ठ–67
6. वही, पृष्ठ–67
7. वही, पृष्ठ–67
8. वही, पृष्ठ–68
9. वही, पृष्ठ–69
10. वही, पृष्ठ–69

❑❑❑

भारतीय ज्ञान परंपरा के अन्वेषण में संस्कृत की भूमिका

✍ प्रो. अजय कुमार मिश्र

यह एक बहुत ही बड़ा प्रश्न है कि आखिर में भारतीय ज्ञान परंपरा है क्या? संस्कृत से इसका क्या अंदरूनी रिश्ता हो सकता है और भारतीय ज्ञान प्रणाली को उजागर करने में संस्कृत की क्या भूमिका हो सकती है? यह भी कोई कम महत्त्वपूर्ण जिज्ञासा नहीं है कि आज राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के तहत जो पहली बार भारतीय ज्ञान व्यवस्था पर बल दिया गया है, उसका बहुत बड़ा सबब यह भी हो सकता है कि विगत दो सौ सालों में ब्रिटिश हुकूमत ने भारतीय ज्ञान संपदा (नौलेज इकोनॉमी) के तहस–नहस करने के लिए घातक चाल चली और पाश्चात्य देशों में 'ओरियंटलिज्म' की आड़ में भारतीयता की जड़ों को काटने का वैदेशिक षड्यंत्र रचा गया। इन सब सवालों को लेकर आज के भारतीयता के नवजागरण के दौर में इससे जुड़ी अनेक जिज्ञासाएँ उठ रही हैं। अतः उसके मनोविज्ञान और चिति की भारतीयता के मापदंडों के हिसाब से तहकीकात करने की सख्त जरूरत दिखती है ताकि भारतीय चिंतन तथा दर्शन पर जो तथाकथित औपनिवेशिक ज्ञान का आज भी बादल मंडराता रहा है उसे सर्वथा अपाकृत भी किया जा सके। इससे आज़ादी के अमृत महोत्सव काल खंड में भारत को, न कि इंडिया के रूप में, मानसिक स्वराज मिल सके।

इसका बहुत बड़ा कारण यह भी है कि पाश्चात्य जगत में काल की अवधारणा एक रैखिक (होरिजॉन्टल) होने के कारण खंडित है, वहीं भारत में काल की अवधारणा वृत्तात्मक (साईक्लीक) होने के कारण नैरंतर्यपूर्ण तथा अविच्छिन्न रूप में प्रवाहमान है। पाश्चात्य चिंतन परंपरा में सिद्धांतों और उसके फलसफों के तहत एकाकी ज्ञान की ही प्रबलता के कारण समय–समय पर एक सिद्धांत दूसरे को पूरा का पूरा ध्वस्त करने के चक्कर में लगा रहता है क्योंकि उनका यह एकांगी ज्ञान नितांत रूप से तथाकथित ज्ञान की रस्साकशी के शिकंजे में ही फँसा पड़ा है। जबकि भारतीय चिंतन में ज्ञान सपंदा को सार्वभौमिक तथा सार्वकालिक नजरिये से एक समग्रता के भाव से देखा जाता रहा है। यह सहकारी ज्ञान सह अस्तित्वीय मापदंडों के आधार पर भारतवर्ष के पेड़–पौधे, प्रकृति और उसको संतुलित बनाए रखने के नाना विधान तथा मनुष्य का प्रकृति के साथ आत्मगत तादात्म्य जैसी विशेषताओं से संपृक्त है। भारत

की इस वसुन्धरा में भारतीय ज्ञान परंपरा का चिंतन सुरभित है। तभी महाकवि कालिदास भी अपने विश्वविश्रुत नाटक' अभिज्ञानशाकुंतलम्' में लिखते हैं कि सर्वांग सुंदरी वनकन्या शकुंतला अपने आस पास के उपवन के पेड़–पौधों का बिना जल–सिंचन किए हरगिज जल नहीं पीती थी और जब उन पेड़–पौधों में पुष्प फल आच्छादित होकर लद जाते थे, तभी शकुंतला के जीवन में भी आनंदोत्सव का सच्चा क्षण आ पाता था –

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।।4/8।।

कालिदास ने यहाँ अपने नाट्य साहित्य के जरिये क्लाइमेट जस्टिस की बातों को उठाया है। अब यह समय आ गया है कि संस्कृत साहित्य का मात्र साहित्यिक कौमार्य या सौंदर्य की कमनीयता की दृष्टि से ही मुआयना नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि उसे युगीनधर्मिता की कसौटी पर भी आंका जाना चाहिए, ताकि आचार्य मम्मट जैसे काव्याचार्यों के काव्य प्रयोजन का सार्थक मूल्यांकन हो सके। इस तरह के तथ्यात्मक अन्वेषण से आईकेएस के नज़रिए से संस्कृत और उसके अध्ययन–अध्यापन का मार्ग और अधिक प्रशस्त हो सकेगा। यह कोई कम महत्त्वपूर्ण तथ्य नहीं है कि जब कालिदास अपनी सद्यःपरिणीता यक्षिणी को एक मेघ के माध्यम से अपना भाव–विह्वल प्रेमिल संदेश भेजना चाहता है तो एकाएक उसके मन में यह सच्चाई भी उभर आती है कि यह मेघ तो जल तथा पानी से मिलकर बना हुआ है। अतः यह अचेतन मेरा संदेश कैसे मेरी प्रिया के पास ले जा सकता है? इस विप्रलंभ श्रृंगार में रसायन विज्ञान का जो वैज्ञानिक यथार्थ गुंफित है, वह सत्य आज भी प्रामाणिक ही है। यहाँ इसका भी ध्यान रहे कि विश्वप्रसिद्ध मेघदूत का अंग्रेजी अनुवाद अंग्रेजों ने इसलिए भी करवाया था, ताकि कालिदास द्वारा भारत वर्ष के सटीक मार्ग–वर्णन के जरिए उन्हें भारत का भौगोलिक ज्ञान हासिल हो सके और इस ज्ञान का लाभ प्रशासनिक दृष्टि से लिया जा सके। इसी तरह और अनेक भारतीय ज्ञान परंपरा को प्रकाश लाने की युगीन आवश्यकता है। मनुस्मृति का अंग्रेजी अनुवाद भी उनके द्वारा भारतीय धर्म तथा यहाँ के जनजीवन और संस्कृति को समझना था। अतः साहित्य को कैसे औपनिवेशिक शासन का औज़ार बनाया गया, इसके अंदरूनी मामले को जानने के लिए भी भारतीय ज्ञान परंपरा को समझने की भी आवश्यकता है।

जाने माने मनोवैज्ञानिक तथा शिक्षाविद प्रो. गिरीश्वर मिश्र ने भी सही लिखा है– *ज्ञान–विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विस्तार के पश्चिमी मॉडल का खोखलापन दिन–प्रतिदिन उजागर हो रहा है। अविरल चलती हिंसा, जलवायु परिवर्तन की बढ़ती मुश्किलें, तीव्र*

होती गलाकाट प्रतिस्पर्धा, पर्यावरण का भीषण प्रदूषण और मनुष्यता की जगह बाजार का बढ़ता प्रभुत्व ज्ञान के पश्चिमी नेताओं की सोच पर प्रश्नचिह्न लगा रहे हैं। (मानसिक स्वराज की भी आवश्यकता है, गिरीश्वर मिश्र, दैनिक जागरण, दिनांक 18 जुलाई 2025, दिल्ली)। आचार्य मिश्र ने जो आज की विविध प्रकार की समस्याओं का जिक्र किया है, उन सब के निदान हेतु संस्कृत साहित्य प्राचीन काल से ही अपना प्रभावी समाधान तथा सुझाव देता आया है। अतः यह कहना कोई अनुचित नहीं होगा कि संस्कृत वाङ्मय की चर्चा की भूमिका के बिना भारतीय ज्ञान परंपरा की चर्चा सर्वथा आधी–अधूरी ही होगी। लेकिन यहाँ इसका भी ध्यान रहे कि आईटी के दौर में जो सूचनाओं का अंबार लगाया जा रहा है, उससे अभिव्यक्ति की काफी गुणात्मक वृद्धि तो हुई है लेकिन वहीं अपने–अपने ज्ञान की बोझिल स्थापना में इस संकलन में पर्याप्त घालमेल के साथ साथ जानकारियों की अराजकता भी देखी जा रही है। इसलिए राष्ट्र स्तर पर एक समृद्ध तथा विविध भगिनी भाषा विषयक पुस्तकालय की स्थापना करने की भी आवश्यकता है ताकि साहित्य के जरिए ब्रितानी काल के समय से ही भारत पर जो सांस्कृतिक आक्रमण करने की साजिश रची गई, उससे आजादी के अमृत महोत्सव काल में विमुक्ति मिल सके। गौरतलब है कि संस्कृत समग्र भारत की सुनहरी संयोजक सशक्त कड़ी भी रही है। साथ ही साथ भाषावैज्ञानिक दृष्टिकोण से भारतीय भाषाओं को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अनुप्राणित भी करती रही है। इसलिए अंग्रेजों ने 'एक साधे सब सधे' को चरितार्थ करते हुए संस्कृत के माध्यम से भारतीय संस्कृति के मेरुदंड पर घातक प्रहार किया क्योंकि साहित्य अपनी माटी की संस्कृति का अंतःसाक्ष्य होता है। ऐसी स्थिति में अपनी भाषा के साथ भारतीय संस्कृति की स्मृति पर कुछ कालखंडों के लिए यहाँ मटमैली धूल का जमना लाज़मी हो गया जिस औपनिवेशिक नाईटमार (खतरनाक नींद) से हम अभी तक उबर नहीं पाए हैं। ऐसी स्थिति में भारतीय ज्ञान परंपरा को विस्मृत करना या करवाना स्वाभाविक हो गया। इसी सांस्कृतिक विखंडन करने की प्रक्रिया की कूटनीति के अंतर्गत आयुर्वेद को तोड़ने के लिए इसके विरोध में एलोपैथी चिकित्सा पद्धति की दीवार खड़ी की गई और आयुर्वेद के ज्योतिषसमन्वित उपचार के माहात्म्य को नजरअंदाज किया गया। इस सबब से भारतीय शिक्षा व्यवस्था को प्राचीन तथा आधुनिक शिक्षण–धाराओं में खंडित कर दिया गया। इससे भारत की शैक्षणिक व्यवस्था की आत्मा गुरुकुल शिक्षा व्यवस्था की कमर तोड़ने की भरसक कोशिश की गई। अतः भारत की ज्ञान परंपरा जो मूलतः संस्कृत में ही सन्निहित है, उसका राष्ट्र की मुख्यधारा से ओझल होना स्वाभाविक था। इसी रणनीति के तहत विदेशियों ने मिल कर 'ओरियंटलिज्म स्कूल' की स्थापना की। यह बात अच्छी है कि ऐसी मानसिकता के प्रतिरोध में (इंटरनेशनल एसोसिएशन फॉर संस्कृत स्टडीज़, सन् 1970, मुख्यालय, पेरिस) की स्थापना की गई जिसका लक्ष्य

संस्कृत की अस्मिता तथा उसमें समाहित ज्ञान–विज्ञान को समुचित तथा निष्पक्ष रूप से वैश्विक दृष्टि से मानव कल्याण के लिए प्रकाश में लाना, संस्कृत–विरोधी ताकतों के विरुद्ध एकजुट हो कर उसके प्रभावी प्रतिरोध के साथ–साथ उसके प्रति कटिबद्धता हैं।

इस तथ्य पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है कि तीसरा विश्व युद्ध अब पेट्रोल की जगह जल के लिए हो सकता है। वेदों में जो जल के विविध प्रकार, उनके उद्गम तथा गुणवत्ता के अनुसार प्रकार तथा नामों का उल्लेख किया गया है, उसका न केवल स्थानीय, भौगोलिक तथा रसायन शास्त्र की दृष्टि से महत्त्व है, बल्कि रसायन शास्त्र तथा जलवायु विज्ञान की दृष्टि से भी भारतीय ज्ञान परंपरा के कपाट को उन्मीलित करता है। अथर्ववेद इस बात की पुष्टि करता है कि जल विद्युत से उत्पन्न होने के सबब से ही रुद्र का भेषज नाम रखा गया है। (इदं रुद्रस्य भेषजम् 6/57/1)। संस्कृत साहित्य में जल को विविध रूपों तथा स्थानों से प्राप्त करने की जानकारी जहाँ जल माहात्म्य की बोधक है, वहीं इस तथ्य की भी पुष्टि करती है कि वैदिक ऋषि–मुनियों तथा वैज्ञानिकों को भूगर्भ विज्ञान तथा उसकी तकनीक की भी जानकारी थी। अथर्ववेद जहाँ दिव्याः (7/49/2)–अंतरिक्ष से आने वाला जल, स्रवन्तिः (वही)–नदियों से स्रवण करने वाला तथा स्वयंजा (वही)–झरनों के जल से अपने आप भूमि से निकलने वाले जल की चर्चा करता है, वहीं अथर्ववेद में हैमवती (19/2)–हिमवान पर्वतों से, नदी के रूप में उत्पन्न होने वाला जल, अत्स्याः (वही)– झरने का जल, खनित्रिमाः (वही) खोदने से मिलने वाला जल, कुम्भेभिराभृताः (वही)– घड़ों में रखा गया जल, अनभ्रयः (वही)–कुदाल के बिना हाथ काष्ठ आदि से निकले जल से जुड़ी शब्दावली, जल विज्ञान के साथ–साथ उनके स्रोतों तक पहुँचने की तकनीकों के लिए भी भारतीय ज्ञान परंपरा की दृष्टि से एक नवाचारी तथा बहुभाषाविषयक अनुसंधान का मार्ग प्रशस्त करता है।

जब आधुनिक संदर्भ में मौसम विभाग तथा उसके विज्ञान की बात करते हैं तो भारतवर्ष में ऋतु शास्त्र का जो विस्तृत तथा सटीक वर्णन है, उसके विषय में समुचित रूप से समन्वित अनुसंधान करने की आवश्यकता है जिसका संबंध न केवल ज्योतिष तथा आयुर्वेद से है, बल्कि वायु की दिशा, गति, शकुन तथा अपशकुन के साथ वनस्पति विज्ञान से भी है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र के सीताध्यक्ष प्रकरण में वर्षा के शोभन संवत्सर का वर्णन है जो इस लिहाज से भी बहुत ही महत्त्वपूर्ण है– *तस्योपलब्धिर्बृहस्पतेः, स्थानगमन गर्भाधानेभ्यः शुक्रोदयास्तमय चारेभ्यः सूर्यस्य प्रकृति वैकृताच्च।* आचार्य वराहमिहिर वायुमंडल में वृष्टि गर्भाधान के समय होने वाली आकाशीय तब्दीली का जो सटीक वर्णन करते हैं, वह तथ्य भी भारतीय ज्ञान परंपरा के शोध की दृष्टि से बहुत ही उपयोगी माना जाना चाहिए। वराहमिहिर का चिंतन है कि वृष्टिगर्भ के आधान

काल के नक्षत्र के आधार पर उसका प्रतिफलन या असफलता निर्भर करती है। वृष्टि गर्भाधान के समय पवन (वायु), बादल, गर्जन, विद्युत तथा शीकरवर्षा आदि की भूमिका बहुत ही निर्णायक होती है–

हस्तीसमुद्रादादाय करेण जलमीप्सितम् ।
दद्याद् घनाय तद् दद्याद् वातेन प्रेरितो घनः ।।
स्थाने स्थाने पृथिव्यां च काले काले यथोचितम्।
ईशेच्छायाआविर्भूतम् च न भवेत् प्रतिबंधकम्।।

भारतीय ज्ञान परंपरा में मौसम विज्ञान की कितनी सटीक जानकारी थी। शुक्ल यजुर्वेद में आज जो महीनों के पारंपरिक नाम और उनकी विशेषता है, उसकी भी चर्चा पढ़ने को मिलती है। यथा बसंत (चैत्र–वैशाख–मधुश्चमाधवश्च वासन्तिका वृत्त, 13. 25), ग्रीष्म (ज्येष्ठ–आषाढ़–शुक्रश्च शुचिश्च ग्रीष्मावृत्त, 14.6), वर्षा (श्रावण –भाद्रपद, नमश्च नमस्यश्च वार्षिकावृत्त, 14.15), शरद (आश्विन– कार्तिक – इषश्चोर्जश्च शारदावृत्त, 14.16, हेमंत (मार्गशीर्ष–पौष, सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृत्त, 14.27) तथा शिशिर (माघ फाल्गुन, तपश्च तपस्यश्च शैशीरावृत्त, 15.57) आदि संदर्भ भी महत्त्वपूर्ण हैं। लेकिन यहाँ यह भी कोई कम चिंता की बात नहीं है कि आज की युवा पीढ़ी में नगण्य तरुण या तरुणी होंगे जिन्हें भारतीय ज्ञान परंपरा के अनुसार ये पारंपरिक नाम जबान पर हो। यदि ऐसी चूक होगी, तो धीरे–धीरे इन्हें भुला या भुलवा दिया जाएगा। जैसे अब चंद्र बिंदु की जगह बिंदु से ही काम चलाने की प्रवृत्ति देखी जा रही है। जबकि सच तो यह है कि चंद्र बिंदु को भूलने को आचार्य पाणिनि के व्याकरण की दृष्टि से उसके व्याकरणमूलक फलसफा से मुँह मोड़ा जाना ही कहा जाएगा। इसका भी ख्याल रहे कि आज के दुनिया भर के भाषावैज्ञानिक पाणिनि की भाषावैज्ञानिकता का लोहा मान रहे हैं। जब हम भारतीय ज्ञान परंपरा की बात करते हैं तो अमूमन भारत के ट्रेडिशनल विज़्डम को मानो ताक पर ही रख देते हैं। इसका अर्थ यह है कि कुछ ज्ञान–विज्ञान हम अपनी पीढ़ी से भी व्यावहारिक दृष्टि से जानते और सीखते हैं, भले ही वह पूर्व में लिखित हो या पन्नों से गुमनाम हो गए हों। तुलसीदासकृत रामचरितमानस का ही उदाहरण लिया जाए। भारत में यद्यपि ऐसे असंख्य कृषक हैं जिन्होंने रामचरितमानस को कभी भी हस्तस्पर्श भी नहीं किया होगा। लेकिन वे सुख–दुख के क्षणों में रामचरितमानस के दोहों को सुभाषित वचनों के रूप में अनायास सुना कर या बोल कर अपने आत्मविश्वास की श्रीवृद्धि करते हैं। इसलिए यह भी आवश्यक है कि संस्कृत साहित्य के ज्ञान–विज्ञान के साथ–साथ विशुद्ध रूप से साहित्य में वर्णित इन तथ्यों को भी ठीक ढंग से प्रकाश में लाया जाए। भारतीय दर्शन में पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष) और आचार्य मम्मट आदि के काव्य प्रयोजनों को चरितार्थ करके दुनिया में व्याप्त हो रहे संत्रास, तनाव तथा मनोवैज्ञानिक

समस्याओं के साथ साथ भौतिक लोलुपता का निदान भी भारतीय ज्ञान परंपरा के माध्यम से अपाकृत करने की आवश्यकता है। प्रो. गिरीश्वर मिश्र ने भी अपने आलेख में इन तथ्यों को बताते हुए मानव जाति को आगाह करते लिखा है– *भारतीय ज्ञान परंपरा शरीर, मन और पर्यावरण के आवश्यक संतुलन पर बल देती है। यह हमारी सभ्यता के उत्कर्ष का साधन बन सकती है, बशर्ते हम साहस और विवेक के साथ काम करें। यह परंपरा सब किसी की है और सबके लिए है।* (मानसिक स्वराज की भी आवश्यकता है, गिरीश्वर मिश्र, दैनिक जागरण, दिनांक 18 जुलाई 2025 दिल्ली)।

हम बात कर रहे थे ट्रेडिशनल विज़्डम की, जलवायु तथा कृषि विज्ञान के मर्मज्ञ आचार्य पराशर ने मेघ के रूप–रंग, आकृति तथा स्वभाव आदि के हिसाब से बताते हुए उनका नाम लिखा है कि आवर्त, संवर्त, पुष्कर तथा द्रोण के आकार तथा प्रकार के अनुसार क्रमशः जमीन के किसी एक भाग पर (खंड वृष्टि), संपूर्ण भूमि पर जलवृष्टि, अत्यंतवृष्टि तथा पर्याप्त वृष्टि होती है। वस्तुतः इन तथ्यों को खेतिहर समाज मूलतः पराशर के मूल ग्रंथ से नहीं सीखा होगा, बल्कि अपने पारंपरिक सान्निध्य से यह ज्ञान अर्जित किया होगा। मुझे भी अच्छी तरह याद है कि मेरी माता जी मेरे स्कूल जाने और आने के समय का सटीक अंदाज़ सूरज भगवान के उगने तथा अस्तांचल की ओर परिक्रमा लगाते वक्त आंगन में धूप छाँव के स्थान परिवर्तन मात्र से ही समझ लेती थीं। उन्होंने दिल्ली का जंतर–मंतर तो कभी देखा नहीं!

इस आलेख में औपनिवेशिक कूटनीति के तहत आयुर्वेद तथा ज्योतिष के पृथक् पृथक् रूप में अध्ययन–अध्यापन की खतरनाक परिपाटी का जो जिक्र किया गया है, उसका तार इन दोनों के साथ कृषि विज्ञान से भी बहुत ही नजदीक का मालूम पड़ता है। इसका बहुत बड़ा कारण यह भी है कि पर्यावरण/जलवायु विज्ञान की चर्चा करते वक्त भारतीय कृषि विज्ञान के चिंतक वर्षेश अर्थात् राजा ग्रह के अनुसार वार्षिक वर्षा, कृषि उत्पादन के साथ–साथ स्वास्थ्य के लाभ–हानि की भी बातें लिखते हैं। संस्कृत शास्त्र में लिखा गया है कि वर्षेश ग्रह सूर्य के होने पर स्वल्प या अपर्याप्त वार्षिक वर्षा तथा कृषि के उत्पादन में भी हानि होती है। साथ ही साथ आँखों की बीमारी, बुखार तथा उपद्रव आदि की पूरी की पूरी संभावना बनती है और वर्षेश गुरु की स्थिति में प्रचुर मात्रा में शोभन वृष्टि, उत्तम कृषि तथा शांति और समृद्धि की स्थिति बनती है। अतः जब हम संस्कृत तथा भारतीय ज्ञान परंपरा की बातें करें तो इन सब अमूल्य तथ्यों को प्रकाश में लाने का अवश्य प्रयास किया जाना चाहिए। यह सटीक भारतीय ज्ञान परंपरा का ही परिणाम था कि धान्यबीज, कोशीधान्य (मूंग, उड़द आदि), कांडबीज (ईख आदि जो टुकड़े कर के बोए जाते हैं) को रोगमुक्त रखने का प्रभावी उपाय भी बताए गए हैं। कौटिल्य के अनुसार धान्यबीज को रात के वक्त ओस में तथा दिन में सात दिनों तक धूप में रखा जाना चाहिए। उसी प्रकार कोशीधान्य को तीन दिन–रात

या पाँच दिन–रात ओस–धूप में रखा जाना चाहिए। यह तथ्य अलग है कि सूअर की चर्बी ने अंग्रेजों के खिलाफ सिपाही विद्रोह के रूप में प्रथम भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के रूप में प्रख्यात होकर अपनी पहचान बनाई जिसको समय के हिसाब से एक नया नैरेशन बनाया गया। लेकिन यहाँ यह बात भी नहीं भूलनी चाहिए कि कौटिल्य का मानना है कि कांड बीज के कटे स्थानों पर शहद, घी तथा सूअर की चर्बी के साथ गोबर मिला कर रखना चाहिए और शाखी बीज (आम तथा कटहल आदि) पर गाय की अस्थि तथा गोबर के साथ मिलाकर रखना चाहिए– *तुषारपायनमुष्णशोषणं चासप्त रात्रादितिधान्य बीजानां त्रिरात्रं पंचरात्रंवा कोशीधान्यानां मधुघृतशूकरवसाभिः शकृद्युक्ताभिः कांडबीजानां छेदलेपो मधुघृतेन कन्दानाम्, अस्थिबीजानां शकृदालेपः शाखिनां गतं दाहो गोस्थिशकृद्भिः काले दौह्रदं च।* आज के समय में यह एक नए विमर्श की संभावना बुनता है। लेकिन यह चौंकाने वाली बात है कि आमतौर पर हम कौटिल्य को एक राजनीतिक चिंतक या कूटनीतिज्ञ के रूप में ही जानते हैं। उसके इस विश्वविश्रुत ग्रंथ के बहुआयामी पक्षों को उजागर करना समय की माँग है। उसी प्रकार भारतीय ज्ञान परंपरा के नजरिए से वात्स्यायन के कोकशास्त्र कामसूत्र दुनिया भर में मशहूर हैं, उसके अलावा उसमें उद्यान यात्रा की भी चर्चा है। सामाजिक उत्सव में महिला पुरुष आदि उद्यान/वाटिका आदि के भ्रमण के लिए बाहर जाते थे। इससे स्पष्ट है कि आम जनजीवन में लोकानुरंजन के लिए प्रकृति सुषमा तथा उद्यान का कितना महत्त्व होता था। महाकवि कालिदास के नाटक 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में भी सर्वाधिक लोकप्रिय तथा भावनात्मक और प्रभावी दांपत्य जीवन के साथ–साथ एक संयुक्त परिवार के लिए नवविवाहिता के लिए जो उपदेश दिया गया है, वह श्लोकचतुष्ट्य पद्य के रूप में नामचीन है। कालिदास ने उन चारों श्लोकों में वात्स्यायन के इस कामसूत्र से अनेक शब्दगुच्छ को उठा लिया है। एक शिक्षक होने के नाते मैं भी यह अनुभव करता हूँ कि साहित्य के अध्यापक को इन श्लोकों को पढ़ाते समय इसके श्रृंगारिक महत्त्वों के अतिरिक्त भारतीय मूल्यों, आस्था, अध्यात्म तथा सांस्कृतिक मूल्यों के नजरिए से भी इसकी युगीनता पर प्रकाश डालना चाहिए जो तथ्य अमूमन अछूता ही रह जाता है। इससे राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के अनुसार नवाचारी तथा बहुविषयविषयक समन्वित अनुसंधान को काफी बल मिलेगा। चित्त और मस्तिष्क से संयुक्त परिवार को आज सांस्कृतिक मूल्यों का स्खलन तथा आपसी रिश्तों में गर्माहट की कमी तथा मनुष्य के एकाकीपन से भी यही निजात दिला सकता है क्योंकि संस्कृत वाङ्मय में तो ज्ञान–विज्ञान पर्याप्त रूप से भरा पड़ा है और इन पर अब विद्वानों का ध्यान भी जा रहा है।

इसका बहुत बड़ा सबब यह भी है कि वैश्वीकरण का प्रभाव हमारे द्वार पर दस्तक दे रहा है जहाँ उपभोक्तावाद इसके बाजारीकरण का एकमात्र उद्देश्य बन

चुका है। किंतु संस्कृत की वैश्विक, नैतिक तथा मूल्य–आधारित ज्ञान प्रणाली भौतिकवादी जीवनशैली के दुष्प्रभावों को न्यूनतम करने में अधिक सार्थक हो सकती है जिसमें पुरुषार्थचतुष्ट्य की भूमिका एक प्रभावी उपाय के रूप में सामने आ सकती है।

सादा जीवन उच्च विचार को चरितार्थ करने वाला यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि वैदिक ऋषि, आचार्य और उनके शिष्य स्वयं चलते–फिरते पुस्तकालय और अभिलेखागार के रूप में जीवंत थे और ये शाश्वत और शास्त्रीय ज्ञान अर्थव्यवस्था के अंग थे जो आज की तरह कंप्यूटर शिक्षा से उत्पन्न सूचना थकान सिंड्रोम (कुछ हद तक) से परे था क्योंकि संस्कृत अन्य भाषाओं या विषयों की तरह सिर्फ रोजगार देनेवाली भाषा नहीं है, बल्कि इसका रिश्ता सामाजिक तथा जीवन प्रबंधन के साथ बहुत ही नजदीक का है। यही कारण है कि गुरुकुलीय भारतीय ज्ञान प्रणाली में विभिन्न शाखाओं के अध्ययन केंद्र थे। यहाँ यह बताना भी महत्त्वपूर्ण है कि गुरुकुलों ने भारत के स्वतंत्रता संग्राम में भी भारी योगदान दिया है। भिक्षा मांगना और भोजन बनाना, ब्रह्मचारियों के लिए उनके जीविकोपार्जन और संपर्क कक्षा/प्रशिक्षण कार्यक्रम का भाग हुआ करता था, जो आज के विशेषीकृत पाठ्यक्रमों के समान ही माना जा सकता है। वास्तव में, यह एक ऐसी मूल्यांकन (स्कोर/क्रेडिट) प्रणाली थी जो छात्र की आंतरिक व्यक्तित्व में संश्लेषित होती थी और आजीवन मूल्य–आधारित सतत शिक्षा के रूप में कार्य करती थी। ग़ौरतलब है कि उस समय जाति या पंथ आधारित कोई भेदभाव नहीं था, यहाँ तक कि वैदिक युग के प्रारंभिक चरण में भी ऐसा नहीं था। लेकिन दुर्भाग्यवश, मैक्समूलर जैसे अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने एकीकृत तथा 'सबका साथ सबका विकास' के इस वैदिक ज्ञान को सर्वथा ओझल ही करने का प्रयास किया।

इसी साल सिक्किम सरकार द्वारा आयोजित पंचदिवसीय संस्कृत शिक्षक प्रशिक्षण कार्यशाला के उद्घाटन के एक ऐतिहासिक अवसर पर केंद्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय सीएसयू), दिल्ली के कुलपति प्रो. श्रीनिवास वरखेड़ी ने अपने एक वक्तव्य में कहा है कि संस्कृत केवल एक भाषा ही नहीं, अपितु भारतीय ज्ञान परंपरा की जीवन रेखा भी है। यही कारण है कि भारतीय ज्ञान परंपरा के लिए संस्कृत मेरुदंड की तरह है। उस वक्तव्य के इस आलेख के संदर्भ में भी अनेक मायने लगते हैं। साथ ही साथ एक और शोध पत्र भी पठनीय हो सकता है (सम साइंटिफिक एप्रोचेज इन संस्कृत, मल्टीमीडिया एंड ग्लोबलाइज़ेशन, डॉ. अजय कुमार मिश्र, संस्कृत– विमर्श, अंक 24 जनवरी 2023 – जून 2023, वर्ष 2024, प्रधान संपादक प्रो. श्रीनिवास वरखेड़ी, केंद्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, दिल्ली) जिसमें यह स्पष्ट करने का भरसक प्रयास किया गया है कि वैश्विक मानवतावाद की अवधारणा, जिसे संस्कृत साहित्य में वसुधैव

कुटुंबकम् या यत्र विश्वं भवतेकनीडम् आदि के रूप में चित्रित किया गया है। यह पूर्णतः मानवतावादी दृष्टिकोण और बहुभाषी सहवर्ती अध्ययन के साथ विश्व सभ्यता के अध्ययन की एक सह शाखा है और यह संस्कृत भाषा है जिसकी मानव मूल्य आधृत वैज्ञानिक भावना सदैव से ही वैश्विक समुदाय को आकर्षित करने और भारत से जोड़ने के केंद्र में रही है, विशेषकर उन लोगों के लिए जो अपने मूल निवास (भारत) से विश्व के विभिन्न देशों में जा कर बस गए हैं। यहाँ तक कि एनआरआई (अनिवासी भारतीय, भारतवंशी) भी संस्कृत और अपनी सांस्कृतिक विरासत की तहक़ीक़ात के लिए लालायित हैं जिसके मूल में संस्कृत और उसमें समाहित भारतीय ज्ञान परंपरा का प्रतिगुंजन उन्हें बार–बार हिंदुस्तान की ओर आकर्षित कर रहा है। भारतीय ज्ञान परंपरा को उन्मीलित करने में डायस्पोरिक स्टडी के समय इस नौस्टल्जिया को माइटोकौन्ड्रिया की तरह एक ऊर्जागृह के रूप में समझा जाना चाहिए। संस्कृत के जरिये भारत के पुनर्निर्माण में आईकेएस की निर्णायक भूमिका हो सकती है। इससे संस्कृत भाषा को और अधिक ताज़गी तथा नवजीवन मिलेगा।

भारतीय ज्ञान प्रणाली कला, ललित कला, विज्ञान तथा सामाजिक विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, जलवायु विज्ञान, कृषि विज्ञान, मौसम विज्ञान, ज्योतिष विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान, भूकंप विज्ञान, धातु विज्ञान, प्राकृतिक संतुलन, उद्यान विज्ञान, फूलवारी विज्ञान तथा पशुशास्त्र विज्ञान के साथ–साथ समसामयिक जनजीवन से जुड़ी अनेक समस्याओं के प्रबंधन तथा निदान में रामबाण की भूमिका निभा सकती है।

बहुचर्चित पुस्तक वृक्षायुर्वेद में लिखा है कि वृक्ष खुद की छाया, पुष्पों और फलों के जरिये क्रमशः धर्म, अर्थ और काम को सिद्ध करने में सहायक होते हैं। इसलिए प्रयासपूर्वक इन वृक्षों की रक्षा करनी चाहिए– *अतो धर्मार्थकामानां छायापुष्पफलादिभिः । प्रसाधकतमाः वृक्षाः पालनीयाः प्रयत्नतः*।।98।। इस शोध पत्र में जो शकुंतला की अगाध प्रकृति प्रीति की बात कही गई है, उससे वृक्ष विज्ञान तथा आईकेएस का महत्त्व स्पष्ट होता है। साथ ही साथ इसकी भी पुष्टि होती है कि प्रकृति को कैसे हिंदुस्तानी फलसफ़ा से जोड़कर क्लाइमेट जस्टिस को भारतीय अंदाज़ में एक क्लासिक्ल तथा आध्यात्मिक चिंतन क्षितिज दिया गया है। यहाँ भारतीय (स्व) की दृष्टि से यह भी साफ कर देना जायज़ लगता है कि आंग्ल साहित्य में जिस रोमांटिसिज्म़ में मानवीकरण की बात की गई है, उसमें प्रकृति के ऊपर मनुष्य के हाव–भाव को ही अधिक तरजीह दी गई है, न कि पुरुषार्थ चतुष्ट्य। यह तथ्य अलग है कि कुछ नक़्क़ाद के हिसाब से हिंदी साहित्य में यह काल छायावाद के रूप में फला–फूला जिसमें रहस्य को अधिक बल दिया गया। अतः यह समय की मांग है कि इन सब तथ्यों को आईकेएस की कसौटी पर मूल्यांकित किया जाना चाहिए ताकि भारतप्रत्यय की पुनर्स्थापना हो सके।

फूलवारी विज्ञान तथा कृषि आयुर्वेद की भारतीय परंपरा को लेकर जो पुराकालीन कृषि वैज्ञानिकों ने अनमोल नुस्खा दिया है उसे, आज के कृषि विज्ञान में लागू किया जा सकता है। इससे औरगेनिक तथा अनऔरगेनिक खेती का अंतर भी स्पष्ट होता है। चर्चित ग्रंथ उपवनविनोद में यह उल्लेख है कि पके हुए गन्ने के रस में विदारीकंद का चूर्ण मिलाकर फूल वाले पौधे की जड़ों में लेपन करने से और ईख (गन्ने) के रस सेचन करने पर उस तरु में शीघ्र या असमय ही फूल खिल जाते हैं

सम्पक्वेक्षुरसान्वितविदारिकन्देन लिप्तमूलस्य।
सिक्तस्येक्षुरसेन च तरोरकाले भवन्ति कुसुमानि।। 149।।

भारतीय ज्ञान परंपरा में पशुशास्त्र विज्ञान पर विमर्श भी अपेक्षित है। गजशास्त्र (पालकाप्य रचित पालकाप्यम् इसका दूसरा नाम) के दूसरे प्रकरण– गजोत्पत्तिः (40–43) में लिखा गया है कि ब्रह्मा ने आठ तरह के दिग्गज हाथी– ऐरावत, पुण्डरीक, पुष्पदंत, वामन, सुप्रतीक, अंजन, सार्वभौम और कुमुद को सृजित किया, उसी तरह आठ हथिनी भी– अभ्रमु, कपिला, ताम्रकर्णी, अंगना, अनुपमा, अंजनावती, शुभ्रदंती और पिंगला। भारतीय देवशास्त्र में यह मान्यता है कि ऐरावत भगवान इंद्र के लिए अभिप्रेत हैं। इस गजशास्त्र में ऐरावत की विशेषताओं का जो वर्णन किया गया है उससे गजशास्त्र की शास्त्रीयता तथा वैज्ञानिकता के साथ–साथ ज्योतिषशास्त्र की सामुद्रिक विद्या की भी झलक मिलती है। ऐरावत के विषय में लिखा गया है कि ब्रह्मा ने बहुत ही तेज गति वाले, शौर्यशाली, चाँदी की तरह सफेद रंग वाले, समग्र प्रमाणों और अंगों से युक्त, कांति से भरपूर, कोमल गोलाकार सूंड वाले, एक ही सूंड से भोजन तथा सूंघने में समर्थ, चार तीक्ष्ण दाँतों वाले, शहद के समान उज्ज्वल कांति वाले, विशालकाय कानों वाले, चार पैरों वाले, भूमि तक लंबी पूँछ वाले ऐरावत नामक लोकप्रसिद्ध हाथी का रचना की।

ध्यातव्य है कि यह इरावती का पुत्र होने के कारण ऐरावत के रूप में जाना जाता है– *जवनं बलिनं शूरं रौप्यपर्वतसन्निभम्। युक्तं सर्वैः प्रमाणैश्च द्युतिमन्तमनेकपम्।। मृदुना परिपूर्णेन सुवृत्तेनायतेन च। करेणैकेन चोपेतमाहाराघ्राणकर्मणा। चतुर्भिरायतैस्तीक्ष्णैयुक्तं दन्तैर्मधुप्रभैः। पृथुकर्णं चतुष्पादं दीर्घमाभूमिवालधिम्।। श्रीमन्तं नामधेयेन ख्यातमैरावतं नृपः। इरावतीपुत्रभावादैरावत इति स्मृतः।।* (गजशास्त्र, दूसरा प्रकरण, गजोत्पत्ति–14–17)। इतना ही नहीं, इस शास्त्र में हाथी के शुभ और अशुभ लक्षण तथा इलाज का भी प्रावधान है जिसे आज की पशु (मवेशी) चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से जाँचने तथा परखने की आवश्यकता है। लगभग वैसे ही लक्षणों से सुसंपन्न अभ्रमु इस ऐरावत की भार्या है। यह भी कहा गया है कि हाथियों के सोने का स्थान सूखे गोबर तथा धूल से युक्त होना चाहिए और शरद तथा ग्रीष्म ऋतुओं में इन्हें घी की सिकाई लाभप्रद होती है। गौरतलब है कि मातंगलीला (नीलकंठ),

गजशिक्षा (नारद मुनि), मानसोल्लास (सोमेश्वर) तथा अग्नि पुराण आदि में भी हाथियों के विषय में चर्चा है जिन्हें आईकेएस के नजरिए से तहकीकात किया जाना चाहिए।

उसी प्रकार विविध क्षेत्रों के हिसाब से घोड़े की विशेषता भी पशु शास्त्र पर व्यापक प्रकाश डालता है। गान्धार कुल में उत्पन्न विभिन्न रंगों से युक्त, युद्ध में अचल तथा बलवान होते हैं, वहीं सैंधव कुल में उत्पन्न घोड़े बलशाली, मजबूत कंधों वाले, विशालकाय वक्ष स्थल, बड़ी नाक तथा पतले होंठ तथा गोलाकार शरीर वाले होते हैं।

वृक्षायुर्वेद यह स्पष्ट करता है कि वास्तव में वही राजा कहलाता है जिसके भवन– परिसर/परिसर में आम जनमानस के लिए उपयोगी, मनोरम, कमल–पुष्पों से युक्त कुआँ (या तालाब) सहित उत्तम उपवन होता है। यहाँ पर राजा की संपन्नता तथा वैराट्य भाव को स्पष्ट करने के लिए राजा के लिए आम जनमानस के लिए उद्यान आदि की व्यवस्था को आवश्यक बताया गया है। इससे प्राकृतिक सुषमा तथा वास्तु–विज्ञान पर भी प्रकाश पड़ता है। आज जो नगरीय स्वच्छता तथा सौंदर्यीकरण की बातें की जा रही है, उसका उल्लेख संस्कृत साहित्य में बहुत ही पहले किया जा चुका है। पर्यावरण संतुलन के संदर्भ में कहा गया है कि वृक्ष निकम्मे पुत्रों से अच्छे होते हैं जो अपने प्रति दान से इहलोक ही नहीं, अपितु परलोक में भी फल, पत्र तथा जलादि से कृतार्थ कर तर्पण करते हैं। यह तथ्य भी न केवल भारतीय ज्ञान परंपरा की दृष्टि से, अपितु विकसित भारत–2047 के लिए भी काफी महत्त्वपूर्ण है। इस शोध पत्र में पाश्चात्य साहित्य के संदर्भ में रोमांटिसिज़्म की दार्शनिक तथा आध्यात्मिक सार्वभौमिकता की महत्ता की जो चर्चा की गई है, उस दृष्टि से वृक्षायुर्वेद का विचार है कि धर्म तथा अर्थ से विहीन दश पुत्रों के भरण–पोषण के बनिस्पत पाँच वृक्षों को लगाया जाना और उनका रक्षण अधिक श्रेष्ठकर होता है। इसका सबब यह है कि लगाए गए वृक्ष अपने पत्रों, पुष्पों, फलों और जल द्वारा पितरों के लिए तर्पण करते हैं – *वरं भूमिरुहाः पंच न तु कोष्ठरुहाः दश। पत्रैः पुष्पैः फलैस्तोयैः कुर्वन्ति पितृतर्पणम्।।5।।* यही कारण है कि भारतीय संस्कृति वैदिक काल से ही प्रकृति पूजक रही है और उसके प्रति श्रद्धा और भक्ति सदा बनाई रखी है। लेकिन कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय चिंतन में प्रकृति अर्चना के अध्यात्म को समझने तथा समझाने में चूक की है। गांधीवादी चर्चित इतिहासकार बिपिन चंद्र आधुनिक भारत से जुड़ी अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि कुछ पश्चिमी दुनिया के इतिहासकारों ने यह भ्रम फैलाने का प्रयास किया है कि चूँकि भारतीय प्रकृति पूजक थे अतः उनके पास प्रशासनिक ज्ञान की कमी थी। अतः भारतीय चिंतन की ज्ञान परंपरा आज के प्राकृतिक असंतुलन, प्रदूषण तथा क्लाइमेट जस्टिस के निदान हेतु एक वैश्विक कालजयी भूमिका निभा सकती है। इसका बहुत बड़ा कारण यह भी माना जा सकता है कि पाश्चात्य संस्कृति जहाँ नितांत

रूप से भोगवादी संस्कृति रही है, वहीं भारत में अर्थ तथा काम क्रमशः धर्म तथा मोक्ष से संयमित है।

वैश्वीकरण का प्रभाव हमारे द्वार पर दस्तक दे रहा है जहाँ उपभोक्तावाद इसके बाज़ारीकरण का एकमात्र उद्देश्य बन चुका है। किंतु संस्कृत की वैश्विक, नैतिक तथा मूल्य आधारित ज्ञान–प्रणाली भौतिकवादी जीवनशैली के दुष्प्रभावों को न्यूनतम करने में अधिक सार्थक हो सकती है। अतः इसमें पुरुषार्थचतुष्ट्य की कारगर भूमिका हो सकती है।

उल्लेखनीय है कि वैदिक ऋषि, आचार्य और उनके शिष्य स्वयं चलते–फिरते पुस्तकालय और अभिलेखागार की तरह थे जो शाश्वत और शास्त्रीय ज्ञान अर्थव्यवस्था के अंग थे और आज की तरह कंप्यूटर शिक्षा से उत्पन्न सूचना थकान सिंड्रोम (कुछ हद तक) से परे था। गुरुकुल भारतीय ज्ञान प्रणाली की विभिन्न शाखाओं के अध्ययन केंद्र थे। यही कारण है कि द टाइम्स ऑफ इंडिया लिखता है कि शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के प्रकल्प आईकेएस ने केंद्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, दिल्ली से मिल कर एक बहुत ही उपयोगी नवाचारी पाठ्यक्रम सेतुबंध विद्वान योजना का आगाज किया है। इसमें गुरुकुलों से पारंपरिक शिक्षाप्राप्त विद्यार्थियों को अब प्रतिष्ठित आईआईटीज़ में शोध के अवसर प्राप्त होंगे, जिसमें उन्हें ₹65,000 तक की मासिक फैलोशिप और अनुसंधान अनुदान भी मिलेगा। इस योजना का मूल उद्देश्य शास्त्रीय ज्ञान परंपरा को आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जोड़ते हुए राष्ट्रनिर्माण में योगदान देना है। वस्तुतः यह योजना भारत की परंपरागत विद्या परंपरा को राष्ट्रीय शोध प्रणाली से जोड़ने का ऐतिहासिक कदम है जो भारतीय ज्ञान की जड़ों को, भारत प्रत्यय को और समृद्ध तथा चतुरस्र बनाएगा। आशा है, केंद्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय (सीएसयू), दिल्ली इसके माध्यम से प्राचीन शास्त्रज्ञान को विज्ञान, प्रौद्योगिकी और सामाजिक विज्ञान आदि जैसे आधुनिक क्षेत्रों से जोड़ने में अग्रणी भूमिका निभा सकेगा। वस्तुतः यह संस्कृत तथा सीएसयू के लिए एक स्वर्णिम अवसर है जिसके माध्यम से ज्ञान विज्ञान के क्षेत्रों में संस्कृत शास्त्रों का सिक्का फिर से जमाया जा सकता है।

ग़ौरतलब है कि संस्कृत के पहले डिजिटल विश्वकोश का विमोचन अखिल भारतीय शिक्षा समागम, दिल्ली, 29 जुलाई 2025 के दौरान किया गया। वह वस्तुतः संस्कृत तथा भारतीय ज्ञान परंपरा की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना जाना चाहिए जिसमें 1.5 लाख शब्द भंडार तथा 1 करोड़ संदर्भ दिए गए हैं। इसे संस्कृत की भगिनी भाषाओं तथा विषयों के अध्ययन– अध्यापन तथा अनुसंधान के लिए एक युगांतकारी कदम माना जाना चाहिए। इसका बहुत बड़ा कारण यह भी लगता है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 में भारतीय साहित्य को केंद्र में रखने की जो बात कही गई है, उसके

लिए संस्कृत का यह चलता फिरता इन्साइक्लोपीडिया अब और जगह देखा और पढ़ा जा सकता है। शब्दों का यह विशाल आगार अर्थों का जगमगाता इंद्रधनुष है जिसकी अकूत क्षमता संस्कृत साहित्य तथा उसकी विधाओं की विद्याओं में ही प्रस्फुटित तथा चमत्कृत हो सकती है और इससे भारतीय ज्ञान परंपरा तथा उसके अर्थों तथा संदर्भों की सटीकता बैठाने में आईकेएस के अध्येताओं तथा शोधकर्ताओं के लिए मील का पत्थर साबित हो सकती है। इस प्रकार इस तहक़ीक़ात से तस्दीक होती है कि भारतीय ज्ञान परंपरा के अन्वेषण में संस्कृत की बहुत ही अधिक भूमिका होगी।

संदर्भ

1. Setubandha is the first national & level programme to formally integrate traditional scholars into the research ecosystem of IITs without insisting on conventional degrees. Instead, eligibility is based on a minimum of five years of rigorous study in a recognised gurukul and demonstrable excellence in Shastras or traditional knowledge." said a senior MoE official. The maximum age to apply is 32 years.

2. Govt opens up IITs for students who have studied at non- formal gurukuls, The Times of India, page 12, Delhi dated 29 July 2025

❑❑❑

दुख का कोई पहाड़ नहीं होता
कोई समुद्र नहीं होता दुख का
सिर्फ हाथ होते हैं
छोटे–छोटे
जो दिन भर रस्सी की तरह
बुनते रहते हैं दुख को।

✍ केदारनाथ सिंह

भारतीय ज्ञान परंपरा में भारतीयता के निर्वचन की समस्याएँ

✍ डॉ. रमाकांत राय

दुनिया की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक भारतीय सभ्यता के संबंध में यह कहा जाता है कि यह अकेली ऐसी सभ्यता है जो अविच्छिन्न और अविरल है। इस अविरलता और अविच्छिन्नता के पीछे वह ज्ञान है जो सुस्पष्ट, व्यवस्थित और वैज्ञानिक है। यह एक सुचिंतित विचार–सरणि है जो प्राचीन काल से ही ग्रंथ रूप में, शिलालेख, सिक्कों और स्मारकों पर अंकित है। कला, साहित्य, दर्शन और विज्ञान का एक समृद्ध स्वरूप यहाँ देखने को मिलता है। यह सब समेकित रूप से एक विशेष धारा का निर्माण करते हैं, एक सोच बनाते हैं जो स्थापित करती है कि तत्त्व को जानना संभव है। यह जानना ही ज्ञान है। किसी तथ्य, वस्तु अथवा धारणा को उसी रूप में जानना, जिस रूप में वह है, ही ज्ञान है। इस दृष्टिकोण से भारत में बहुत विपुल संपदा मिलती है। हम इसे ज्ञान भंडार कहते हैं। यह ज्ञानराशि सृष्टि के कल्याण की कामना करने वाली है और मानवता को केंद्र में रखती है। 'वसुधैव कुटुंबकम' इसका महामंत्र है। बहुत प्राचीन काल से ही यह ज्ञानराशि विभिन्न माध्यमों से भारत और विश्व को मिल रही है। विशेष यह है कि लंबे समय तक विभिन्न झंझावातों को सहते हुए यह ज्ञानराशि अविरल बनी हुई है, जिसका प्रमाण हमारे वाङ्मय, वास्तु और लोक में मिलता है। आज जब विश्व में किसी नवीन खोज का पता चलता है तो हम पाते हैं कि यह बोध भारतीय वाङ्मय अथवा लोक परंपरा में विद्यमान है। भारत में ज्ञान की, ज्ञान के अनुषंगी विचार और विमर्श की जो धारा विभिन्न माध्यमों द्वारा हमें प्राप्त होती है, उसे हम भारतीय ज्ञान परंपरा कह सकते हैं। प्राचीनता और अविशृंखल निरंतरता इसकी पहचान है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री श्यामाचरण दुबे ने अपने लेख 'भारतीयता की पहचान' में लिखा है– *सभ्यताओं के इतिहास में भारतीय सभ्यता की एक विशेष पहचान और अस्मिता है। संसार में सभ्यता के कई प्राचीन केंद्र रहे हैं, किंतु उनमें से अधिकांश को हम केवल उनके भग्नावशेषों द्वारा ही जानते हैं। भारतीय सभ्यता में एक अविशृंखल निरंतरता है। पाँच हजार वर्ष पुरानी इस सभ्यता में आज भी अतीत और वर्तमान के बीच की कड़ियाँ सशक्त हैं।*"[1]

भारतीय ज्ञान परंपरा में तीन पद हैं भारतीय, ज्ञान और परंपरा। यह तो स्पष्ट है कि जो भारत का है, जो भारत से संबंधित है, वह भारतीय है। यहाँ यह जानना आवश्यक है कि भारत से हमारा क्या आशय है? एक भौगोलिक इकाई के रूप में जो आज भारत है, वह सन 1947 ईस्वी सन् में अस्तित्व में आया जब हमने अंग्रेजों की दासता से मुक्त होकर से स्वाधीनता पाई। परंतु जब हम भारत अथवा भारतीय कहते हैं तो हमारा आशय अंग्रेजों की पराधीनता से मुक्त होने के बाद स्वशासन के लिए प्राप्त भू–भाग नहीं होता। हम देखते हैं कि प्राचीन मनीषियों ने अपने मंत्रों और ऋचाओं में पृथिवी, भूमि अथवा मृदा तत्त्व के संबंध में चर्चा करते समय किसी भौगोलिक इकाई के प्रति आग्रह ही नहीं रखा। उसके लिए पृथिवी माता है और पृथिवी पर रहने वाले जन पुत्र। वासुदेव शरण अग्रवाल ने 'अथर्ववेद' से उद्धरण लेते हुए 'राष्ट्र का स्वरूप' शीर्षक लेख में बताया है कि *पृथिवी और जन दोनों के सम्मिलन से ही राष्ट्र का स्वरूप संपादित होता है। जन के कारण ही पृथिवी मातृ की संज्ञा प्राप्त करती है। पृथिवी माता है और जन सच्चे अर्थों में पृथिवी का पुत्र है– माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः* (भूमि माता है, मैं उसका पुत्र हूँ।)[2] माता और पुत्र का यह संबंध राष्ट्र का आधार तो माना ही गया है, इसे ही भारतीय विचार पद्धति की पहचान बताया गया है। आचार्य कुबेरनाथ राय अपने निबंध 'जंबूद्वीपे–भरतखंडे' में लिखते हैं– *जब मैं भारत शब्द को पढ़ता–सुनता या बोलता हूँ, तब चेतन स्तर पर इसका सतही अर्थ 'हिंदुस्तान' तो तुरंत पाता ही हूँ, साथ ही एक विचित्र प्रकाशमान–संगीतमय अर्थ का मानसिक भोग भी प्राप्त होता है, और मैं तब 'भारत' शब्द का अर्थ लगाता हूँ, वह भौगोलिक हिंदुस्तान ही नहीं, बल्कि एक दिव्य कल्पलोक, एक प्रकाशमान चिन्मय जगत, जिससे शताब्दी–दर–शताब्दी निरंतर उस आलोक का वितरण हो रहा है, जो हमारी सारी उपलब्धियों, सारे संस्कारों एवं सारे कृतित्व के पीछे सक्रिय है और जब–जब एवं जहाँ–जहाँ इस चिन्मय ज्योतिःसरा की धार में रुकावट, व्यवधान या आड़ आ गई है, तब–तब और तहाँ–तहाँ हमारे जातीय अस्तित्व का लोप हुआ है। और तब मुझे, उस व्याकरणी की, खींचतान कर ही सही, प्रस्तुत की गई बात कि 'भारत' शब्द का संबंध 'भास्वरता' से है और 'भारत' का निरुक्तिगत अर्थ होगा प्रकाशमय या भास्वर लोक; बिलकुल सही जँचती है, यद्यपि इस बात का ऐतिहासिक आधार नहीं। ऐतिहासिक दृष्टि से 'भारत' एक पौराणिक शब्द है। इस शब्द की व्याख्या महाकाव्यों और पुराणों में वर्तमान है।*[3] इस देश को कई अन्य नामों से जाना जाता रहा है, जिसमें हिम वर्ष और अजनाभ वर्ष पुराने नाम हैं। *बहुत प्राचीनकाल में यह देश 'अजनाभ वर्ष' ही कहा जाता था। बाद में इसे 'भारतवर्ष' कहा जाने लगा और आज संविधान में इसे सिर्फ 'भारत' कहकर स्वीकृत किया गया है।*[4] जंबूद्वीप, भारतखंड, आर्यावर्त, हिंद, अलहिंद, हिंदुस्तान, इंडिया, ग्यागर आदि भी इसके नाम हैं।

भारत अथवा भारतवर्ष को दुनिया के मानचित्र में कैसे चिह्नित करें। एक देश के रूप में भारत नाम वैदिक ग्रंथों में नहीं मिलता। पाणिनि के 'अष्टाध्यायी' में प्राच्य भारत का उल्लेख एक छोटे से जनपद के रूप में है। पहली शताब्दी ईस्वी में खारवेल राजाओं के हाथीगुम्फा अभिलेख में पहली बार भारतवर्ष शब्द का उल्लेख मिलता है। विभिन्न पुराणों में भारतवर्ष, भारत का उल्लेख एक भौगोलिक इकाई के रूप में मिलने लगता है। भारतीय मनीषा ने अपने ग्रंथों में इसे कुछ सूत्रों से समझाने का प्रयास किया है। आचार्य कुबेरनाथ राय लिखते हैं– *अपनी धरती के सप्तद्वीपों में एक है, जंबूद्वीप और उसके नौ 'वर्ष' (खंड) हैं, जिनमें एक है भारतवर्ष। इस प्रकार धरती के 'सप्तद्वीप नौ खंड' की कल्पना की गई है।*[5] यहाँ यह स्पष्ट कर देना है कि पौराणिक भुवन–वर्णन या 'भुवनकोश' की अवधारणा आधुनिक भूगोल के मानचित्र से मेल नहीं खाती, तब भी। वस्तुतः भारत कोई निश्चित भौगोलिक भूखंड भर नहीं है। *'भारत' एक 'दिव्य आर्य–भूमि, एक 'दिव्य अनुभव लोक' का पर्याय माना गया है। इसी अर्थ में इसे 'दिव्य आर्य भूमि' कहा गया है। आज से नहीं, बहुत–बहुत दिनों से क्या, सर्वदा से ही। यह दिव्य आर्य भूमि स्थूल आर्यावर्त नहीं, बल्कि एक विशिष्ट मनोदशा में, जिसे मोक्ष या निर्वाण कहा गया है, जीना ही इस दिव्य आर्य भूमि में निवास करना है।*[6] अतः भारत का अर्थ एक दिव्य अनुभव लोक है। इसे किसी भौगोलिक इकाई से समझना दुष्कर है। आर्यावर्त के जंबूद्वीप के भारतखंड पर रहकर, अनुभव करके, उस पुण्यलोक का वासी होकर ही इस भारतभूमि को जाना जा सकता है। यह भारत जिन ऋषभदेव के पुत्र 'भरत' के नाम पर है, उससे अधिक यह भरतवंशियों के नाम का वाहक है जो आर्यों के एक कुल अथवा समुदाय से संबंधित थे। इसे एक जातिवाचक संज्ञा से निःसृत समझना चाहिए। अपने निबंध 'अशोक के फूल' में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है– *रवींद्रनाथ ने इस भारतवर्ष को 'महामानवसमुद्र' कहा है। विचित्र देश है यह! असुर आए, आर्य आए, शक आए, हूण आए, नाग आए, यक्ष आए, गंधर्व आए– न जाने कितनी मानव जातियाँ यहाँ आईं और आज के भारतवर्ष के बनाने में अपना हाथ लगा गईं। जिसे हम हिंदू–रीति–नीति कहते हैं, वह अनेक आर्य और आर्येतर उपादानों का अद्भुत मिश्रण है। एक–एक पशु, एक–एक पक्षी न जाने कितनी स्मृतियों का भार लेकर हमारे सामने उपस्थित हैं। अशोक की भी अपनी स्मृति–परंपरा है। आम की भी है, बकुल की है, चम्पे की भी है।*[7] अपने एक अन्य निबंध में आचार्य द्विवेदी लिखते हैं– *भारतवर्ष क्या है? अनादिकाल की नाना जातियाँ अपने नाना भाँति के संस्कार, रीति–रस्म आदि लेकर इस देश में आती रही हैं। यहाँ भी अनेक प्रकार के मानवीय समूह विद्यमान रहे हैं। ये जातियाँ कुछ देर तक झगड़ती रही हैं और फिर रगड़–झगड़कर, ले–देकर पास–पास बस गई हैं–भाइयों की तरह। इन्हीं नाना जातियों, नाना संस्कारों, नाना धर्मों, नाना रीति–रस्मों का जीवंत समन्वय यह भारतवर्ष*

है। विदेशी पराधीनता ने इसके स्वाभाविक विकास में बाधा पहुँचाई है। उसका बाह्यरूप विचित्र—सा दिखाई दे रहा है।[8]

इसी भारत का, से संबंधित जो है, वह भारतीय है। कहने और समझने को तो यह बहुत सरल और आसान है किंतु जब हम इस विषय पर भी विचार करते हैं तो विभिन्न विचार—आवर्तों, तथ्यों और संकल्पनाओं में उलझ जाते हैं। भारत और भारतीयता को किसी विशेष सीमा—रेखा, चिह्न और पहचान से उसी तरह नहीं व्याख्यायित किया जा सकता, जिस तरह हमारे यहाँ ब्रह्म को निरूपित करते हुए किया गया है। ब्रह्म का निरूपण करते समय जिस तरह 'नेति नेति' कहकर निकल जाते हैं, उसी तरह भारतीयता को भी। यहाँ तक कि हिंदू को व्याख्यायित करते हुए भी इसी पद्धति का आश्रय किया गया है। हिंदू को परिभाषित करते हुए रामधारी सिंह 'दिनकर' ने 'संस्कृति के चार अध्याय' में उद्धृत किया है कि हिंदू *न तो दुष्ट होता है, न विदूषक, न अनार्य। वह सद्धर्मपालक, वैदिक धर्म को मानने वाला विद्वान होता है। हिंदू दुष्टो न भवति, नानार्यो न विदूषकः सद्धर्मपालको विद्वान श्रीतधर्मपरायणः।*[9] हिंदू को परिभाषित करते हुए वह यह तक कहते हैं कि, *नकारात्मक रूप से हम कह सकते थे कि वे व्यक्ति जो मुसलमान, ईसाई, पारसी या यहूदी नहीं हैं, हिंदू हैं।*[10] भारतीय का दायरा इससे भी अधिक उलझाऊ और जटिल है। मोटे तौर पर कह सकते हैं कि भारत को अपना मानने वाला भारतीय है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी अपने निबंध 'भारतीय संस्कृति की देन' में लिखते हैं— *मैं जब भारतीय विशेषण जोड़कर संस्कृति शब्द का प्रयोग करता हूँ तो मैं भारतवर्ष द्वारा अधिगत और साक्षात्कृत अविरोधी धर्म की ही बात करता हूँ। अपनी विशेष भौगोलिक परिस्थिति में और विशेष ऐतिहासिक परंपरा के भीतर से मनुष्य के सर्वोत्तम को प्रकाशित करने के लिए इस देश के लोगों ने भी कुछ प्रयत्न किए हैं। जितने अंश में वह प्रयत्न संसार के अन्य मनुष्यों के प्रयत्न का अविरोधी है, उतने अंश में वह उनका पूरक भी है। भिन्न—भिन्न देशों और भिन्न—भिन्न जातियों के अनुभूत और साक्षात्कृत अन्य अविरोधी धर्मों की भाँति वह मनुष्य की जययात्रा में सहायक है। वह मनुष्य के सर्वोत्तम को जितने अंश में प्रकाशित और अग्रसर कर सका है, उतने ही अंश में यह सार्थक और महान् है। वही भारतीय संस्कृति है।*[11] आज के समय में, जब भारत एक भौगोलिक इकाई के रूप में परिभाषित कर दिया गया है, तब भी यह बताना अत्यंत कठिन है कि किसे भारतीय मानें। समय—समय पर भारतभूमि के लोगों से विदेशी आक्रांताओं का ऐसा संगमन हुआ है और तथाकथित साझी संस्कृति विकसित हुई है कि भारतीय कहने का अर्थ वही नहीं रह जाता जैसा कि प्राचीन वाङ्मय में है। अब इस भारत भूमि में विभिन्न संस्कृतियों के इतने समुच्चय हैं, इतनी पहचान है, ऐसी विविधता है कि उन्हें एक निश्चित खांचे में नहीं रखा जा सकता।

भारतीयता अथवा भारतीय को रेखांकित करते समय एक बड़ा संकट स्थानीयता से निर्मित होता है। संचार और आवागमन का साधन बढ़ने, भौगोलिक सीमाओं के लुप्त होने और वैश्विक ग्राम की नई अवधारणाओं के आलोक में यह परिभाषित करना अधिक जटिल हो गया है। जब तक लोग स्थायी रूप से बस रहे थे, तब इसे चिह्नित करना आसान था किंतु सीमाओं के पार जाकर रह रहे लोगों ने स्थानीयता की दीवार हटा दी है। दोहरी नागरिकता ने यह चुनौती कड़ी की है कि व्यक्ति को किस देश का नागरिक माना जाएगा। दुनिया के दूसरे देशों में यह चिह्नित किया गया है कि बहुत से पड़ोसी देश के नागरिक अपनी पहचान भारतीय बताने में गर्व का अनुभव करते हैं। इसके अतिरिक्त बहुत से ऐसे तत्त्व हैं जो भारतीयता को निरपेक्ष रूप से चिह्नांकित करने में बाधक होते है। ऐसी दशा में इन सबको अध्ययन के दायरे में रखना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। वस्तुतः भारतीयता का क्षेत्र अधिक व्यापक है और यह देश–देशांतर तक व्याप्त है। इस देश का गौरवशाली अतीत और उज्ज्वल भविष्य लोगों को अपनी तरफ आकर्षित करता है और यह आकर्षण इस देश के वैभव को दिन दूना–रात चौगुना बढ़ा रहा है।

यहाँ एक अन्य विवेच्य विषय है अध्ययन की प्रणाली। भारत और भारतीयता को समझने के लिए दृष्टि क्या हो? निस्संदेह भारतीय। भारतीय ज्ञान परंपरा पर चर्चा करते हुए बहुत से लोग विदेशी संस्थाओं से पोषित होकर, उन्हीं के द्वारा उपलब्ध कराए गए सूत्र और तथ्य पर अध्ययन की एक धारा विकसित कर रहे हैं। यह औपनिवेशिक विचारवाली धारा भारत का अध्ययन करने में अक्षम है। राजीव मल्होत्रा और अरविंदन नीलकन्दन ने अपनी शोध पुस्तक 'भारत विखंडन' में इसी की तरफ संकेत किया है।[12] डॉ मनोज कुमार राय लिखते हैं– *सामूहिक चेतना के रूप में प्राप्त इस दाय को ठीक से समझकर ही 'भारत बोध' और 'भारतमाता' के विचार का सही आकलन हो सकता है। आधुनिक यूरोप के इतिहास के माध्यम से इसे समझना असंभव है, क्योंकि 'गंगा नदी को गंगा मैया कहना हमने हिटलर और मुसोलिनी से नहीं सीखा है।'*[13] यानि भारतीय ज्ञान परंपरा का अनुशीलन और अध्ययन भारतीय दृष्टि से ही संभव है।

उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हम जिसे भारत कहते हैं, वह एक प्राचीन और सुस्पष्ट परिभाषित भौगोलिक, सांस्कृतिक इकाई नहीं अपितु उसका स्वरूप समय–समय पर परिवर्तित होता रहा है। इसकी सीमाएँ समय–समय पर घटती बढ़ती रही हैं। वस्तुतः भारत एक भौगोलिक इकाई नहीं, एक सोच और अजस्र धारा है। इसका एक गौरवमयी अतीत है। इसमें कई संस्कृतियों का सम्मिलन हुआ है और उनमें से कई ने अपनी पृथक् पहचान भी सुरक्षित रखी है। पुनः बदले हुए वैश्विक परिदृश्य में भूमंडलीकरण ने भारतीयता की परिभाषा को विस्तृत कर दिया है। इसका निर्धारण

करते समय बहुत सावधानी अपेक्षित है। अतः भारतीय ज्ञान परंपरा का अनुशीलन करते समय यह निर्धारित करना एक दुष्कर और असंभव कार्य है कि किसे भारतीय माना जाए और यदि भारत से येन केन प्रकारेण जुड़े हुए सभी भारतीय हैं तो उनकी परंपरा का संबंध कहाँ से माना जाए। इसलिए इस विषय की विवेचना करते समय बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है और भारतवादी दृष्टि के साथ आगे बढ़ना चाहिए।

सहायक ग्रंथ

1. श्यामाचरण दुबे, भारतीयता की तलाश, भारतीयता की पहचान, संपादक– मनोज कुमार राय, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2023, पृष्ठ–130
2. वासुदेव शरण अग्रवाल, राष्ट्र का स्वरूप, भारतीयता की पहचान, संपादक– मनोज कुमार राय, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2023, पृष्ठ– 82
3. कुबेरनाथ राय, कामधेनु, जंबूद्वीपे–भरतखंडे, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण–1990, पृष्ठ– 86
4. वही, पृष्ठ– 87
5. वही, पृष्ठ–90
6. वही, पृष्ठ– 176
7. हजारी प्रसाद द्विवेदी, अशोक के फूल, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, अठारहवाँ संस्करण, 1990, पृष्ठ–11
8. वही, पृष्ठ–163
9. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, उदयाचल, पटना, 16, द्वितीय संस्करण, पुनर्मुद्रण, 1988, पृष्ठ– 113
10. वही, पृष्ठ– 114
11. हजारी प्रसाद द्विवेदी, अशोक के फूल, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, अठारहवाँ संस्करण, 1990, पृष्ठ–70–71
12. राजीव मल्होत्रा एवं अरविंदन नीलकंदन, हार्पर कॉलिन्स पब्लिशर्स इंडिया, नोएडा, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण 2013
13. मनोज कुमार राय, संपादकीय, भारतीयता की पहचान, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2023, पृष्ठ–13

❑❑❑

भारतीय ज्ञान परंपरा की समकालीन प्रासंगिकता

✍ प्रो. पार्थ सारथी पाण्डेय

यह भारत भूमि महान है। इस भूमि की ज्ञान की अविरल धारा ने संपूर्ण जगत को सींचा है। भारतीय ज्ञान परंपरा पुरातन युग से बहुत समृद्घ रही है। आधुनिक युग में प्रचलित भारतीय ज्ञान और विदेशों से आ रही तथाकथित नवीन खोज जो हमारे ग्रंथों में पूर्व से ही उल्लिखित हैं, भारतीय ज्ञान परंपरा के समृद्धशाली होने का प्रमाण है। भगवान श्री कृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में अर्जुन को मार्गदर्शन दिया कि ज्ञान आत्म–शुद्धि और मुक्ति का सबसे बड़ा साधन है। भारतीय ज्ञान प्रणालियों ने वसुधैव कुटुंबकम (दुनिया एक परिवार है) के विचार से सभी प्राणियों की परस्पर निर्भरता पर जोर दिया। पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधन संरक्षण की मांग को ध्यान में रखते हुए ये सिद्धांत अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होते जा रहे हैं। वास्तव में आध्यात्मिक विकास एवं चैतन्यता वेदांत जैसी भारतीय ज्ञान प्रणालियों द्वारा प्रदान किए जाते हैं, जो वेदों के नाम से जानी जाने वाली प्राचीन पुस्तकों पर आधारित एक दार्शनिक स्वरूप है।

भारत में ज्ञान का एक लंबा इतिहास है जो गंगा नदी की तरह निरंतर जारी है। वेदों–उपनिषदों से लेकर श्री अरबिंदो तक, ज्ञान सभी शोधों का केंद्र–बिंदु रहा है। भारतीय ज्ञान प्रणालियों की भारतीय संस्कृति, दर्शन और आध्यात्मिकता में एक मजबूत नींव है और यह हजारों वर्षों से विकसित है।

प्राचीन काल की शिक्षा प्रणाली, ज्ञान, परंपराएँ और प्रथाएँ मानवता को प्रोत्साहित करती थीं। पुराण में ज्ञान को अप्रतिम माना गया है। भारत के तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला, बल्लभी, उज्जयिनी, काशी आदि शिक्षा एवं शोध के प्रमुख विश्व–प्रसिद्ध केंद्र थे तथा यहाँ कई देशों के शिक्षार्थी ज्ञानार्जन के लिए आते थे। वैदिक काल में महिलाओं की शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रसिद्धि थी जिसमें मैत्रेयी, ऋतंभरा, अपाला, गार्गी और लोपामुद्रा आदि जैसे नाम प्रमुख थे। बोधायन, कात्यायन, आर्यभट्ट, चरक, कणाद, वराहमिहिर, नागार्जुन, अगस्त्य, भर्तृहरि, शंकराचार्य, स्वामी विवेकानंद जैसे अनेकानेक महापुरुषों ने भारत भूमि पर जन्म लेकर अपनी मेधा से विश्व में भारतीय ज्ञान परंपरा की समृद्धि हेतु अतुल्य योगदान दिया है। 'भारतीय ज्ञान परंपरा अद्वितीय ज्ञान और प्रज्ञा का प्रतीक है जिसमें ज्ञान और विज्ञान, लौकिक

और पारलौकिक, कर्म और धर्म तथा भोग और त्याग का अद्भुत समन्वय है। ऋग्वेद के समय से ही शिक्षा प्रणाली जीवन के नैतिक, भौतिक, आध्यात्मिक और बौद्धिक मूल्यों पर केंद्रित होकर विनम्रता, सत्यता, अनुशासन, आत्मनिर्भरता और सभी के लिए सम्मान जैसे मूल्यों पर जोर देती थी। वेदों में विद्या को मनुष्यता की श्रेष्ठता का आधार स्वीकार किया गया था । छात्रों को मानव, प्राणियों एवं प्रकृति के मध्य संतुलन को बनाए रखना सिखाया जाता था। शिक्षण और सीखने के लिए वेद और उपनिषद् के सिद्धांतों का अनुपालन जिससे व्यक्ति स्वयं, परिवार और समाज के प्रति कर्तव्यों को पूरा कर सके, इस प्रकार जीवन के सभी पक्ष इस प्रणाली में सम्मिलित थे।

'संयुक्त राष्ट्र पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों को इस प्रकार परिभाषित करता है—

पारंपरिक ज्ञान या स्थानीय ज्ञान अक्सर प्रतिकूल वातावरण में जीवन और अस्तित्व की जटिलताओं को समझने में मानवीय उपलब्धि का रिकॉर्ड है। पारंपरिक ज्ञान, जो तकनीकी, सामाजिक, संगठनात्मक या सांस्कृतिक हो सकता है, अस्तित्व और विकास के महान मानवीय प्रयोग के हिस्से के रूप में प्राप्त किया गया था।

अनुसंधान एवं ज्ञान के परिदृश्य में पूरा विश्व तेजी से परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। मानविकी और कला की मांग बढ़ेगी क्योंकि भारत एक विकसित देश बनने के साथ—साथ दुनिया की तीन सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में से एक बनने के साथ—साथ आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर है। वर्तमान में सीखने के परिणामों और जो आवश्यक है उनके मध्य की खाई को, प्रारंभिक बाल्यावस्था से देखभाल और उच्चतर शिक्षा के माध्यम से शिक्षा में उच्चतम गुणवत्ता, इक्विटी और सिस्टम में अखंडता लाने वाले प्रमुख सुधारों के जरिए पाटा जा सकता है।

भारतीय भाषाओं को महत्त्व देते हुए अभियांत्रिकी, चिकित्सा और व्यावसायिक पाठ्यक्रमों सहित लगभग सभी पाठ्यक्रमों में भारतीय भाषा का विकल्प रखा गया है। शिक्षकों और अभिभावकों को हर बच्चे की विशिष्ट क्षमताओं की स्वीकृति, पहचान और उनके विकास हेतु संवेदनशील बनाने की योजना इस शिक्षा नीति के माध्यम से करने का प्रयास किया गया है। अकादमिक और अन्य क्षमताओं में सर्वांगीण विकास पर पूरा ध्यान देने का उल्लेख है। बुनियादी साक्षरता और संख्या ज्ञान को सर्वाधिक प्राथमिकता दी गई है जिससे कि सभी बच्चे कक्षा तीन तक साक्षरता और संख्या ज्ञान विषयों को सीखने के मूलभूत कौशलों को प्राप्त कर सकेंगे। रटकर परीक्षा पास करने वाली पद्धति को इस शिक्षा नीति में नकारा गया है और अवधारणात्मक समझ पर जोर देने वाली शिक्षा को विकसित करने की योजना बनाने का प्रयास किया गया है जिससे तार्किक निर्णय लेने और नवाचार को प्रोत्साहित करने के लिए रचनात्मक और तार्किक सोच वाली शिक्षा विकसित की जा सके।

शिक्षा व्यवस्था में किए जा रहे बुनियादी बदलाव के केंद्र में निश्चित तौर पर शिक्षक होने चाहिए। यह नीति निश्चित तौर पर प्रत्येक स्तर पर शिक्षकों को समाज

के सर्वाधिक सम्माननीय और श्रेष्ठ सदस्य के रूप में पुनः स्थान देने में सहायक होगी। शिक्षा ही नागरिकों को, हमारी अगली पीढ़ी को सही मायने में आकार देती है। इस नीति द्वारा शिक्षकों को सक्षम बनाने के लिए हर संभव कदम उठाए जाने की योजना है जिससे कि वे अपने कार्य को प्रभावी रूप से कर सकें। हर स्तर पर शिक्षण के पेशे में सबसे होनहार लोगों का चयन करने की योजना है जिसके लिए उनकी आजीविका, सम्मान, मान मर्यादा और स्वायत्तता सुनिश्चित हो सकेगी। साथ ही तंत्र में गुणवत्ता नियंत्रण और जवाबदेही की बुनियादी प्रक्रियाएँ भी स्थापित होनी हैं। इस नीति का उद्देश्य ऐसे अच्छे इंसानों का विकास करना है जिनमें करुणा और सहानुभूति, साहस और लचीलापन, वैज्ञानिक चिंतन और रचनात्मकता, कल्पना शक्ति और नैतिक मूल्य का समावेश हो तथा संविधान द्वारा परिकल्पित समावेशी और बहुलतावादी समाज के निर्माण में बेहतर तरीके से योगदान कर सकें।

प्राचीन और सनातन भारतीय ज्ञान और विचार की समृद्ध परंपरा के आलोक में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 तैयार की गई है। ज्ञान, प्रज्ञा और सत्य की खोज को भारतीय विचार परंपरा और दर्शन में सदा सर्वोच्च लक्ष्य माना जाता था। प्राचीन भारत में शिक्षा का लक्ष्य सांसारिक जीवन अथवा स्कूल के बाद के जीवन की तैयारी के रूप में ज्ञान अर्जन नहीं बल्कि पूर्ण आत्म ज्ञान और मुक्ति के रूप में माना गया था। भारत द्वारा 2015 में अपनाए गए सतत विकास एजेंडा 2030 के लक्ष्य चार में परिलक्षित वैश्विक शिक्षा विकास योजना के अनुसार विश्व में 2030 तक सभी के लिए समावेशी और समान गुणवत्तायुक्त शिक्षा सुनिश्चित करने और जीवनपर्यंत शिक्षा के अवसरों को बढ़ावा दिए जाने का लक्ष्य है। इस हेतु संपूर्ण शिक्षा प्रणाली को समर्थन और अधिगम को बढ़ावा देने के लिए पुनर्गठित करने की आवश्यकता होगी ताकि सतत् विकास के लिए 2030 एजेंडा के सभी महत्त्वपूर्ण लक्ष्य प्राप्त किया जा सके।

भारतीय ज्ञान प्रणाली (आईकेएस): प्रासंगिकता और आवश्यकता

आईकेएस की आधिकारिक वेबसाइट https://iksindia.org के अनुसार, भारतीय ज्ञान प्रणाली (आईकेएस) एआईसीटीई, नई दिल्ली में शिक्षा मंत्रालय (एमओई) के तहत एक अभिनव प्रकोष्ठ है। यह आईकेएस के सभी पहलुओं पर अंतःविषय अनुसंधान को बढ़ावा देने, आगे के अनुसंधान और सामाजिक अनुप्रयोगों के लिए आईकेएस को संरक्षित और प्रसारित करने के लिए स्थापित किया गया है।

यह भारत में शिक्षा की सबसे उपयुक्त प्रणाली है क्योंकि यह हमारी अपनी संस्कृति के लिए अद्वितीय है। यह आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान प्रणालियों और अंतरराष्ट्रीय ज्ञान प्रणालियों के साथ प्रतिस्पर्धा करती है। सरल शब्दों में, यह पश्चिमीकरण और प्रामाणिक संस्कृति संरक्षण के बीच एक शीत युद्ध है।

भारतीय ज्ञान प्रणाली का अर्थ है कि किसी राष्ट्र या व्यक्ति का चरित्र सीधे तौर

पर उसकी सांस्कृतिक और/या पारंपरिक आत्मीयता से जुड़ा होता है। जिस तरह से अपनेपन की भावना लोगों के एक वर्ग को एकजुट करती है, उसी तरह यह अपनेपन की भावना किसी भी प्रतिकूल परिस्थिति का सामना करते हुए एक मजबूत राष्ट्र के निर्माण के समान है।

आधुनिक काल में भारतीय ज्ञान प्रणाली की प्रासंगिकता

भारतीय ज्ञान प्रणाली आध्यात्मिकता, विज्ञान, दर्शन, गणित और कला जैसे विभिन्न विषयों को शामिल करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। आधुनिक समय में भारतीय ज्ञान प्रणाली का विशेष रूप से प्रासंगिक और महत्त्वपूर्ण योगदान है।

समग्र दृष्टिकोण– समग्र दृष्टिकोण भारतीय ज्ञान प्रणाली के सबसे आवश्यक और मौलिक सिद्धांतों में से एक है। भारतीय ज्ञान प्रणाली ने विशेष रूप से जीवन और प्राकृतिक दुनिया के विभिन्न पहलुओं के परस्पर संबंध और अन्योन्याश्रयता पर जोर दिया। दूसरी ओर, समग्र दृष्टिकोण मानव अस्तित्व के विभिन्न आयामों जैसे भावनात्मक, मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक को पहचानता है जो दृढ़ता से परस्पर जुड़े हुए हैं। यह दृष्टिकोण जीवन के सभी पहलुओं में संतुलन और सामंजस्य की आवश्यकता पर जोर देता है जो शारीरिक और मानसिक मुद्दों के परस्पर संबंध के बारे में जानने में मदद करता है। भारतीय ज्ञान प्रणाली में, आयुर्वेद पारंपरिक भारतीय चिकित्सा पद्धति की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है जो शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य की परस्पर निर्भरता पर जोर देता है और साथ ही, योग जीवन की गुणवत्ता और समग्र कल्याण को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न शारीरिक आसन, ध्यान और श्वास तकनीकों पर जोर देता है। 'धर्म' की अवधारणा भी समग्र दृष्टिकोण का हिस्सा है जो व्यक्तियों को उनके परिवार, समुदाय और प्राकृतिक दुनिया के प्रति उनके कर्तव्यों और जिम्मेदारियों के बारे में जागरूक करती है।

संधारणीय जीवन– संधारणीय जीवन भारतीय ज्ञान प्रणाली का एक अभिन्न अंग है। संधारणीय जीवन प्रकृति के साथ सामंजस्य में रहने को महत्त्व देता है जो व्यक्तियों को एक संधारणीय जीवन–शैली अपनाने के लिए प्रोत्साहित करता है। संधारणीय जीवन पर्यावरण के लिए मानव की हानिकारक गतिविधियों को कम करने के लिए प्रोत्साहित करता है और यह प्रकृति के साथ जुड़ने में मदद करता है। वेद और उपनिषद प्राचीन भारतीय ग्रंथ हैं जहाँ सभी जीवित प्राणियों के प्राकृतिक दुनिया के साथ परस्पर संबंध के बारे में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है। इस तरह के दृष्टिकोण व्यक्तियों को प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और पर्यावरण के अनुकूल प्रथाओं के विकास पर जोर देने और सरल जीवन शैली को बढ़ावा देने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। 'वसुधैव कटुंबकम' की नई अवधारणा जिसका अर्थ है "दुनिया एक परिवार है" सभी जीवित प्राणियों के साथ सामंजस्य में रहने के महत्त्व पर जोर देती है। यह भारतीय ज्ञान प्रणाली

में संधारणीय जीवन का एक बेहतरीन उदाहरण है।

विविधता और समावेशिता– विविधता और समावेशिता भारतीय ज्ञान प्रणाली की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। भारतीय ज्ञान प्रणाली मानती है कि ज्ञान एक सामूहिक विरासत और मानवीय अनुभव का ज्ञान है। इस प्रकार, IKS वेदों, उपनिषदों, पुराणों और वेदांत और योग जैसे विभिन्न दर्शन सहित विविध प्रकार के ग्रंथों की समावेशिता पर जोर देता है। यह अवधारणा व्यक्ति के विचारों और दृष्टिकोणों की विविधता को महत्त्व देती है जो ज्ञान के आदान–प्रदान और पार–सांस्कृतिक समझ को बढ़ावा देने में मदद करते हैं। भारतीय ज्ञान प्रणाली की विविधतापूर्ण और समावेशी प्रकृति व्यक्तियों को अन्य संस्कृतियों के प्रति अपनी जिज्ञासा के स्तर को बढ़ाने और आलोचनात्मक रूप से सोचने के लिए भी प्रोत्साहित करती है और इस विविध ज्ञान और दृष्टिकोण के मूल्य को पहचानने में मदद करती है। बहु–दृष्टिकोण के मूल्य की पहचान के माध्यम से, IKS जीवंत ज्ञान परंपरा विकसित करता है और एक अधिक सामंजस्यपूर्ण और न्यायसंगत दुनिया बनाता है।

अंतःविषयक दृष्टिकोणः अंतःविषयक दृष्टिकोण भारतीय ज्ञान प्रणाली की एक और सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता है। यह दृष्टिकोण दुनिया की व्यापक समझ के लिए दर्शन, कला, संस्कृति और विज्ञान सहित कई विषयों के एकीकरण पर जोर देता है। अंतःविषय दृष्टिकोण के माध्यम से, भारतीय ज्ञान प्रणाली व्यावहारिक जीवन में वैज्ञानिक और अनुभवजन्य टिप्पणियों के साथ दार्शनिक और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि को एकीकृत करता है। इस अनुप्रयोग का बेहतरीन उदाहरण है– आयुर्वेद और योग जो मनोविज्ञान, शरीर विज्ञान और आध्यात्मिकता के बारे में और स्वास्थ्य और कल्याण के बीच अंतर्संबंध के बारे में ज्ञान प्रदान करते हैं। इसी तरह, यह दृष्टिकोण कला और विज्ञान अनुशासन के बीच अंतर्संबंध को भी पहचानता है। यह ज्ञान की व्यापक समझ पर जोर देता है, नवीन विचारों को बढ़ावा देता है और कई विषयों से अंतर्दृष्टि प्राप्त करता है। इसके अलावा, भारतीय ज्ञान प्रणाली मनुष्यों और प्राकृतिक प्रणालियों के अंतर्संबंध के बारे में गहन समझ प्रदान करने के लिए सामाजिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय संदर्भ के सामूहिक ज्ञान की आवश्यकता को पहचानता है।

भारतीय ज्ञान प्रणाली के नैतिकता और मूल्य–आधारित सिद्धांतों का महत्त्व

भारतीय ज्ञान प्रणाली के नैतिकता और मूल्य–आधारित सिद्धांत मानव व्यवहार और निर्णय लेने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। धर्म, कर्म और अहिंसा भारतीय ज्ञान प्रणाली के नैतिक और दार्शनिक ढांचे का निर्माण करते हैं। ये सभी सिद्धांत वास्तविक दुनिया की स्थितियों, प्रकृति की वास्तविकता और सभी जीवित प्राणियों के आपसी संबंधों को समझने में मदद करते हैं।

धर्म

प्रारंभ में, धर्म ब्रह्मांड की प्राकृतिक व्यवस्था, नैतिक नियमों और न्याय सिद्धांतों को संदर्भित करता है जो मानव व्यवहार को नियंत्रित करते हैं। यह भारतीय ज्ञान प्रणाली में महत्त्वपूर्ण नैतिक और मूल्य आधारित मार्गदर्शक सिद्धांत है जो व्यक्तियों को जीवन की विभिन्न जटिलताओं को दूर करने में मदद करता है, नैतिकता के सार्वभौमिक सिद्धांतों को शामिल करता है और व्यक्तिगत विकास और विकास के लिए एक रूपरेखा प्रदान करता है। धर्म आपसी सहयोग और एक–दूसरे के प्रति सम्मान के माध्यम से सामाजिक सद्भाव और लगाव को बढ़ाता है। भारतीय ज्ञान प्रणाली में धर्म के प्रमुख पहलुओं में आत्म–अनुशासन, नैतिक नियम और मूल्य, सार्वभौमिक सिद्धांत, करुणा और सहानुभूति शामिल हैं। यह व्यक्तियों को सरल जीवनशैली का पालन करने, जीवन को अधिक संतोषजनक और सार्थक बनाने और पर्यावरणीय स्थिरता और संरक्षण को बढ़ावा देने के लिए भी प्रोत्साहित करता है।

कर्म

भारतीय ज्ञान प्रणाली में कर्म को मौलिक, नैतिक और मूल्य–आधारित सिद्धांत माना जाता है। यह कारण और प्रभाव के सार्वभौमिक नियमों को संदर्भित करता है जो किसी व्यक्ति की वर्तमान और भविष्य की परिस्थितियों को उसके प्रत्येक कार्य के आधार पर आकार देने में मदद करता है, लेकिन कभी–कभी, किसी के कार्य के परिणाम न केवल उस व्यक्ति को बल्कि उसके आस–पास की दुनिया को भी प्रभावित करते हैं। सभी कार्यों और परिणामों के परस्पर संबंध की मान्यता के माध्यम से, व्यक्ति ऐसे विकल्प चुनते हैं जो सकारात्मक परिणाम को बढ़ावा देते हैं और नैतिक निर्णय लेने के लिए एक रूपरेखा प्राप्त करते हैं। कर्म के सिद्धांत का प्रारंभिक उद्देश्य व्यक्तिगत जिम्मेदारी, आत्म–जागरूकता, आत्म–नियमन और आत्म–परिवर्तन के महत्त्व पर जोर देना है जो स्वयं के साथ–साथ दूसरों की भलाई को बढ़ावा देने में मदद करता है। इसी तरह, यह सामाजिक न्याय और नैतिकता की आवश्यकता पर जोर देता है, और सभी जीवित प्राणियों के प्रति व्यक्ति की सहानुभूति, करुणा और दया के स्तर को बढ़ाता है। भारतीय ज्ञान प्रणाली के संदर्भ में, कर्म एक तटस्थ सिद्धांत है जो केवल ब्रह्मांड के प्राकृतिक क्रम को दर्शाता है और व्यक्ति को अपने जीवन को नियंत्रित करने और उज्ज्वल भविष्य और सार्थक जीवन बनाने में सक्षम बनाता है।

अहिंसा

भारतीय ज्ञान प्रणाली में अहिंसा की अवधारणा मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रभाव डालती है, जो एक शक्तिशाली सिद्धांत है जिसमें व्यक्ति के साथ–साथ समाज को बदलने की महान क्षमता है। अहिंसा न केवल नैतिक सिद्धांत है, बल्कि

जीवन का एक तरीका भी है जो प्राकृतिक दुनिया को होने वाले नुकसान को कम करने और लोगों की भलाई को बढ़ावा देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अहिंसा के तीन प्रकार हैं, पहला–शारीरिक अहिंसा जिसमें जीवित प्राणियों को शारीरिक नुकसान से बचाना शामिल है, दूसरा–मानसिक अहिंसा जिसमें सभी जीवित प्राणियों के प्रति सहानुभूति, करुणा और दया का भाव बढ़ाना शामिल है और तीसरा मौखिक अहिंसा है जिसमें आहत करने वाली भाषा से बचना शामिल है। अहिंसा सभी जीवित प्राणियों के परस्पर संबंध की मान्यता पर जोर देती है और व्यक्तियों को मानव अनुभव की विविधता का सम्मान करने के लिए प्रोत्साहित करती है जो शांतिपूर्ण और टिकाऊ दुनिया बनाने में मदद करती है। अहिंसा का सिद्धांत आज के आधुनिक जीवन में अत्यधिक प्रासंगिक है क्योंकि यह व्यक्तियों के आत्म–साक्षात्कार, आध्यात्मिक विकास और मुक्ति में निरंतर सुधार करता है।

धर्म, कर्म और अहिंसा के सिद्धांत सार्थक, उद्देश्यपूर्ण और पूर्ण जीवन जीने के तरीके पर मूल्यवान मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। ये सिद्धांत ज्ञान और नैतिकता की गहरी समझ के साथ आधुनिक जीवन की विभिन्न जटिलताओं को दूर करने के लिए विभिन्न मूल्यवान अंतर्दृष्टि और मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

शिक्षा में भारतीय ज्ञान प्रणाली

भारत की समकालीन शिक्षा प्रणाली में ऐसे विषयों की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल है जो पारंपरिक डोमेन से परे है। आधुनिक विज्ञान मानविकी और प्रौद्योगिकियों पर जोर देता है। समकालीन भारतीय शिक्षा प्रणाली के पाठ्यक्रम में भारतीय ज्ञान प्रणाली के एकीकरण के माध्यम से, शिक्षा के सभी स्तरों पर भारतीय पारंपरिक ज्ञान के प्रवाह में रुकावट आई है। भारतीय ज्ञान प्रणाली विशेष रूप से भारतीय कला और संस्कृतियों, भाषा और प्राचीन ग्रंथों के प्रचार पर जोर देती है। भारतीय ज्ञान प्रणाली के अंतर्गत विभिन्न विषयों का उल्लेख किया गया है जिसमें दर्शन, आयुर्वेद, वेद और उपनिषद, योग और ध्यान, शास्त्रीय नृत्य और संगीत, अर्थशास्त्र, धर्म शास्त्र, पर्यावरण विज्ञान, भारतीय शास्त्रीय भाषा, इतिहास, राजनीति विज्ञान और भारत की लोक परंपराएँ आदि शामिल हैं। पारंपरिक और समकालीन ज्ञान के संपर्क के माध्यम से छात्र विविध अवधारणाएँ प्राप्त करते हैं। यह बौद्धिक विकास को बढ़ावा देने और उनके आत्मविश्वास को बढ़ाने में भी मदद करता है। संस्थान छात्रों के लिए भ्रमण जैसी कुछ सरल गतिविधियाँ आयोजित करते हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में आमूलचूल परिवर्तन की बात कही गयी है जिसमें बहुविषयक विश्वविद्यालयों की स्थापना तथा अंतर्विषयक शोध प्रमुख हैं। उच्चतर शिक्षा में तीन प्रकार के संस्थान होंगे– शोध गहन विश्वविद्यालय, शिक्षण गहन विश्वविद्यालय एवं स्वायत्त डिग्री देने वाला महाविद्यालय। इसके अतिरिक्त

विद्यार्थियों के अनुभव में वृद्धि के लिए पाठ्यचयन, भारतीय ज्ञान प्रणाली राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन की स्थापना, शैक्षणिक और प्रशासनिक स्वायत्तता वाले उच्चतर शिक्षा के सभी एकल नियामक द्वारा लचीला लेकिन स्थायित्व प्रदान करने वाले विनियमन का गठन इत्यादि। डिग्री कार्यक्रमों में महत्त्वपूर्ण बदलाव किए जाएँगे जिसमें एक वर्ष पूर्ण करने पर सर्टिफिकेट, दो वर्ष पर डिप्लोमा एवं तीन वर्ष पर डिग्री की उपाधि दी जाएगी। चार वर्ष के स्नातक पाठ्यक्रम पूर्ण करने पर एक वर्ष के पश्चात स्नातकोत्तर की डिग्री दी जाएगी। अकादमिक क्रेडिट बैंक की स्थापना अति महत्त्वपूर्ण कदम है। वर्ष 2035 तक उच्चतर शिक्षा में सकल नामांकन अनुपात 50 प्रतिशत करने का लक्ष्य है। सभी उच्चतर शिक्षा संस्थान 2030 तक बहुविषयक संस्थान बनाने की योजना तथा 2040 तक सभी वर्तमान उच्चतर शिक्षण संस्थान का उद्देश्य अपने आपको बहुविषयक संस्थान के रूप में स्थापित करना होगा।

सहानुभूति, दूसरों के लिए सम्मान, शिष्टाचार, लोकतांत्रिक भावना, सेवा की भावना, सार्वजनिक संपत्ति के लिए सम्मान, वैज्ञानिक चिंतन, स्वतंत्रता, जिम्मेदारी, बहुलतावाद, समानता और न्याय को विद्यार्थियों में बनाए रखने के लिए नैतिकता, मानवीय और संवैधानिक मूल्य पर आधारित बनाने की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में निहित योजना बहुत ही प्रभावशाली होगी। अध्ययन–अध्यापन के कार्य में भाषा की शक्ति को प्रोत्साहित किया जाएगा। छात्रों के सतत् मूल्यांकन पर काफी जोर दिया गया है और साथ ही साथ तकनीकी के यथासंभव उपयोग का भी उल्लेख है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि सभी छात्र शिक्षा प्रणाली में सफलता हासिल कर सकें, पूर्ण समता और समावेशन निर्णय की आधारशिला रखी जाएगी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति का लक्ष्य प्रत्येक विद्यार्थी को ज्ञान केंद्रित भारतीय मूल्यों से विकसित गुणवत्तापूर्ण उच्चतर शिक्षा उपलब्ध कराना है। यह भारत को वैश्विक ज्ञान की महाशक्ति बनाकर एक जीवंत और न्यायसंगत समाज में बदलने के लिए प्रत्यक्ष रूप से सहयोग करेगी। इस नीति में परिकल्पित है कि हमारे संस्थानों की पाठ्यचर्या और शिक्षा–विधि छात्रों में अपने मौलिक दायित्व और संवैधानिक मूल्यों को देश के साथ जुड़ाव और बदलते विश्व में नागरिक की भूमिका और उत्तरदायित्व की जागरूकता उत्पन्न करेगी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति भारतीय ज्ञान परंपराओं का संपोषित विकास कर संबल प्रदान करते हुए भारत केंद्रित तथा समाज पोषित होकर भारत को परम वैभवयुक्त राष्ट्र तथा जगतगुरु बनाने में महती भूमिका का निर्वहन करेगी।

भारतीय ज्ञान प्रणाली आज के परिदृश्य में भी लागू है जो तनाव प्रबंधन, अस्थिरता आदि जैसे मुद्दों से निपटने के लिए व्यावहारिक सुझाव देती है। यह ज्ञान का एक विशाल भंडार प्रदान करती है जिसका उपयोग लोगों, समुदायों और मानवता को आगे बढ़ाने के लिए किया जा सकता है। अब समय है भारत के द्वारा विश्व को

दिए गए ज्ञान को संजो कर इसका संवर्धन किया जाए और भारतवर्ष की जनता को संस्कृति, पहचान और प्राप्त ज्ञान से जोड़ा जाए। तब ही इसकी उपादेयता सिद्ध होगी।

भारतीय ज्ञान प्रणाली के माध्यम से नैतिकता और मूल्यों को पाठ्यक्रम में शामिल करना शिक्षार्थियों में समग्र विकास को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक है। नीति निर्माताओं को ऐसे नीतिगत बदलावों को बढ़ावा देने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए जो विकासात्मक पहलों में भारतीय ज्ञान प्रणाली सिद्धांतों और प्रथाओं के एकीकरण का समर्थन करते हैं। भारतीय ज्ञान प्रणाली सभी के लिए समान और टिकाऊ दुनिया बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस एकीकरण को और आगे बढ़ाने के लिए विभिन्न क्षेत्रों के विद्वानों और चिकित्सकों को एक साथ लाने वाले अंतःविषय दृष्टिकोण को अपनाना आवश्यक है। यह विविध समुदायों के सांस्कृतिक, सामाजिक और पर्यावरणीय संदर्भ पर समान जोर देता है। भविष्य के शोध में शारीरिक, भावनात्मक और मानसिक कल्याण पर भारतीय ज्ञान प्रणाली सिद्धांतों और प्रथाओं के प्रभाव की जांच करने की आवश्यकता है। सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील हस्तक्षेप विकसित करना बहुत आवश्यक है जो भारतीय ज्ञान प्रणाली की प्रथाओं और सिद्धांतों को आधुनिक विकासात्मक रूपरेखाओं के साथ एकीकृत करते हैं। इसके अलावा, समग्र विकास को बढ़ावा देने में प्रौद्योगिकी की क्षमता का पता लगाया जाना चाहिए, जिसमें भारतीय ज्ञान प्रणाली सिद्धांतों और प्रथाओं को पेश करने के लिए डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म का उपयोग शामिल है।

❑❑❑

विशुद्ध व्याकरण और परिभाषा आदि के द्वारा घटना का बखान करने से ही यदि घटना का पूरा बखान हो जाता तो साहित्य समाचार–पत्रों में ही बंद रहता।

✍ अवनींद्रनाथ ठाकुर

भारतीय ज्ञान परंपरा के बहुआयाम और विज्ञान लेखन

✍ प्रो. निर्मला एस. मौर्य

ज्ञान परंपराएँ ही मानवता को प्रोत्साहित करती हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा कोई साधारण जानकारी नहीं है, बल्कि उस श्रेष्ठ जानकारी का विशेष ज्ञान हो जाने पर वह ज्ञान, विज्ञान कहलाता है।

आचारः परमो धर्मः, आचारः परं तपः।
आचारः परम ज्ञानं, आचारात् किम् ना साध्यते।।

यह 'आचारः' शब्द और कुछ नहीं 'सदाचार' का पर्याय है जो भारतीय संस्कृति का मूल गुण माना गया है। संस्कृति की परिवर्तनशीलता अवश्यंभावी है। यह मनुष्य की आत्मा का भाव है। इसी के समानांतर चलने वाला एक अन्य भाव सभ्यता है। भारतीय ज्ञान परंपरा इसी संस्कृति, सौंदर्य और संवेदना से जुड़ी है। भारतीय ज्ञान परंपरा हजारों वर्ष पुरानी है और यह बहुआयामी है। भारतीय ज्ञान परंपरा और विज्ञान लेखन एक दूसरे के साथ गहराई से जुड़े हुए हैं। इसमें विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विभिन्न पहलुओं का विस्तार से वर्णन किया जाता है। इस ज्ञान परंपरा में आधुनिक विज्ञान प्रबंधन सहित सभी क्षेत्रों के लिए अद्भुत खजाना है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भारतीय ज्ञान परंपरा के अध्ययन–अध्यापन पर बल दिया गया है। जिस समय हम जी रहे होते हैं, वही हमारा वर्तमान होता है और इस वर्तमान को सुंदर बनाती हैं भारतीय ज्ञान परंपराएँ। वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में भारतीय ज्ञान परंपरा तथा विज्ञान लेखन का महत्त्व बढ़ता जा रहा है। यदि हम वेद और उपनिषद काल पर दृष्टिपात करें तो वहाँ ज्ञान परंपरा दिखाई देती है। यह परंपरा मानव के मानसिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। आजकल की शिक्षा में प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा को महत्त्व दिया जा रहा है। इन भारतीय परंपराओं के केंद्र में अनुशासन, आत्मनिर्भरता, सम्मान जैसे मूल्य ही दिखाई देते हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा और विज्ञान लेखन में कई शब्द हैं जिनके अलग–अलग अनेक अर्थ हैं। भारत अखंड राष्ट्र है जिसकी अपनी सांस्कृतिक परंपराएँ और प्रथाएँ हैं। ज्ञान अपने आप में पूर्ण शब्द है। ज्ञान के सहारे शिक्षा ली जाती है लेकिन शिक्षा से व्यक्ति ज्ञानी हो, यह आवश्यक नहीं। संतों ने ज्ञान की अलग–अलग व्याख्याएँ की हैं, जैसे गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं–

ज्ञानहिं भगतहिं नहिं कछु भेदा।
उभय हरहिं भव–संभव खेदा।।

भारतीय ज्ञान परंपरा से तात्पर्य है मानव जाति की वह जानकारी जो उसे भौतिक संसार और आध्यात्मिक संसार के बारे में मिलती है। दर्शन के क्षेत्र में इसे अलग–अलग दार्शनिकों ने अलग–अलग नाम दिए हैं जैसे– न्याय दर्शन में ज्ञान के दो भेद किए गए। सांख्य दर्शन में मूल तत्व दो ही माने गए– जड़ और चेतन। अद्वैत वेदांत दर्शन में ब्रह्म को सत्य मानते हुए जगत को असत्य कहा गया। प्रकृतिवादी दर्शन में वस्तु जगत को ही सत्य माना गया और आत्मा–परमात्मा संबंधी ज्ञान को केवल कल्पना कहा गया। आज ऐसे बहुत से भारतीय ज्ञान परंपरा के शिक्षा के केंद्र हैं जिनमें से कुछ के अवशेष बचे हैं और कुछ विश्वविद्यालय अब भी भारतीय ज्ञान परंपरा को लेकर चल रहे हैं। तक्षशिला, नालंदा विश्वविद्यालय, विक्रमशिला विश्वविद्यालय, मिथिला विश्वविद्यालय, कांची विश्वविद्यालय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय आदि के साथ–साथ बहुत से ऐसे विश्वविद्यालय हैं जो शिक्षा के केंद्र हैं तथा सांस्कृतिक परंपराओं को लेकर आगे बढ़ रहे हैं।

भारतीय ज्ञान परंपराओं के बल पर भारत विश्व फलक पर निरंतर गतिमान रहते हुए अपनी पहचान बनाता जा रहा है। यहाँ शिक्षा, वाणिज्य, उद्योग, खेल, सांस्कृतिक परंपराएँ विश्व में अपनी पहचान रखती हैं। भारत में असीम क्षमताएँ हैं और इससे लोग प्रभावित हो रहे हैं। यहाँ कभी भी विलक्षण प्रतिभाओं की कमी नहीं रही है। साहित्य से लेकर शिक्षा, ज्ञान–विज्ञान, गणित, चिकित्सा, शस्त्र विद्या और शास्त्र विद्या सभी में असीमित क्षमताएँ दिखाई देती हैं। यहाँ की सांस्कृतिक परंपराओं में विविधता है। भारतीय साहित्य भी एक प्रकार का सामाजिक विज्ञान है जिसमें संतों–महात्माओं ने समाज को विकास के पथ पर ले जाने में अपनी महती भूमिका निभाई है। जीवन क्षणभंगुर है तभी तो कबीर जैसे संत कहते हैं–

पानी केरा बुदबुदा, अस मानस की जात।
देखत ही छिप जाएगा, ज्यों तारा परभात।।

यह भी एक प्रकार का मानव जीवन का विज्ञान है। धीरे–धीरे यह पुनः आवश्यक होता जा रहा है कि जिस भारतीय ज्ञान परंपरा को लोग भूलते जा रहे थे– जैसे सार्वभौमिक मानवीय मूल्य, वैदिक गणित, योग, आयुर्वेद, संस्कृत तथा अन्य भाषाएँ, धार्मिक स्थल, ज्ञान–विज्ञान, पुरातत्व, स्मारक आदि; इन्हें फिर से जाना और समझा जाए। ये भारत की विरासत हैं, इन्हें अब फिर से महत्त्व दिया जा रहा है क्योंकि ये परंपराएँ मानव के मानसिक स्वास्थ्य के लिए अत्यंत आवश्यक हैं।

कहते हैं, आवश्यकता आविष्कार की जननी है। जैसे–जैसे मनुष्य की आवश्यकताएँ बढ़ती जा रही है; वैसे–वैसे विज्ञान लेखन गति पकड़ता जा रहा है। वैज्ञानिक उन्नति

के साथ–साथ भौगोलिक दूरियाँ मिटती जा रही हैं, अतः व्यक्ति–व्यक्ति के निकट आना चाहता है। परंतु यह तभी संभव है जब व्यक्ति अन्य राष्ट्रों के बारे में पूर्णतः या अंशतः जानने का प्रयास करे और इसी प्रयास का फल विज्ञान लेखन है। अनुवाद भी एक प्रकार का विज्ञान है जो केवल मानव हृदय को ही नहीं बल्कि दो राष्ट्रों और दो जातियों को भी जोड़ने का प्रयास करता है। विज्ञान, तकनीकी, कला, साहित्य, दर्शन, राजनीति, जंतु विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, समाजशास्त्र जैसी ज्ञान की अनेक शाखा–प्रशाखाओं में जो कार्य हो रहे हैं, उन्हें एक देश से दूसरे देश पहुँचाने का कार्य विज्ञान लेखन और अनुवाद के द्वारा ही किया जा रहा है। आज प्रतिदिन ज्ञान क्षेत्र के नए–नए कपाट खुल रहे हैं। प्रत्येक देश, प्रांत और जाति की अपनी निजी सांस्कृतिक विरासत, जीवन दृष्टि एवं संघर्षों से जूझकर कमाए गए जीवन मूल्य होते हैं और ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक परंपराएँ होती हैं। यह विशेषताएँ उस देश के मानव की अंतर–मानसिकता को अपने में समेटे होती हैं।

विज्ञान लेखन मनुष्य के संपूर्ण बौद्धिक एवं कार्यात्मक– ज्ञानात्मक भंडार को व्यक्त करने का आधार है। हम सभी जानते हैं कि सृष्टि के प्रत्येक प्राणी की अपनी आयु, समय, साधन और सीमाएँ हैं; यही बात मनुष्य के साथ भी है। विज्ञान लेखन से मनुष्य विभिन्न समस्याओं का निदान करके बहुत सी जानकारियाँ हासिल कर लेता है। आज ज्ञान का पुराना समाजशास्त्र बड़ी तेजी से बदल रहा है। विज्ञान के नए आविष्कारों एवं अनुसंधानों ने इस शताब्दी का चेहरा ही बदल दिया है। विकसित देशों में हो रही हलचल को समझने के लिए विज्ञान लेखन आवश्यक हो जाता है। यदि बहुत गहराई से विचार करें तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि विज्ञान, अर्जित–उपार्जित ज्ञान की निरंतरता बनाए रखने वाला एक विशेष प्रकार का भाषा दर्शन है। यह प्राचीन ज्ञान को नए युग में ढोकर लाता है या ऐसे भी कहा जा सकता है कि विज्ञान लेखन परंपरा का नवीनीकरण है। विज्ञान लेखन की प्रक्रिया में देश, प्रांत एवं जाति की आत्म–सजगता, स्वच्छता एवं आत्मविस्तार का भाव निहित होता है। नवजागरण काल में विज्ञान लेखन की महत्ता को नकारा नहीं जा सकता क्योंकि इसी काल में संपूर्ण ज्ञान–विज्ञान अपने मूल रूप और अनूदित रूप में हमारे सामने आ रहा है। 19वीं सदी में भारतीय चिंतकों ने समस्त नए–पुराने ज्ञान–विज्ञान का विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनुवाद भी किया है और लेखन कार्य भी किया है। समसामयिक परिप्रेक्ष्य में घट रहे या घटित घटनाओं के प्रति जागरूकता का परिणाम है विज्ञान लेखन। आदमी के लिए ज्ञान को साधने के लिए साधना की आवश्यकता होती है। पारंपरिक ज्ञान को अर्जित कर व्यक्ति समाज में जीना सीखता है। वास्तव में ज्ञान निधि का कोष है। जिस प्रकार सागर रत्नाकर कहा जाता है वैसे ही ज्ञान रूपी रत्नाकर में बैठकर मानव मनचाहा माणिक्य प्राप्त कर लेता है। जब कोई भी विज्ञान लेखन होता है तो उसके मूल में मनुष्य का कौतूहल ही कार्य करता है। विज्ञान लेखन करते समय लेखक आत्मचिंतन

और आत्ममंथन की प्रक्रिया से गुजरता है। भौतिक विज्ञान, सामाजिक विज्ञान और मानविकी– यह ज्ञान के तीन मार्ग हैं। विज्ञान लेखन इन्हीं से जुड़ा है। विज्ञान लेखन करते समय वैज्ञानिक को अनुशीलन, तथ्य संकलन, तुलना, निरीक्षण, विश्लेषण और समय निर्धारण से गुजरना पड़ता है। उसे तटस्थ भी रहना होता है।

विज्ञान लेखन सदैव मानव कल्याण की ओर प्रवृत्त रहता है। विज्ञान लेखक श्रेष्ठ सर्जक होता है और वह मानवीय चेतना से अनुप्राणित होता है। विज्ञान लेखन के माध्यम से कला–सौंदर्य और भावना का विकास होता है। सत्य के उद्घाटन के लिए वह तथ्यों का परीक्षण करता है। विज्ञान लेखन करते समय लेखक को वैज्ञानिक दृष्टि, भावात्मक कला और कलात्मक शिल्प तीनों की आवश्यकता होती है जिन्हें वह साथ लेकर चलता है। वास्तव में यह लेखन विज्ञान, कला और ज्ञान की साधना का मिश्रण है। यह एक प्रक्रिया है। आत्म सजग लेखक ऐसा साधक है जो विज्ञान लेखन रूपी साधना में ज्ञान–विज्ञान और कला की समिधा डालता है तथा सामग्री के रूप में नए चिंतन को प्राप्त करता है। भारतीय ज्ञान परंपरा कोई साधारण जानकारी नहीं है बल्कि उस श्रेष्ठ जानकारी का विशेष ज्ञान हो जाने पर वह विज्ञान हो जाता है। सामान्य ज्ञान से विशिष्ट ज्ञान बनने की यह प्रक्रिया लगातार चलती रहती है। इसी अर्थ में विज्ञान किसी भी विषय का तर्काश्रित कार्य–कारणमय व्यवस्थित और विशिष्ट ज्ञान होता है। विज्ञान में विकल्प के लिए कोई स्थान नहीं होता क्योंकि उसके नियम सार्वकालिक और सार्वभौमिक होते हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा के अनुसार विज्ञान और प्रौद्योगिकी का उद्देश्य मानव जीवन को अच्छा, समर्थ, सुंदर और बेहतर बनाना होता है, इसलिए विज्ञान लेखन में भी इस बात पर बल दिया जाता है कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी का प्रयोग मानव कल्याण के लिए कैसे किया जाए? जैसा कि कहा जाता है– विज्ञान वरदान भी है और अभिशाप भी। इसलिए विज्ञान का प्रयोग करते समय हमेशा इस बात पर सतर्क रहने की आवश्यकता है कि वह मनुष्य के लिए लाभकारी हो। विज्ञान लेखन के उद्देश्य अनेक होते हैं जैसे– विज्ञान को लोकप्रिय बनाना। विज्ञान कठिनतर विषय है इसीलिए यदि उसे लोकप्रिय बनाना है तो उसे आम जनता तक सरल भाषा में पहुँचाना होगा ताकि वे विज्ञान और प्रौद्योगिकी के बारे में सहज रूप में जानकारी प्राप्त कर सकें। इसी प्रकार विज्ञान के महत्त्व को सबके सामने लाना भी एक उद्देश्य है क्योंकि विज्ञान लेखन में विज्ञान के महत्त्व को उजागर किया जाता है अर्थात् विज्ञान किस प्रकार और किस रूप में मनुष्य के जीवन को अच्छे से अच्छा बना सकता है, इस बात पर बल दिया जाता है। इसके अतिरिक्त विज्ञान के बारे में जागरूकता बढ़ाना भी विज्ञान लेखन का उद्देश्य होता है क्योंकि इसके लेखन में विज्ञान के बारे में जागरूकता बढ़ाने पर जोर देने के साथ–साथ इस बात की ओर भी संकेत किया जाता है कि लोग विज्ञान और प्रौद्योगिकी के बारे में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त कर लाभान्वित हो सकें। इस प्रकार भारतीय ज्ञान परंपरा और विज्ञान

लेखन दोनों ही विज्ञान और प्रौद्योगिकी के महत्त्व को उजागर करते हैं तथा मानव जीवन को बेहतर बनाने के लिए विज्ञान के उपयोग पर बल देते हैं।

विगत कई शताब्दियों से चली आ रही ज्ञान की प्रणालियों की अपनी समृद्ध विरासत के साथ सूचना प्रौद्योगिकी पर भारत ने वैश्विक परिदृश्य में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। आधुनिक तकनीकी प्रगति के साथ पारंपरिक ज्ञान का मिश्रण आईटी के प्रति भारत के दृष्टिकोण को आकार देने में सदैव सहायक रहा है। विज्ञान का इतिहास बहुत ही समृद्ध रहा है। इसमें खगोल, गणित, चिकित्सा विज्ञान की महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ रही हैं। भारत के ज्ञान और विज्ञान परंपरा का विश्व के स्तर पर प्रभाव रहा है। प्राचीन भारत में शिक्षा का माध्यम गुरुकुल प्रणाली थी। इस प्रकार की शिक्षा संपूर्ण मानी जाती थी। भारत में योग और आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति की परंपरा बड़ी ही समृद्ध रही है। मानसिक, आध्यात्मिक और शारीरिक स्वास्थ्य का संतुलन इस चिकित्सा प्रणाली ने दिया। भारत में धर्म और दर्शन के साथ विज्ञान बड़ा अद्भुत समन्वय लेकर चला है। आर्यभट्ट और वराहमिहिर ने गणित और खगोल विज्ञान में जो योगदान दिया, उसे आज भी भुलाया नहीं जा सकता। आर्यभट्ट ने शून्य की खोज की और ग्रहों की स्थिति का अध्ययन किया। रामानुजन ने गणित के क्षेत्र में अद्वितीय योगदान दिया। मध्यकालीन और आधुनिककालीन भारत में विज्ञान के क्षेत्र में बहुत सी महत्त्वपूर्ण खोजें हुई, उनका विस्तार हुआ। सी.वी. रमन, एपीजे अब्दुल कलाम और विक्रम साराभाई जैसे वैज्ञानिकों ने भारतीय विज्ञान को विश्व के कोने–कोने तक पहुँचाया।

वेद उपनिषद जैसे प्राचीन ग्रंथों से लेकर विज्ञान तथा गणित पर अनेक प्रकार के ग्रंथों ने नवाचार की नींव रखी। शून्य से लेकर दशमलव प्रणाली, बीजगणित जैसी अवधारणाएँ प्राचीन भारत में उत्पन्न हुईं। भारतीय ज्ञान परंपरा सदैव से ही सामाजिक कल्याण और ज्ञान की खोज पर बल देती रही है। इसके द्वारा दिए गए सिद्धांत लोकाचार से मेल खाते हैं। आजकल यह देखने में आ रहा है कि आईटी के साथ योग बड़ी तेजी से विस्तार पा रहा है। भारत की आध्यात्मिक परंपराएँ तनाव को कम करने, मानसिक संतुलन को बनाए रखने, फ़ोकस को बढ़ाने जैसी तकनीकों को बढ़ावा देती हैं। इन्हें बड़ा ही मूल्यवान माना जा रहा है। हम सभी जानते हैं कि अध्यात्म और धर्म आपस में जुड़े हुए हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा आध्यात्मिक दृष्टि से मूल्यवान है। अध्यात्म आत्मा से संबंधित ज्ञान या आत्मा का अध्ययन है। इससे जीवन का अर्थ, उसका उद्देश्य तथा ब्रह्मांड की प्रकृति को समझा जाता है। अध्यात्म में मानव आंतरिक दुनिया से जुड़ता है। यह धर्म से बिल्कुल अलग है। वास्तव में अध्यात्म व्यक्ति के आंतरिक जीवन से जुड़ा तथा स्वयं को समझने का प्रयास है। अध्यात्म के द्वारा मनुष्य मन को अंतर्मुखी और एकाग्रचित्त करता है, जो आज के आई.टी. युग में अत्यंत आवश्यक है। इसी प्रकार आज के बदलते युग में एक दूसरे के दुखों को और

कठिनाइयों को समझना आवश्यक हो जाता है। यह भावना आज विलुप्त हो चली है। इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं–

परहित सरिस धरम नहिं भाई।
पर पीड़ा सम नहीं अघ माई।।

योग में इसी अध्यात्म को महत्त्व दिया गया है। भारतीय ज्ञान परंपरा में आयुर्वेद का विशेष महत्त्व है। यह भारत की प्राचीन चिकित्सा प्रणाली, स्वास्थ्य की देखभाल तथा अन्य कई बीमारियों का इलाज कैसे हो? इस पर प्रकाश डालता है। व्यक्ति को आहार कैसा लेना चाहिए? उसकी जीवन शैली किस प्रकार की हो? उसका स्वास्थ्य ठीक कैसे रहे? यही आयुर्वेद के केंद्र में है। जैसे–जैसे समय बदल रहा है, वैसे–वैसे आयुर्वेद और स्वास्थ्य सूचना विज्ञान को जोड़कर बहुत सा लेखन और कार्य हो रहा है। इसी प्रकार ज्योतिष विज्ञान भी एक अन्य क्षेत्र है जहाँ भारतीय पारंपरिक ज्ञान को और आधुनिक तकनीक को साथ जोड़ दिया गया है। आजकल दूरदर्शन, टीवी पर अनेक प्रकार के ज्योतिष संबंधी कार्यक्रम आते हैं। कंप्यूटेशनल पहलुओं में डेटा विश्लेषण और भविष्य बताने वाले बहुत से कार्यक्रम, ग्रहों की स्थिति, खगोलीय घटनाएँ, ज्योतिष चार्ट, मौसम की भविष्यवाणी तथा उसका पूर्वानुमान हम देख और पढ़ सकते हैं। संस्कृत कंप्यूटर के लिए सबसे उत्कृष्ट भाषा मानी जाती है। संस्कृत में दर्शन और साहित्य का अतुलनीय भंडार है। इसके साथ ही यह कंप्यूटेशनल भाषाविज्ञान के लिए प्रेरणा का स्रोत भी है। आजकल भाषा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र को समृद्ध करते हुए भाषाई पैटर्न और अर्थ विश्लेषण के लिए संस्कृत ग्रंथों का पता लगाया जा रहा है। भारतीय सभ्यता ने ज्ञान को बहुत महत्त्व दिया है। बौद्धिक ग्रंथों और पांडुलिपियों का विशाल संग्रह भारतीय विरासत है। आधुनिक युग में जब कोरोना महामारी फैली, उस समय किस प्रकार आयुर्वेद ने अपनी भूमिका निभाई? इससे सभी परिचित हैं। आयुर्वेद के नाम से ज्ञात पारंपरिक भारतीय चिकित्सा प्रणाली में कल्याण के लिए व्यापक दृष्टिकोण पर बल दिया गया है। पूरी दुनिया में जहाँ जीवन में विसंगतियाँ पैदा हो रही हैं, पर्यावरण और प्रदूषण बढ़ रहे हैं, वहाँ पर भारतीय ज्ञान परंपरा अपने ढंग से योगदान दे रही है। सुश्रुत को शल्य चिकित्सा का जनक माना जाता है। ढाई हजार वर्ष पहले विज्ञान इतना उन्नत था कि कई प्रकार के ऑपरेशन, प्लास्टिक सर्जरी और मस्तिष्क की सर्जरी आदि की जाती थी। आयुर्वेद के कई ऐसे ग्रंथ हैं जिनमें भ्रूण विज्ञान, पाचन विज्ञान, चयापचय, आनुवांशिकी, एनाटॉमी, फिजियोलॉजी आदि का गहरा विज्ञान छिपा हुआ है। डिजिटल इंडिया की जो परिकल्पना की गई, उसका आधार कहीं ना कहीं भारतीय ज्ञान परंपरा है। भारत सरकार ने समावेशी विकास के लिए, प्रौद्योगिकी का उपयोग करने के लिए डिजिटल इंडिया पहल शुरू की। इसका उद्देश्य डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा देना और ई–गवर्नेंस प्लेटफार्म के माध्यम से सरकारी सेवाओं की डिलीवरी को बढ़ाना है। अनेक प्रकार के नवाचारों और

पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों का लाभ उठाते हुए डिजिटल इंडिया सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक प्रगति के लिए एक प्रौद्योगिकी सक्षम पारिस्थितिकी तंत्र को बढ़ावा दे रहा है। परंपरा से जो ज्ञान चला आ रहा है, उसके और आईटी के बीच तालमेल तो आवश्यक है ही, भारतीय ज्ञान परंपराओं को आधुनिक विधियों तथा पद्धतियों के साथ समेटने की कई चुनौतियाँ भी हैं। फिर भी बदलते समय के साथ आज के डिजिटल युग में भारत के अपने ज्ञान का सम्मान और उसकी समझ को बनाए रखने की आवश्यकता है। भारतीय ज्ञान परंपरा जब विज्ञान लेखन के साथ जुड़ जाती है तो समृद्ध और विविध विषयी हो जाती है। यह ज्ञान परंपरा प्राचीन काल से चली आ रही है। इसमें वेदों और उपनिषदों से लेकर पुराणों, शास्त्रों और लोक साहित्य में निहित ज्ञान शामिल हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा का एक महत्त्वपूर्ण पहलू यह भी है कि यह ज्ञान को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्थानांतरित करने की एक व्यवस्थित कला है। जैसा कि हम सभी जानते हैं कि वेद भारतीय सभ्यता के सबसे पुराने ग्रंथ माने जाते हैं। यह चार प्रकार के हैं– ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद। इन चारों वेदों में विज्ञान, चिकित्सा, अनेक प्रकार के सिद्धांत, गणित, ज्योतिष सभी का वर्णन मिलता है और ऐसा माना जाता है कि यदि सृष्टि का विनाश भी हो जाए तो इन चारों वेदों के बल पर पुनः सृष्टि का निर्माण संभव है।

उपनिषदों की अनेक विशेषताएँ हैं। यह आध्यात्मिक ज्ञान, आत्म साक्षात्कार और वास्तविकता की प्रकृति पर गहन अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं। इन्हें हिंदुओं का महत्त्वपूर्ण श्रुतिपरक धर्म ग्रंथ माना जाता है। इनकी संख्या लगभग 108 है। इन धर्म ग्रंथों में तेरह उपनिषद प्रमुख माने गए हैं। इनमें ब्रह्म, जीव, जगत का ज्ञान वर्णित है। कर्मकांड से आगे बढ़कर ज्ञान को महत्त्व दिया गया है। इनमें आत्म साक्षात्कार और ब्रह्मज्ञान पर जोर दिया गया है। कर्मकांडों की आलोचना, ब्रह्म–जीव और जगत का ज्ञान, गुरु–शिष्य परंपरा, भारतीय दर्शन का आधार, सत्य–प्रकाश और अमरता की कामना जैसी अनेक विशेषताएँ इन ग्रंथों को पठनीय बनाती हैं जो आज भी मानव जीवन से सरोकार रखती हैं। सूक्ष्म रूप में उपनिषदों का उद्देश्य मनुष्य जाति को आत्म–तत्व तथा ब्रह्म–ज्ञान से परिचित कराते हुए जन्म और मरण के चक्र से छुटकारा दिलाकर मोक्ष की ओर ले जाना है। पिंड और ब्रह्मांड की परिकल्पना भी इसके केंद्र में है। इस ज्ञान को विज्ञान लेखन में शामिल करने से विज्ञान को एक अधिक व्यापक और समावेशी दृष्टिकोण से देखा जा रहा है और साथ ही भारतीय ज्ञान परंपरा को भी बढ़ावा देते हुए आगे बढ़ाया जा रहा है। आयुर्वेद जिसे भारतीय चिकित्सा प्रणाली का उत्कृष्ट स्रोत माना जाता है, समय की मांग को देखते हुए आज भी उतना ही लोकप्रिय है। इसी प्रकार खगोलविदों ने भी ग्रहण और नक्षत्र के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी लेते हुए उसका लेखन किया। गणित में आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त से लेकर श्रीनिवास रामानुजन, भास्कराचार्य, सत्येंद्रनाथ बसु, वराह मिहिर, फूलन प्रसाद

जैसे गणितज्ञों ने अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। भौतिकी में सर सी.वी. रमन, जे. सी. बोस, सत्येंद्र नाथ, होमी भाभा, साराभाई आदि का नाम लिया जा सकता है। इसी तरह होम्योपैथिक, सिद्ध चिकित्सा के योगदान को हमेशा याद रखा जाएगा। समय बदलने के साथ–साथ भारतीय ज्ञान परंपरा और विज्ञान लेखन की प्रासंगिकता बढ़ती जा रही है। आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास में यह स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर बढ़ रहे हैं।

आज यदि भारतीय परंपरा और विज्ञान लेखन को देखा जाए तो शोध और अनुसंधान में इसकी बड़ी भूमिका है। भारतीय ज्ञान परंपरा पर आधारित शोध और अनुसंधान विज्ञान और प्रौद्योगिकी क्षेत्र में नए विचारों और दृष्टिकोण को जन्म दे रहे हैं। इसी तरह जहाँ पाठ्य पुस्तकों को लिया जा रहा है, वहाँ भी उद्धरण के रूप में भारतीय परंपरा के सिद्धांतों और अवधारणाओं को शामिल किया जा रहा है। इससे विद्यार्थियों और शोधकर्ताओं को बहुत सी जानकारी मिलती है। विज्ञान लेखन में भारतीय परंपरा को शामिल करने के कारण विज्ञान को अधिक व्यापक और समावेशी दृष्टिकोण से देखा जा रहा है। भारतीय ज्ञान–विज्ञान की परंपरा संसार की सबसे प्राचीनतम वैज्ञानिक परंपराओं में से एक है जिसका उद्देश्य सदैव ही मानव हित रहा है।

भारत में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली थी। यहाँ संस्कार युक्त शिक्षा दी जाती थी और मानवता को प्रोत्साहन दिया जाता था। भारत में आज भी ज्ञान परंपराएँ और मूल्य जीवित हैं। हम सभी जानते हैं कि ज्ञान के लिए कौतूहल जरूरी है। मनुष्य तर्कशील होता है और मानव के मूल विकास के लिए इसी तर्क और कौतूहल के बल पर परंपराएँ विकसित होती हैं। इस तरह भारतीय ज्ञान परंपरा और विज्ञान के कई आयाम रहे हैं। वेदों और उपनिषदों से लेकर आयुर्वेद, योग, ज्योतिष, गणित, खगोल, साहित्य, विज्ञान, धातु कर्म आदि की परंपराओं और विकास ने विश्व की मानवता पर गहरा प्रभाव डाला। भारतीय ज्ञान परंपरा और विज्ञान लेखन ज्ञान के विभिन्न पहलुओं को एक साथ लाने का एक सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण प्रयास है। यह न केवल भारतीय ज्ञान और विज्ञान की समृद्ध विरासत को प्रकाशित करता है, बल्कि यह आधुनिक विज्ञान को भारतीय ज्ञान परंपरा के साथ जोड़कर ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में नवीन खोज और अनुसंधानों को भी बढ़ावा देता है। भारतीय ज्ञान और विज्ञान मानवता के विकास के साथ इसी तरह विकसित होते आए, जो आज भी मानव और मानवता के हितार्थ विकास के पथ पर अग्रसर हैं। 'वसुधैव कुटुंबकम' की भावना ही इनके केंद्र में है।

❑❑❑

प्राचीन भारतीय पांडुलिपियों में विज्ञान

✍ **प्रमोद भार्गव**

भारत में प्राचीन पांडुलिपियाँ कितनी हैं, इनका सुसंगत अनुमान कठिन है। अनेक पांडुलिपि संग्रह व संरक्षण संस्थान ज्ञान–विज्ञान की पांडुलिपियों में भरे पड़े हैं। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के निदेशक डॉ. सुरेंद्रमोहन मिश्र कहते हैं कि लगभग डेढ़ करोड़ पांडुलिपियाँ उपलब्ध हैं। राज्यसभा सांसद राकेश सिन्हा द्वारा संसद में पूछे गए एक प्रश्न के उत्तर में कहा गया था कि ब्रिटेन के संग्रहालय में मुख्य रूप से चार लाख पांडुलिपियाँ आज भी सुरक्षित हैं। यद्धपि वहाँ से अब तक 50 हजार पांडुलिपियाँ मंगाई जा चुकी हैं। इन पांडुलिपियों में खगोल गणित, ज्योतिष, प्रौद्योगिकी, चिकित्सा, रसायन, धातु विज्ञान, खेती–किसानी, अस्त्र–शस्त्र और आवागमन के साधनों से लेकर ईंधन की खोज और मानव मनोविज्ञान तक के धरातल की पड़ताल की गई है। पांडुलिपियों में सामाजिक जीवन के विविध पहलू संरक्षित हैं, इसलिए इनके संरक्षण के उपाय भी संस्कृत के श्लोकों में मिलते हैं–

जलाद्रक्षेत्तैलाद्रक्षेच्छिथिलबन्धनात।
मूर्खहस्ते न मां दद्यादिति वदाति पुस्तकम।।

अर्थात, मुझे जल से, तेल से, ढीले बंधन (जिन्द) से बचाएँ। मुझे मूर्ख के हाथ में नहीं थमाना चाहिए, यह पुस्तकें कहती हैं। ज्ञान के इस विपुल भंडार से परिचित होने के उपरांत जर्मनी के वेदविज्ञानी मैक्समूलर को कहना पड़ा था कि इस समस्त संसार में ज्ञानियों और पंडितों का देश एकमात्र भारत ही है, जहाँ विपुल ज्ञान–संपदा हस्तलिखित ग्रंथों में सुरक्षित है।

प्राचीन भारतीय पांडुलिपियाँ कितनी महत्त्वपूर्ण हैं, इस सिलसिले में एक प्रसंग यहाँ उद्‌घाटित है। संस्कृत के भोपाल के बड़े विद्वान और संस्कृत विश्वविद्यालय, दिल्ली के कुलपति रहे डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी को लंदन की इंडिया हाउस लायब्रेरी में उपलब्ध सुंदरकवि द्वारा रचित 'नाट्य–प्रदीप' पांडुलिपि की आवश्यकता थी। उक्त पुस्तकालय में उपलब्ध सूची की पुस्तकों में इस पांडुलिपि का नाम अंकित है। त्रिपाठी जी के मित्र पाठक जी लंदन जाते–आते रहते थे। अतएव उन्होंने पांडुलिपि के लाने का दायित्व पाठक जी को सौंप दिया। पाठक जी ने लंदन से लौट आने पर त्रिपाठी जी को नाट्यप्रदीप ग्रंथ की पांडुलिपि एक गोल डिब्बी में दी। त्रिपाठी जी अचंभित हुए

तब पाठक जी ने बताया कि इस डिब्बी में एक माइक्रो चिप है। इसे माइक्रो फिल्म रीडर के माध्यम से कंप्यूटर पर खोलकर प्रिंट आउट निकल आएँगे। भोपाल में तो यह काम संभव नहीं हुआ, तब उन्होंने दिल्ली के राष्ट्रीय कला केंद्र में जाकर प्रिंट निकलवाए।

चार–पाँच सौ पृष्ठ की नागरी लिपि में हस्तलिखित पांडुलिपि उनके हाथों में थी। उन्हें संदेह हुआ कि नाट्य–प्रदीप तो इतने पृष्ठों की नहीं है, फिर यह क्या? परंतु भोपाल आने पर जब उन्होंने पांडुलिपि पढ़ना आरंभ की तो उनका संदेह सच निकला। वह नाट्य–प्रदीप की पांडुलिपि नहीं थी। हालांकि पांडुलिपि के प्रथम पृष्ठ पर शीर्षक व अन्य जानकारियाँ सूची के अनुरूप ही थीं। दरअसल वह महाकवि दंडी के 'दशकुमारचरित' के तीसरे खंड की अधूरी प्रति थी। त्रिपाठी जी ने इसे ऊँचे पेड़ पर लगा एक फल माना और अध्ययन–मनन में लग गए। अंत में त्रिपाठी जी ने पूरी पांडुलिपि पढ़ने के बाद निष्कर्ष निकाला कि यह पांडुलिपि उज्जैन के राजा विक्रमादित्य की कथा है। कालांतर में उन्होने इस विक्रमादित्य कथा का गद्यानुवाद करते हुए उपन्यास का रूप दिया। इस उपन्यास को भारतीय ज्ञानपीठ ने छापा है। उपन्यास में खगोलीय घटनाओं और विक्रम संवत के प्रारंभ होने के विज्ञानसम्मत आख्यान तो हैं ही, विक्रमादित्य के इतिहास नायक होने के तथ्य भी हैं। सच्चाई यह है कि इस औपन्यासिक कथा में ईसा के पहली की शताब्दी के भारत की एक व्यापक प्रस्तुति है। इस पांडुलिपि की प्राप्ति की रोचक गाथा उपन्यास की भूमिका में दी गई है। पांडुलिपि के उपन्यास के रूप में प्रकाशन से यह स्पष्ट होता है कि पुरातन ग्रंथों में इतिहास, भूगोल, युद्ध, विज्ञान, समयमान के चित्रण तो हैं ही, भारतीय इतिहास–नायकों की गाथाएँ भी हैं। यही संयुक्त वर्णन कहानियों–किस्सों के रूप में किसी राष्ट्र के विकसित श्रेष्ठतम रूप को सामने लाते हैं।

पांडुलिपियों के रूप में सुरक्षित ग्रंथों के शोध और संग्रह निरंतर होते रहे हैं। 1803 में इन ग्रंथों का सूची–पत्र तैयार करने की पहली बार शुरुआत एशियाटिक सोसायटी ने की थी। इस सोसायटी के चौथे अध्यक्ष एच.टी. कोलब्रुक ने सूची–पत्र तैयार करने के लिए प्रति वर्ष 5–6 रुपए का अतिरिक्त अनुदान का प्रबंध भी कराया। इसी क्रम में गर्वनर एलफिन्सटन ने जब संस्कृत ग्रंथों का अनुसंधान कराया, तब ज्ञात हुआ कि 1840 में जितने ग्रंथ भारत में पाए गए, उनकी संख्या ग्रीक और लेटिन भाषा के समस्त पश्चिमी और कतिपय एशियाई ग्रंथों से कहीं ज्यादा थी। इसके पूर्व 1830 में फ्रेडरिक ने 350 संस्कृत ग्रंथों की सूची बनाई थी। 1859 में बेल के शोधानुसार इन ग्रंथों की संख्या 1300 हो गई। कालांतर में 1891 आते–आते शियोगेर अलफ्रेस्ट ने जो सूची–पत्र बनाया, उसमें इन संस्कृत पांडुलिपियों की संख्या 32 हजार से ऊपर निकल गई। तदुपरांत भारतीय विद्वान हरप्रसाद शास्त्री ने 40 हजार पांडुलिपियों और 1916 में राहुल सांकृत्यायन ने 50 हजार ग्रंथों की खोज कर सूची–पत्र बना लिया।

इन सूची–पत्रों की तैयारी के बाद पांडुलिपि शास्त्र के जर्मन ज्ञाता शिलगल ने इन ग्रंथों का विषयवार वर्गीकरण किया। इसी वर्गीकृत अध्ययन से ज्ञात हुआ कि ये ग्रंथ केवल एक विषय, एक धर्म या अध्यात्म मात्र पर केंद्रित नहीं हैं, अपितु इस वर्गीकरण से ग्रंथों के प्रकार और उनमें अंतनिर्हित दर्शन का प्रादुर्भाव हुआ जिसे तेरह वर्गों में विभाजित किया गया। वैदिक साहित्य अर्थात् चार वेद, वेदांग अर्थात् शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, ज्योतिष और छंद। वेदांगों से आगे पुराण, इतिहास, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र और काव्यशास्त्र लिखे गए। उपनिषदों के माध्यम से अध्यात्म, खगोल और नैतिकता के दर्शन की स्थापना हुई। इसी क्रम में जैन और बौद्ध दर्शन से लेकर चार्वाक् दर्शन तक सामने आए। इनमें प्रकृति से लेकर मानव–वृत्तियों के उल्लेखों के मनोवैज्ञानिक दृष्टांत हैं और आडंबरों पर प्रहार है।

1981 में भारत की प्राचीनतम बख्शाली पांडुलिपि को प्राचीनतम गणित की पांडुलिपि माना गया है। यह पांडुलिपि खैबर पख्तूनख्वा, पेशावर (पाकिस्तान) के एक किसान को मिली थी। भोजपत्रों पर यह संस्कृत में लिखी गई है। इसके केवल सत्तर पृष्ठ मिले हैं, शेष नष्ट हो गए। इसे नौवीं शताब्दी का लिखा माना जाता है। परंतु जब इसकी लिखावट का ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय और बोडालियन पुस्तकालय के शोधकर्ताओं ने रेडियो कार्बन डेटिंग से परीक्षण किया तो इसे तीसरी–चौथी शताब्दी का होना पाया गया। इस परिणाम से यह निष्कर्ष भी निकाला गया कि ग्वालियर में स्थित मंदिर की दीवार पर उत्कीर्ण शून्य का शिलालेख नौवीं शताब्दी का है उससे भी पहले की यह पांडुलिपि है। इसमें एक ऐसे बिंदु का उल्लेख किया गया है जो 'शून्य' का प्रतिनिधित्व करने वाला अब तक का सबसे प्राचीन प्रतीक है। ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के प्राध्यापक मार्कस डू सौतॉय ने प्रतिपादित किया है कि आज हम जिस शून्य का प्रयोग करते हैं, वह प्राचीन भारत में प्रयोग में लाए गए 'बिंदु' से ही विकसित हुआ है। इस पांडुलिपि का आरंभिक लेखन शारदा लिपि में है। यह लिपि 8वीं से 12वीं शताब्दी तक दक्षिण एशिया के उत्तर–पश्चिमी क्षेत्रों और कश्मीर के भूखंडों में प्रचलित थी। शारदा लिपि संस्कृत के निकट मानी जाती है। ऋग्वेद में इन लिपियों का प्रारंभिक प्रयोग पणिय और मग समुदाय के लोगों के द्वारा किए जाने के उल्लेख हैं। इस पांडुलिपि में गणितीय नियमों, उनमें आने वाली समस्याओं का हल उदाहरणों सहित उपलब्ध हैं। अंकगणित, बीजगणित, रेखागणित और क्षेत्रमिति भी इसमें मिलते हैं। वर्गमूल, घनमूल स्वर्ण की गणना के साथ आय, व्यय, ब्याज और सरल समीकरणों का उल्लेख भी इस पांडुलिपि में है। बख्शाली पांडुलिपि में लिखे जाने से बहुत पहले से ही भारतीय मनीषियों ने इन गणितीय वैदिक ज्ञान के सूत्रों को श्रुति परंपरा से मौखिक रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी स्मृति में ग्रहण करा दिया था। यही कालांतर में लिखित और मुद्रित रूपों में हमारे समक्ष हैं।

दुनिया ने मान लिया है कि ऋग्वेद के सूक्त और मंत्र सबसे प्राचीन मौखिक और भोजपत्रों पर लिखित आख्यान हैं। तथापि 'भृगुसंहिता' भी एक प्राचीन पांडुलिपि है जिसकी मूल प्रति होशियारपुर में आज भी सुरक्षित है। इसमें ग्रह नक्षत्रों के आधार पर व्यक्ति का भूत और भविष्य बाँचने का दावा किया जाता है। रामधारी सिंह दिनकर ने 'संस्कृति के चार अध्याय' में ऋग्वेद की ऋचाओं को विभिन्न विद्वानों के मतानुसार दो हजार से पचहत्तर हजार वर्ष तक का प्राचीन माना है। इनमें सबसे उत्साहजनक दृष्टिकोण डॉ. अविनाश दत्त का है। वे ऋग्वेद को पचास से पचहत्तर हजार वर्ष पुराना मानते हैं। हमारा यहाँ उद्देश्य ऋग्वेद की प्राचीनता सिद्ध करना नहीं है, अपितु ऋग्वेद के मंत्रों में विज्ञान पर दृष्टि डालना है। ऋग्वेद का गहनता से अध्ययन, चिंतन–मनन करते हैं तो पाते हैं कि विज्ञान के अनेक विषयों के उद्गम के पहले स्रोत ऋग्वेद में ही उल्लेखित हैं। यथा,

नाहि वामस्ति दूरके यत्रा रथेन गच्छथः।
अश्विनो सोमिनो गृहम्।। ऋग्वेदः1.20.4

अर्थात, हे मनुष्यो! जिस कारण अग्नि और जल के वेग से युक्त किया हुआ रथ अति दूरस्थ स्थानों पर भी जल्दी पहुँचता है, इस शिल्पविद्या को लोगों को सीखना चाहिए।

वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम्।
वेद नावःसमुद्रियः।। (ऋग्वेदः1.25.7)

अंतरिक्ष, भू और समुद्र में जाने–आने वाले यानों की विद्या को सिद्ध करने में जो मनुष्य कुशल होता है, वही उन्हें बनाने में समर्थ हो सकता है। यजुर्वेद और अथर्ववेद में ऊर्जा या अग्नि के अनेक रूपों का वर्णन है। यजुर्वेद के एक मंत्र में सौर, आकाशीय और भौतिक ऊर्जा का उल्लेख है। इस मंत्र में पृथ्वी के भीतर ऊर्जा का केंद्र बताया गया है। इसका अभिप्राय यह है कि पृथ्वी के अंदर गैस के रूप में ऊर्जा का भंडार है। यथा–

दिवि ते जन्म, अन्तरिक्षे नाभिः पृथिव्याम् अधि योनिरित्। (यजुर्वेदः11.12)

अथर्ववेद में उल्लेख है कि अग्नि जल का पित्त अर्थात् ऊष्मा है। इसका अभिप्राय है कि जल में अग्नि सदा विद्यमान है। जिस प्रकार घर्षण अथवा मंथन से दही से घी या दूध से मक्खन निकल आता है, उसी प्रकार जल में मंथन से अग्नि या ऊष्मा प्रकट होती है। यथा–

अग्ने पित्तम अपामसि। (यजुर्वेद 17.6)

वेदों में अग्नि के प्रथम आविष्कारक ऋषि वैज्ञानिक अथर्वा को माना गया है। अथर्वा ने सबसे पहले अरणि के वृक्ष से अग्नि खोजी, फिर जल से और बाद में पृथ्वी के गर्भ से गैस के रूप में पुरिष्य अग्नि की खोज की।

ऋग्वेद के एक मंत्र में विद्युत तरंगों का उल्लेख करते हुए ऊर्जा को अति तीव्रगामी अमर दूत कहा गया है। ऊर्जा की तरंगें समुद्र की लहरों के तुल्य अत्यंत तीव्रता से जाती हैं। यथा,

जीरं दूतम् अमत्र्यम्।

सिन्धोरिव...उर्मयः अग्नेभ्रराजन्ते अर्चयः। (ऋग्वेदः1.44.11–12)

ऋग्वेद के एक मंत्र के अनुसार 'श्रुत्कर्ण' शब्द से यह संकेत मिलता है कि विद्युत के द्वारा ध्वनि तरंगों का भी संप्रेषण होता है जिससे दूरस्थ व्यक्ति परस्पर वार्तालाप कर सकते हैं। इसी आधार पर दूर–संचार यंत्रों की प्रक्रिया काम करती है। हमारे प्राचीन ग्रंथों और पांडुलिपियों में विज्ञान की कितनी महिमा है, इसे जगदीशचंद्र बसु के आविष्कार 'पेड़ों में प्राण' से जानते हैं। बसु ने सैकड़ों पेड़–पौधों पर अध्ययन, चिंतन–मनन व प्रयोग करके जाना कि पेड़ों में प्राण अर्थात् चेतना होती है। वे मनुष्य की तरह चैतन्य होते हैं। सबसे ज्यादा प्रयोग उन्होंने छुईमुई (मिमोसा प्युडिका) पर किए। छुईमुई से मामूली स्पर्श भी यह दर्शा देता है कि इस पौधे में जीवन के अंश हैं। इसे छूते ही पक्तियाँ संकुचित होकर परस्पर चिपक जाती हैं और सूरज की पहली किरण का स्पर्श पाते ही जीवंत हो उठती हैं। बसु ने पेड़–पौधों में जीवन होने की वास्तविकता को जानने के लिए इनमें क्रमशः होने वाली वृद्धि को मापने के लिए 'उच्च आवर्धन वृद्धिमापक यंत्र' (हाई मैग्नीफिकेशन क्रेस्कोग्राफ) का निर्माण अपने घर की प्रयोगशाला में किया था।

बसु को संस्कृत से बहुत मोह था। संस्कृत के अनेक ग्रंथों को उन्होंने पढ़ा था। इसीलिए वे पेड़ों में जीवन की खोज कर पाए थे। बसु अपने द्वारा निर्मित यंत्रों का नाम शुद्ध संस्कृत में रखना चाहते थे। लेकिन वे जानते थे कि ऐसा करने पर पाश्चात्य विद्वान इनका अर्थ गलत करके अनर्थ कर देंगे। यह जानकारी उन्होंने बांग्ला भाषा में लिखे एक लेख में दी है।

महाभारत में पेड़ों को चैतन्य योनि माना है। महाभारत के एक श्लोक में कहा है, उद्भिज यानी भूमि को फाड़कर निकलने वाले सभी पेड़–पौधों, फसलों, सब्जियों और लताओं में सुख–दुख करने की संवेदना इस तथ्य का प्रमाण है कि इनमें मनुष्य जैसी चैतन्यता होती है। पंच महाभूतों अर्थात् पंचतत्व धरती, आकाश, वायु, जल और अग्नि का वर्णन करते हुए वेद व्यास ने कहा है,

सुखदुःख्योश्च ग्रहणचिन्नस्य च विरोहणात।

जीवं पश्यामि वृक्षणामचैतन्यं न विधते।।

अर्थात्, वृक्ष अचेतन नहीं हैं, उनमें भी जीवन हैं। वे सभी सुख–दुख का अनुभव करते हैं। चेतन होने के कारण काटे जाने पर उनमें अंकुर प्रस्फुटित हो जाते हैं।

13 अप्रैल 476 ईस्वी में जन्मे आर्यभट्ट ने मात्र 23 वर्ष की आयु में 'आर्यभटीय' ग्रंथ लिख दिया था। इसमें नक्षत्र विज्ञान और गणित से संबंधित 121 श्लोक हैं।

आर्यभट्ट ने गणित काल–क्रिया और वृत्त तीन सिद्धांत दिए। आर्यभट्ट विश्व के ऐसे पहले अनूठे खगोलविद हैं जिन्होंने पहली बार सुनिश्चित किया कि ग्रहों का एक दिवसीय भ्रमण पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा लगाने के कारण है। आर्यभट्ट ने ही तय किया कि पृथ्वी सभी दिशाओं में वृत्ताकार तथा अंडाकार है। पृथ्वी अपनी धुरी पर घूर्णन करती है और सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है।

आर्यभटीय ग्रंथ की भास्कर प्रथम ने 'भास्कर आर्यभटीय भाष्य' के नाम से टीका लिखी। अब यह भी ज्ञान में आ गया है कि 800 ईसवी के आसपास आर्यभटीय का 'जीज जल अर्जभहर' नाम से अरबी में अनुवाद भी हुआ। मध्य एशिया के संस्कृत के विद्वान माने जाने वाले अलबरूनी 1017 से 1030 के मध्य भारत में रहे थे। उन्होंने अपने ग्रंथ 'किताब उल–हिंद' में आर्यभट्ट के सिद्धांतों का अरबी में उल्लेख किया है। संस्कृत से अरबी–फारसी में अनूदित होकर अनेक पांडुलिपियाँ ब्रिटेन, इटली और अन्य पाश्चात्य देशों में पहुँची। इनका लैटिन में अनुवाद हुआ। संभव है, 15वीं शताब्दी में कोपरनिकस और 16वीं सदी में गैलीलियो ने पृथ्वी गोल है और सूर्य के चारों ओर परिभम्रण करती है, सिद्धांत की प्रेरणा आर्यभट्ट के सिद्धांतों से ही ली हो।

अभी हम प्राचीन ग्रंथ और पांडुलिपियों में विज्ञान की बात कर रहे थे, लेकिन अब भारतीय ज्ञान परंपरा से अंग्रेजों द्वारा बनाई पांडुलिपि और उसमें अंतर्निहित ज्ञान को ब्रिटेन भेजने की बात करते हैं। जेबी कीथ ने सात सितंबर 1891 के 'पायनियर' में लिखा है, 'हर कोई जानता है कि शिल्पकार और कारीगर अपने पेशागत रहस्यों को सावधानीपूर्वक छिपाकर रखते हैं। परंतु हिंदुस्तानी कारीगरों को जबरदस्ती मजबूर किया गया कि वे अपने कपड़ों के थानों को धोकर सफेद करने के तरीके और अपने दूसरे औद्योगिक रहस्य मैनचेस्टर वालों को प्रकट कर दें। उन्हें इस हद तक विवश किया गया कि तकनीकी रहस्यों के सूत्रों के सार खोलने पड़े। इन सूत्रों के आधार पर इंडिया हाउस महकमे ने एक कीमती संग्रह तैयार किया। इस तकनीकी संग्रह में 700 प्रकार की वस्तुएँ निर्माण की विधियाँ एकत्रित कर 18 बड़ी जिल्दों में तैयार कराई गईं। इसे कई प्रतियों में छापा गया और ब्रिटेन के औद्योगिक घरानों, शिक्षा संस्थानों और तकनीकी विशेषज्ञों को ये प्रतियाँ उपलब्ध कराई गईं। इस उपाय से ब्रिटेन ने एक तीर से दो निशाने साधे। एक ब्रिटेन के कारीगर तकनीक के जानकार हो गए और दूसरे उसी अनुरूप वस्तुओं का निर्माण करने लग गए। पं. सुंदरलाल की पुस्तक 'भारत में अंग्रेजी राज' में इस प्रसंग का वर्णन दर्ज है। इतना महत्त्वपूर्ण ज्ञान हमारी प्राचीन पांडुलिपियों में दर्ज होने के बावजूद हम हैं कि आज भी पश्चिम की ओर ताकते रहते हैं।

❑❑❑

भारतीय ज्ञान परंपरा की अवधारणा का वैज्ञानिक स्वरूप

✍ डॉ. दिनेश कुमार गुप्ता

आधुनिक शिक्षा प्रणाली जिसे मुख्य रूप से छात्रों को व्यावसायिक विकास और आर्थिक सफलता के लिए आवश्यक कौशल और ज्ञान से परिपूर्ण करने के लिए तैयार किया गया है, भौतिकवादी परिणामों पर अपने संकीर्ण ध्यान के लिए आलोचना का सामना करती है। यह दृष्टिकोण, पेशेवर क्षमता को सुविधाजनक बनाते हुए, किसी व्यक्ति के समग्र विकास को अनदेखा करता है, विशेष रूप से आध्यात्मिक और भावनात्मक क्षेत्रों में। इसके विपरीत, प्राचीन भारतीय आध्यात्मिक विज्ञान, जिसे 'भारतीय ज्ञान परंपरा' के रूप में जाना जाता है, शिक्षा का एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करता है जो भौतिक ज्ञान को आध्यात्मिक ज्ञान के साथ एकीकृत करता है। यह परंपरा, भारतीय जीवन दर्शन में गहराई से निहित है जो एक संतुलित विकास पर जोर देती है, जिसमें न केवल बौद्धिक बल्कि आध्यात्मिक, नैतिक और भावनात्मक विकास भी शामिल है।

भारतीय ज्ञान परंपरा दार्शनिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक ज्ञान के अपने विशाल भंडार के साथ आधुनिक शिक्षा को मुख्य रूप से भौतिकवादी दृष्टिकोण के विपरीत प्रस्तुत करती है। यह सदियों पुराना ज्ञान वेदों, उपनिषदों, भगवद्गीता और अन्य शास्त्रों में निहित है, जो वास्तविकता, चेतना, नैतिकता और आंतरिक शांति की खोज का पता लगाते हैं। इस परंपरा का मुख्य विचार यह है कि शिक्षा को केवल बाहरी ज्ञान प्राप्त करने तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि व्यक्ति के आंतरिक स्व की प्राप्ति और जीवन की परस्पर संबद्धता से भी युक्त होना चाहिए।

इन प्राचीन सिद्धांतों को वर्तमान शिक्षा प्रणाली में एकीकृत करने से अधिक संतुलित और समृद्ध शिक्षण अनुभव प्राप्त हो सकता है। धर्म की अवधारणा, जो भारतीय दर्शन में कर्तव्यों, अधिकारों, कानूनों, आचरण, गुणों और 'जीवन जीने के सही तरीके' को संदर्भित करती है, इस एकीकरण का एक अभिन्न अंग हो सकती है।

भारतीय ज्ञान परंपरा का एक और महत्त्वपूर्ण पहलू योग और ध्यान का अभ्यास है। ये अभ्यास केवल शारीरिक व्यायाम नहीं है, बल्कि शरीर, मन और आत्मा के मध्य सामंजस्य बनाने के लिए प्रतिपादित किए गए गहन आध्यात्मिक अनुशासन हैं। उन्हें

शैक्षिक प्रक्रिया में शामिल करने से कई लाभ हो सकते हैं। शोध से पता चला है कि योग और ध्यान एकाग्रता को बढ़ा सकते हैं, तनाव को कम कर सकते हैं और मानसिक स्वास्थ्य में सुधार कर सकते हैं। यह उन छात्रों के लिए विशेष रूप से फायदेमंद हो सकता है जो अकसर शैक्षणिक और सामाजिक दबाव का सामना करते हैं।

इसके अलावा, प्राचीन भारतीय ग्रंथों की कथाएँ और शिक्षाएँ नैतिक मार्गदर्शन प्रदान कर सकती हैं। इन ग्रंथों में ऐसी कहानियाँ हैं जो कर्म (कारण और प्रभाव का नियम) और मोक्ष (मुक्ति या ज्ञानोदय) के सिद्धांतों को दर्शाती हैं। इन अवधारणाओं को समझने से छात्रों को अपने कार्यों और उनके परिणामों के महत्त्व को समझने में मदद मिल सकती है जिससे उन्हें जिम्मेदारी और नैतिकता से काम करने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है।

शिक्षा के लिए एक अंतःविषय दृष्टिकोण, जो आध्यात्मिक ज्ञान को वैज्ञानिक और मानवतावादी अध्ययनों के साथ एकीकृत करता है, दुनिया की व्यापक समझ प्रदान कर सकता है। उदाहरण के लिए, क्वांटम भौतिकी के सिद्धांतों को माया (भ्रम) की भारतीय अवधारणा के साथ जोड़कर खोजा जा सकता है ताकि वैज्ञानिक और दार्शनिक दोनों दृष्टिकोणों से वास्तविकता की प्रकृति को समझा जा सके। यह दृष्टिकोण छात्रों में आलोचनात्मक सोच और खुले दिमाग को बढ़ावा दे सकता है जिससे उनमें ज्ञान और समझ के विभिन्न क्षेत्रों के बीच संबंध देखने की प्रवृत्ति विकसित होती है। इसके अलावा, आधुनिक शिक्षा में भारतीय ज्ञान परंपरा का अनुप्रयोग अकादमिक शिक्षा से परे है। इसमें भावनात्मक बुद्धिमत्ता, लचीलापन और सहानुभूति का विकास शामिल है। ये गुण व्यक्तिगत भलाई और प्रभावी सामाजिक संपर्क के लिए आवश्यक हैं।

भारतीय ज्ञान परंपरा को आधुनिक शिक्षा में एकीकृत करने का विचार वैश्विक बदलाव के साथ भी मेल खाता है, जो समग्र शैक्षिक प्रतिमान की ओर बढ़ रहा है, जो कल्याण, स्थिरता और नैतिक जीवन पर जोर देता है। यह एकीकरण ऐसे व्यक्तियों की एक नई पीढ़ी को बढ़ावा दे सकता है जो न केवल शैक्षणिक रूप से कुशल हैं, बल्कि भावनात्मक रूप से संतुलित, नैतिक रूप से उन्मुख और आध्यात्मिक रूप से जागरूक भी हैं। वे पर्यावरणीय मुद्दों से लेकर सामाजिक असमानता तक, आधुनिक दुनिया की जटिल चुनौतियों का अधिक व्यापक दृष्टिकोण से सामना करने के लिए बेहतर ढंग से सुसज्जित होंगे। हालाँकि, इस प्राचीन ज्ञान को आधुनिक शिक्षा प्रणालियों में एकीकृत करना चुनौतियों भरा है। इसके लिए एक सतर्क और विचारशील दृष्टिकोण की आवश्यकता है ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि यह मौजूदा शैक्षिक ढाँचों के साथ संघर्ष करने के बजाय पूरक हो। इसके लिए शिक्षक–प्रशिक्षण और पाठ्यक्रम–विकास की भी आवश्यकता है जो प्राचीन ज्ञान और समकालीन समाज की

आवश्यकताओं दोनों का सम्मान करता हो।

प्राचीन काल की भारतीय ज्ञान परंपराएँ और संस्कृति मानवता को प्रोत्साहित करती रही हैं। पुराणों में ज्ञान को अप्रतिम माना गया है। भारत में तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला, वल्लभी, उज्जयिनी, काशी आदि विश्वप्रसिद्ध शिक्षा एवं शोध के प्रमुख केंद्र थे तथा यहाँ कई देशों के शिक्षार्थी ज्ञान–अर्जन के लिए आते थे। प्राचीन भारतीय ज्ञान–विज्ञान की गौरवमयी परंपरा समस्त जगत को आलोकित करने वाली है। संस्कृत भाषा में ज्ञान–विज्ञान की महती श्रृंखला है जो वर्तमान वैज्ञानिक जगत के लिए कुतूहल का विषय ही है। आज जहाँ एक ओर आधुनिक विज्ञान समुन्नत स्थिति में दिखाई दे रहा है, वहीं दूसरी ओर इसके दोष एवं नकारात्मक प्रभाव भी दिखाई दे रहे हैं। विज्ञान की प्रगति हर युग की आवश्यकता है किंतु इसमें दूरदर्शिता और मानव कल्याण का भाव सर्वोपरि होना चाहिए। स्वदेशी विज्ञान आंदोलन के माध्यम से आधुनिक विज्ञान को प्राचीन भारतीय ज्ञान–वैभव से जोड़ने का अनवरत प्रयास किया जा रहा है। भारतीय ज्ञान परंपरा जो वैदिक एवं उपनिषद काल में थी, वह बौद्ध और जैन काल में भी रही, यह विभिन्न विश्वविद्यालयों की स्थापना और शिक्षा व्यवस्था से स्पष्ट परिलक्षित होता है। लेकिन इसका लोप विगत 200 से 300 वर्षों में हुआ है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा में इसे भी उचित रूप में प्रतिबिंबित करने की आवश्यकता है।

प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा की गौरवमयी परंपरा– भारतीय ज्ञान परंपरा अद्वितीय ज्ञान और प्रज्ञा का प्रतीक है जिसमें ज्ञान और विज्ञान, लौकिक और पारलौकिक, कर्म और धर्म तथा भोग और त्याग का अद्भुत समन्वय है। ऋग्वेद के समय से ही शिक्षा प्रणाली जीवन के नैतिक, भौतिक, आध्यात्मिक और बौद्धिक मूल्यों पर केंद्रित होकर विनम्रता, सत्यता, अनुशासन, आत्मनिर्भरता और सभी के लिए सम्मान जैसे मूल्यों पर जोर देती थी। वेदों में विद्या को मनुष्यता की श्रेष्ठता का आधार स्वीकार किया गया था। शिक्षा प्रणाली ने सीखने और शारीरिक विकास दोनों पर ध्यान केंद्रित किया है। कर्म वही है जो बंधनों से मुक्त करे और विद्या वही है जो मुक्ति का मार्ग दिखाए। इसके अतिरिक्त जो भी कर्म हैं, वे सब निपुणता देने वाले मात्र हैं। शिक्षा के इस संकल्प को भारतीय परंपरा में अंगीकृत कर तदनुरूप ही विश्वविद्यालयों और गुरुकुलों में शिक्षा दी जाती थी। घर, मंदिर, पाठशाला तथा गुरुकुल में संस्कारयुक्त स्वदेशी शिक्षा दी जाती थी। प्राचीन काल की ज्ञान परंपराएँ और प्रथाएँ मानवता को प्रोत्साहित करती थीं। पुराण में ज्ञान को अप्रतिम माना गया है। आचार्य यास्क निरुक्त में कहते हैं– *"नह्येषु प्रत्यक्षमस्तिअनुषेरतपससो वा"* (निरुक्त 13.12) अर्थात् जो ऋषि या तपस्वी नहीं हैं, वह मंत्रों के यथार्थ ज्ञान को नहीं जान सकता। अतः जिस प्रकार पूर्व को जानने के लिए पूर्व की ओर ही गमन करना होता है, उसी प्रकार आर्ष प्रणीत सिद्धांतों व सूत्रों को समझने के लिए उन्हीं के अनुरूप चिंतन मनन

के लिए अग्रसर होना होगा।

वैज्ञानिक और तार्किक चिंतन का परिणाम– प्राचीन भारतीय सनातन ज्ञान परंपरा अति समृद्ध थी तथा इसका उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को समाहित करते हुए व्यक्ति के संपूर्ण व्यक्तित्व को विकसित करना था। जब सारा विश्व अज्ञान रूपी अंधकार में भटकता था तब संपूर्ण भारत के मनीषी उच्चतम ज्ञान का प्रसार करके मानव को पशुता से मुक्त कर, श्रेष्ठ संस्कारों से युक्त कर संपूर्ण मानव बनाते थे। *संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् देवाभागं यथा पूर्वे सजनानां उपासते* (ऋग्वेद 10.191.2.) साथ चलने, एक स्वर में बोलने और एक दूसरे के मन को जानने वाला समाज ही अपने युग को बेहतर बनाने की सामर्थ्य से युक्त हो सकता है और ऐसे युग में जीने वाले स्वयं के लिए बेहतर वर्तमान और आने वाली पीढ़ियों के लिए बेहतर भविष्य की संकल्पना करने वाले होते हैं। ऋग्वेद का यह मंत्र हमें ऐसी ही सनातन दृष्टि को प्रदान करने वाला है।

भारतीय ज्ञान परंपरा का भू–सांस्कृतिक और सभ्यतागत संदर्भ– भारत भूमि की प्राचीनता, इसमें से उत्पन्न हुई सभ्यता ओर संस्कृति से स्थापित होती है। इस परिप्रेक्ष्य में भारत भूमि की भौगोलिक जानकारी होना भी आवश्यक है और इससे जुड़ी हुई है भारत की ज्ञान परंपरा। ये सभी विषय परस्पर जुड़े हुए हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा के मूल में विद्यमान भू–सांस्कृतिक और सभ्यतागत विशेषताओं का पता लगाने और पहचानने के लिए हमें किसी प्रामाणिक ऐतिहासिक या प्रागैतिहासिक, मौखिक या लिखित रूप में सबसे पुराने उपलब्ध पाठ्य–संदर्भ का पता लगाना होगा। यह तथ्य सर्वविदित है कि विभाजन पूर्व समय में भारत ने उत्तर–पश्चिम में अपनी तात्कालिक भौगोलिक सीमाएँ अफगानिस्तान और ईरान के साथ साझा की थीं, लेकिन प्राचीन काल में इन राजनीतिक सीमाओं को आज की तरह चिह्नित नहीं किया गया था। प्रारंभ में भू–दृश्य कुछ भौगोलिक कारणों से अलग–अलग थे, जैसे पहाड़, नदियाँ, रेगिस्तान या जंगल आदि। यही कारण है कि एक विशिष्ट भौगोलिक रूप से चिह्नित सीमाओं के भीतर रहने वाले लोगों के दृष्टिकोण ने उनकी जीवन शैली, व्यवहार और सोच ने एक सामान्य विशिष्टता हासिल कर ली थी।

प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा और इतिहास– प्राचीन काल से ही हमारा देश मानवीय मूल्यों एवं विशिष्ट वैज्ञानिक परंपराओं का देश रहा है। भारत की संस्कृति रही है कि भारत ने दुनिया को अलग–अलग देशों के रूप में माना ही नहीं है। *अयं निजः परोवेति गणना लघु चेतसाम्, उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुंबकम्* / उपनिषद् के इस सिद्धांत के आधार पर भारत दुनिया को एक परिवार मानता है। यह अलग बात है कि पाश्चात्य सभ्यता की आपाधापी में हम भी गलती से यह समझने लगे हैं कि यह सभ्यता भौतिकवाद पर टिकी है, न कि ज्ञान और अध्यात्म पर। इस सदी के

उत्तरार्ध से पश्चिमी सभ्यता वाले देश भारतीय संस्कृति और सभ्यता को अपनाने और जानने पर जोर देने लगे हैं। वेदों, उपनिषदों, स्मृतियों और यहाँ की जीवनशैली को जानने के लिए अपने यहाँ कई विभाग से लेकर शोध संस्थाओं की स्थापना करने लगे हैं। भारत की परंपराओं को आज विश्व भी अपना रहा है। हमें और हमारी भावी पीढ़ियों को भी भारत के प्राचीन मूल्यों को यथोचित महत्त्व देना होगा। इसके लिए आंतरिक ज्ञान, गुण, शक्ति एवं आदर्शों को ठीक रूप से पहचानना होगा एवं सही दिशा प्रदान करनी होगी। यह ज्ञान परंपरा अनादिकाल से चली आ रही है। इस भूमि में देवता, सुर, असुर सभी जन्म लेने के लिए तरसते हैं क्योंकि यहाँ से स्वर्ग और मोक्ष का मार्ग प्रशस्त होता है।

आधुनिक संदर्भ में भारतीय ज्ञान परंपरा की भूमिका– यह भारत भूमि महान है। इस भूमि की ज्ञान की अविरल धारा ने संपूर्ण जगत को सींचा है। भारतीय ज्ञान परंपरा पुरातन युग से बहुत समृद्ध रही है। आधुनिक युग में प्रचलित भारतीय ज्ञान और विदेशों से आ रही तथाकथित नवीन खोज जो हमारे ग्रंथों में उल्लिखित है, भारतीय ज्ञान परंपरा के समृद्धशाली होने का प्रमाण है। बीती कुछ शताब्दियों से इस भूमि को इस प्रकार महसूस कराया जाता रहा है कि कभी यहाँ ज्ञान अंकुरित ही नहीं हुआ है। सहस्र वर्षों की दासता में हमारी सैकड़ों पीढ़ियों ने पीड़ा को झेलते हुए इस ज्ञान को संजोए रखा। परंतु समय के साथ इसकी उपादेयता क्षीण होती रही। इसलिए समय है भारत के ज्ञान–वृक्ष की छाया में पोषित हो रहे इस विश्व को बताने का कि भारत का गुरुत्व अभी भी कायम है। भारत का ज्ञान गंगा जल के समान है जो निर्मल और अविराम है। मैकाले के मानसपुत्र प्रश्न उठाते हैं कि भारत ने विश्व को क्या दिया और यह बोध कराते हैं कि पाश्चात्य देशों ने ही भारत को सब कुछ दिया है। भारत ने विश्व को ज्ञान प्रणाली दी, विज्ञान के अनेक आयाम दिए। यह भारतीय ज्ञान प्रणाली के बारे में चिंता और चिंतन करने का समय है। इसकी उपादेयता को जनमानस तक पहुँचाने के लिए पुरुषार्थ की आवश्यकता है क्योंकि यह बात केवल पुरातन ज्ञान के बारे में नहीं है। यह आंतरिक सुरक्षा और राष्ट्रीय गौरव के बारे में है। साथ ही यह बात भी विस्मृत न हो कि भारतीय ज्ञान परंपरा सत्य का अनुमोदन करती है। आधुनिक युग में डिप्रेशन, तनाव, एंग्जाइटी व मेंटल ट्रॉमा जैसे शब्दों का प्रयोग अत्यधिक मात्रा में बढ़ गया है। आज की युवा पीढ़ी पाश्चात्य जगत की जीवनशैली को अपनाने के कारण इन शब्दों को अपने जीवन में समाहित कर चुकी है किंतु पुरातन भारत में इस प्रकार की मनोवृत्ति देखने को नहीं मिलती, इसका कारण रहा 'भारतीय दर्शन'। अब यह हम सभी का कर्तव्य बनता है कि भारत वर्ष की अनमोल धरोहर ज्ञान को संवर्धित करके रखें जिससे कि विश्व का कल्याण हो सके एवं भारत की आने वाली पीढ़ी भारत को हीन दृष्टि से न देख कर गौरवपूर्ण दृष्टि से देखे। वैज्ञानिक अलबर्ट आइन्सटीन ने कहा है– *हम भारतीयों के बहुत ऋणी हैं जिन्होंने हमें गिनना सिखाया जिसके*

बिना कोई सार्थक वैज्ञानिक खोज नहीं हो सकती थी। पाश्चात्य जगत के वैज्ञानिक के कथन से यह स्पष्ट होता है कि भारतवर्ष का योगदान सदैव ही अमूल्य रहा है और आधुनिक संदर्भ में इसकी उपादेयता सदैव अक्षुण्ण रहेगी।

प्राचीन भारत ने दर्शन, ध्वन्यात्मक अनुष्ठान, व्याकरण, खगोल विज्ञान, अर्थशास्त्र, सांख्य सिद्धांत, तर्क, जीवन विज्ञान, आयुर्वेद, ज्योतिष एवं संगीत जैसे विभिन्न मानव कल्याणकारी क्षेत्रों में कीर्तिमान की स्थापना करके मानव जाति की उन्नति में अत्यधिक योगदान दिया है। प्राचीन भारतीयों द्वारा आविष्कृत विचारों और तकनीकों का आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी के मूलाधार को दृढ़ करने में अद्भुत योगदान रहा है जबकि इस अभिनव योगदान को वर्तमान में कुछ तो अपनाया जा रहा है और कुछ अभी भी अज्ञात है। इस प्रकार हमारे भारत वर्ष ने विश्व को अनेक प्रकार से योगदान देकर लाभान्वित किया है। भारत ने ही विश्व को बौद्ध, जैन और सिक्ख पंथ दिए। भारत ने विश्व को गुरु शिष्य परंपरा दी जिसके माध्यम से वर्षों तक अर्जित ज्ञान को आत्मसात और विश्लेषण कर नये ज्ञान को संश्लेषित किया गया। निष्कर्षतः भारतीय ज्ञान परंपरा आज के परिदृश्य में भी लागू है। यह ज्ञान का एक विशाल भंडार प्रदान करती है जिसका उपयोग लोगों, समुदायों और मानवता को आगे बढ़ाने के लिए किया जा सकता है। अतः विश्व धरोहर के लिए इन समृद्ध विरासतों को न केवल भावी पीढ़ी के लिए पोषित और संरक्षित किया जाना चाहिए बल्कि हमारी शिक्षा प्रणाली के जरिए इन्हें बढ़ाना चाहिए और इन्हें नये उपयोग में भी लाना चाहिए। उत्तम ज्ञान ही एक स्वस्थ समाज को उसके शीर्ष तक पहुँचाने में योगदान देता है। सभी योनियों में मनुष्य को श्रेष्ठ कहा गया है। अतः श्रेष्ठों का कार्य भी उत्तम और कल्याणप्रद होना आवश्यक है।

भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षा का स्वरूप–

प्राचीन भारत में शिक्षा का व्यापक अर्थ स्वीकृत था जिसमें यह माना जाता था कि व्यवहार में सार्थक परिवर्तन ही शिक्षा है। वैदिक काल में संपूर्ण जीवन के लिए शिक्षा की प्रतिष्ठा की जाती थी। बालक की शिक्षा के लिए परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व सभी का दायित्व माना गया है, क्योंकि कालांतर में बालक को शिक्षा प्राप्त कर परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व के लिए एक सन्नागरिक के रूप में अपने दायित्वों का निर्वाह करना आवश्यक है। अतः प्राचीन भारतीय मनीषी दार्शनिक होने के साथ–साथ शिक्षाशास्त्री भी थे। वे जानते थे कि बालक और समाज के सर्वांगीण विकास के लिए शिक्षा से बढ़कर अन्य कोई उपयुक्त साधन नहीं हो सकता। इस चिंतन के परिणामस्वरूप एक सुसंगठित शिक्षा प्रणाली का अभ्युदय हुआ जिसे हम आज प्राचीन भारतीय शिक्षा अथवा वैदिक शिक्षा के रूप में जानते हैं। प्राचीन काल में शिक्षा को न तो 'पुस्तकीय ज्ञान' के रूप में माना जाता था और न ही जीविकोपार्जन के साधन के रूप में। उस कालखंड में शिक्षा को जीवन दर्शन के निर्माण के लिए

आधारभूत सिद्धांत के रूप में माना जाता था। समस्त शैक्षिक तंत्र ज्ञान को अनुभूति का विषय बनाने के लिए आयोजित किया जाता था।

प्राचीन भारत में शिक्षा का महत्त्व

भारतीय चिंतन के अनुसार ज्ञान अथवा शिक्षा विवेक को प्रदान करने का सर्वश्रेष्ठ साधन है। शिक्षा के महत्त्व को परिभाषित करने के लिए प्राचीन भारतीय चिंतन के बहुत से कथनों को उद्धृत किया जा सकता है, यथा– *'विद्ययामृतमश्नुते'* (यजुर्वेद 40/14)। अर्थात् विद्या से अमृत की प्राप्ति होती है। *'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते'* (गीता, 4/38)। अर्थात् ज्ञान से पवित्र संसार में कुछ भी नहीं है। *'ज्ञानं मनुजस्य तृतीयं नेत्रं समस्ततत्वार्थविलोकदक्षम'* (सुभाषितम्)। अर्थात् ज्ञान मनुष्य का तृतीय नेत्र है, जो कि यथार्थ दर्शन करवाने में समर्थ है। 'ऋतेज्ञानान्न मुक्तिः' (शंकराचार्य) अर्थात् ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं मिलती है। भर्तृहरि ने 'विद्याविहीनः पशुः' (नीतिशतक, 20) विद्याविहीन मनुष्य को पशु की संज्ञा दी है। विद्या के महत्त्व के विषय में अधोलिखित श्लोक से प्रमाण लिया जा सकता है –

मातेव रक्षति पितेव हिते नियुंगते, कान्तेव चाभिरमयत्यपनीय खेदम।
लक्ष्मीं तनोति वितनोति च दिक्षु कीर्तिं, किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या।।

अर्थात् विद्या जीवन यात्रा में माता के समान रक्षा करती है, पिता के समान हितकारी कार्यों में संलग्न करवाती है, पत्नी के समान कष्ट को दूर कर आनंदित और प्रफुल्लित करती है। विद्या चारों दिशाओं में कीर्ति का विस्तार कर धन–धान्य से समृद्ध बनाती है। इस प्रकार कल्पलता के समान सभी फल देने वाली विद्या कौन सा अभीष्ट सिद्ध नहीं करती? अर्थात् सब कुछ प्रदान करती है। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारतीय मनीषी शिक्षा के महत्त्व को लेकर अत्यंत जागरूक थे। विद्या के अर्जन और प्रसार के लिए सर्वत्र समुपदेश प्राप्त होता है। उनके मतानुसार विवेक को जाग्रत करने के लिए विद्या ही सर्वश्रेष्ठ उपाय है।

प्राचीन काल में शिक्षा की व्यवस्था

प्राचीन काल में परिवार को बालक का प्रथम विद्यालय और माता को प्रथम गुरु माना जाता था। कालांतर में प्राथमिक शिक्षा की औपचारिक व्यवस्था भी आरंभ हुई। इस व्यवस्था में 'विद्यारंभ संस्कार' अथवा 'अक्षरारंभ संस्कार' के माध्यम से पाँच वर्ष की आयु में लेखन एवं पठन का प्रशिक्षण दिया जाता था। इसके अतिरिक्त छात्र वैदिक मंत्र, सुभाषित, व्याकरण सूत्र, कतिपय सूक्तियों इत्यादि का स्मरण भी करते थे। अष्ट वर्ष की आयु में उपनयन संस्कार से पूर्व तक यह प्रशिक्षण प्रदान किया जाता था। तत्पश्चात् औपचारिक शिक्षा के लिए बालक को गुरुकुल में प्रेषित किया जाता था। गुरुकुल में छात्र वेद, वेदांग, उपनिषद्, आरण्यक, पुराण, धर्मशास्त्र, दर्शन, नीति, तर्क, गणित इत्यादि विषयों से संबंधित अनेक ग्रंथों का अध्ययन करता है। इसके अतिरिक्त पाठ्यक्रम में राजनीति, पशुपालन, कृषि, वाणिज्य, शल्यविद्या, आयुर्वेद,

रसायन विद्या, शस्त्र संचालन, ललित कला इत्यादि का प्रशिक्षण भी दिया जाता था। छात्रों के सामर्थ्य और भावी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए किस विषय का विशेष प्रशिक्षण देना है, यह निर्धारित करने का कार्य गुरुकुल के आचार्य का होता था। आचार्य और अन्तेवासी अर्थात् छात्र का परस्पर घनिष्ठ संबंध होता था।

शिक्षा का पाठ्यक्रम

प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में आध्यात्मिक और भौतिक दोनों प्रकार का पाठ्यक्रम प्रचलित था। मुंडक उपनिषद् के अनुसार दो प्रकार की विद्याएँ मानी जाती हैं– परा विद्या और अपरा विद्या। परा विद्या का संबंध आध्यात्मिक उत्थान से है और अपरा विद्या का संबंध सांसारिक अभ्युदय से है। इसके अतिरिक्त आचार्य याज्ञवल्क्य ने चौदह प्रकार की विद्याओं का वर्णन किया है, तथा–

पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्रांगमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश।। (याज्ञवल्क्य स्मृति1/1/3)

अर्थात् चार वेद, षट् वेदांग, पुराण साहित्य, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र इस प्रकार चौदह विद्याएँ होती हैं। वैदिक शिक्षा में उपवेदों यथा आयुर्वेद, धनुर्वेद, गंधर्ववेद और शिल्पवेद का भी अध्यापन एवं प्रशिक्षण होता था। इसके अतिरिक्त यथावश्यक रूप से नृत्य, गीत, वाद्य, वास्तु, चित्र आदि 64 कलाएँ भी पाठ्यक्रम में समाविष्ट होती थीं।

गुरु और शिष्य का स्वरूप एवं संबंध

वैदिक शिक्षा व्यवस्था में गुरु और शिष्य का संबंध अद्भुत हुआ करता था। गुरु शिष्य के प्रति पुत्र की तरह व्यवहार करता था और शिष्य भी गुरु को पिता की तरह आदर सम्मान दिया करता था। उच्च स्तर पर अध्ययनरत शिष्य निम्न स्तर के विद्यार्थियों की देखभाल किया करते थे एवं अनुकूल समय के अनुसार अध्यापन कार्य भी किया करते थे। प्राचीन काल में वार्षिकी परीक्षा न होकर प्रत्येक दिन परीक्षा हुआ करती थी। आचार्य पहले दिन पढ़ाए गए पाठ को दूसरे दिन सुनकर आगे का पाठ पढ़ाया करते थे। इस प्रकार नित्य परीक्षा हुआ करती थी।

वैदिक कालीन शिक्षक–

1. आचार्य– जो यज्ञोपवीत संस्कार से संस्कृत बटुक को सभी वेदों का अध्यापन करवाता था, उसे आचार्य कहा जाता था। आचार्य के स्वरूप के विषय में मनुस्मृति में कहा गया है कि–

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद द्विजः।
सांगम च सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते।। (मनुस्मृति, 2/140)

अर्थात् जो शिक्षक शिष्य को उसके उपनयन के पश्चात् शिक्षादि अंगों की रहस्योद्घाटनपूर्वक व्याख्या करता है, वह आचार्य कहलाता है।

2. उपाध्याय – जो शुल्क लेकर वेद को पढ़ाता था अथवा निःशुल्क वेद के एक

अंग को पढ़ाता था, उसे उपाध्याय कहा जाता था। उपाध्याय के विषय में मनुस्मृति में निर्देश प्राप्त होता है–

एकदेशं तु वेदस्य वेदंगान्यपि वा पुनः।
योध्यापयति वृत्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते। (मनुस्मृति, 2/141)

अर्थात् जो शिक्षक अपनी आजीविका के लिए शिष्य को वेद के एक अंग या संपूर्ण वेद की शिक्षा प्रदान करता है, वह उपाध्याय कहलाता है।

3. गुरु– जो वेद के अनुसार बालक को गर्भाधान संस्कार से लेकर पूर्ण वेद एवं कल्प की शिक्षा देता था, वह गुरु कहलाता था। गुरु का स्वरूप मनु ने अधोलिखित रूप में स्पष्ट किया है–

निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधि।
संभावयति यान्नेन स विप्रो गुरुरुच्यते।। (मनुस्मृति, 2/142)

अर्थात् जो शिक्षक अपने यजमान के यहाँ गर्भाधान आदि संस्कारों को विधिपूर्वक कराता है, और अपने शिष्यों के भोजनावास की व्यवस्था करता है, वह गुरु कहलाता है। इन तीनों श्रेणियों में आचार्य को श्रेष्ठ शिक्षक माना गया है। यद्यपि मनुस्मृति में गुरु का स्वरूप सीमित अर्थ में परिभाषित किया गया है, तथापि लोक व्यवहार में गुरु शब्द सभी प्रकार के शिक्षकों के लिए प्रचलित रहा है।

वैदिककालीन शिष्य–

वैदिक काल में शिष्य का यह कर्तव्य होता था कि जो गुरु उसके कानों में सत्य और सिद्धांत के अमृत का सिंचन कर रहा है, उसे वह माता और पिता के समान समझे। गुरु में अनन्य श्रद्धा रखनी चाहिए तथा उसकी आज्ञा का अक्षरशः पालन करना चाहिए। गुरु से कदापि द्रोह नहीं करना चाहिए। जो छात्र मन, वाणी एवं कर्म से गुरु का आदर नहीं करते, उनकी विद्या कदापि सार्थक नहीं होती थी। निरुक्तकार यास्क ने उल्लेख किया है कि विद्या बहुमूल्य निधि है। अतः योग्य, जिज्ञासु, संयमी, अप्रमादी, मेधावी और गुरुभक्त शिष्य ही विद्या का उत्तम अधिकारी होता है। यथा–

"यमेव विद्याः शुचिमप्रमत्तं मेधाविनं ब्रह्मचर्योपपन्नम"। (निरुक्त, 2/4)

ब्रह्मचर्य एवं स्वाध्याय शिष्य के परम कर्तव्य माने गए हैं। प्राप्त ज्ञान के अभ्यास और आचरण के लिए शिष्य सदैव कृतसंकल्पित रहते थे। स्मृति ग्रंथों में शिष्य के कर्तव्य एवं अकर्तव्य के विषय में वर्णन प्राप्त होता है, तथा–

वर्जयेन्मधु मांसं च गन्धं माल्यं रसान स्त्रिय।
शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम। (मनुस्मृति, 2/177)

अर्थात् बालक एवं बालिका मांस, मदिरा, जुआ, निंदा, अभद्र चिंतन, सुगंधलेपन, सौंदर्य प्रसाधन, रसायन, स्त्री अथवा पुरुष की आसक्ति, चटपटा भोजन एवं प्राणियों के प्रति हिंसा भाव का त्याग कर दें। इस प्रकार के गुरु एवं शिष्य आध्यात्मिक उत्थान के लिए गुरुकुल में एकत्र होते हैं। वैदिककालीन शिक्षक चिंतन में गुरु और शिष्य का

संबंध पिता और पुत्र की भाँति माना गया है। शिक्षक और शिष्य दोनों ही साधारण, सरल और संयमित जीवन जीते थे। तैत्तरीय उपनिषद् में गुरु और शिष्य का संबंध अत्यंत घनिष्ठ रूप से चित्रित किया गया है। यथा–

आचार्यः पूर्वरूपम अन्तेवास्युत्तररूपं।

विद्या संधिः प्रवचनं संधानम। (तैत्तरीय उपनिषद्, 1/3/2–3)

अर्थात् गुरु और शिष्य आत्मिक रूप से जुड़े हुए होते हैं। जिस प्रकार वर्णों की संधि में एक पूर्ववर्ण और परवर्ण होता है, उसी प्रकार यहाँ विद्यारूपी संहिता में आचार्य तो मानो पूर्ववर्ण या रूप है और श्रद्धापूर्वक गुरु की सेवा करने वाला विद्याभिलाषी शिष्य परवर्ण है तथा संधि में दो वर्णों के मिलने पर जैसे एक तीसरा नया वर्ण बन जाता है, उसी प्रकार गुरु और शिष्य के संबंध से उत्पन्न होने वाली विद्या यहाँ संधि है। इस विद्या रूप संधि संधान अर्थात् प्रकट होने का कारण है– प्रवचन अर्थात् गुरु का उपदेश देना।

स्त्री शिक्षा–

वैदिक काल में स्त्री शिक्षा की व्यवस्था थी। ब्रह्मचर्यव्रत का पालन कर चुकी शिक्षिता स्त्री को गृहस्थ आश्रम में प्रवेश का अधिकार मिल जाता था। प्रमाणरूप में अदिति, उषा, इंद्राणी, इड़ा, भारती, श्रद्धा, सावित्री, गार्गी, घोषा, अपाला आदि देवियों का नाम श्रद्धापूर्वक लिया जाता है। विश्ववारा, कक्षीवती, अपाला आदि को वैदिक ऋषिकाओं के रूप में जाना जाता है। रामायण की कैकेयी जहाँ शस्त्र संचालन में दक्ष थी, वहीं कौशल्या को अनेक मंत्रों का ज्ञान था। विदेहराज जनक की राजसभा में गार्गी एवं याज्ञवल्क्य के संवाद से ज्ञात होता है कि गार्गी जैसी विदुषियों को पुरुषों के समान अध्यात्म विद्या और वैदिक ऋचाओं पर अधिकार था। आत्रेयी ने लव और कुश के साथ वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में शिक्षा प्राप्त की थी। इससे यह भी ज्ञात होता है कि उस समय सह शिक्षा का भी प्रचलन था। अथर्ववेद में कन्या के ब्रह्मचर्य के विषय में विधान प्राप्त होता है, जैसे कि– *ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम।* (अथर्ववेद, 11/6)

इसी प्रकार हारीत ऋषि ने भी अपने संहिता ग्रंथ में स्त्रियों के उपनयन एवं वेदाध्ययन की व्यवस्था प्रतिपादित की है। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि वैदिक काल में स्त्रियों को शिक्षाध्ययन का अधिकार प्राप्त था। परंतु कालांतर में आक्रमणकारियों की दुर्व्यवस्थाओं–अत्याचारों के चलते स्त्रियों के प्रति उदार धारणा में विकृति आई जिससे उनको औपचारिक शिक्षा के अधिकार से वंचित भी रहना पड़ा। आज के समय में स्त्री जनजागृति से पुनः अधिकार प्राप्त करके महत्त्वपूर्ण पदों को सुशोभित कर रही है।

हमारी प्राचीन ज्ञान परंपरा ने व्यक्ति के सर्वांगीण विकास पर ध्यान केंद्रित किया है। संपूर्ण वैदिक वाङ्मय– रामायण, महाभारत, पुराण, स्मृति ग्रंथ, दर्शन, धर्म ग्रंथ,

काव्य, नाटक, व्याकरण तथा ज्योतिष शास्त्र संस्कृत भाषा में ही उपलब्ध होकर इनकी महिमा को बढ़ाते हैं। सुसंस्कृत ज्ञान से ही संस्कारवान समाज का निर्माण होता है। संस्कारों से कायिक, वाचिक, मानसिक पवित्रता के साथ पर्यावरण भी स्वच्छ होता है। बदलते सामाजिक परिवेश और भारतीय मूल्यों के बीच हमारी शिक्षा व्यवस्था को समावेशी बनाना अत्यावश्यक है। यह समावेशी व्यवस्था भारतीय प्राचीन ज्ञान परंपरा को लिए बिना नहीं चल सकती है, क्योंकि एक तरफ तो हम आधुनिकता के दौर की ओर तेजी से अग्रसर हैं, वहीं हमारी संस्कृति में निहित ज्ञान विज्ञान परंपरा को भूलते जा रहे हैं। इस अंधानुकरण में हमारी वही स्थिति हो चुकी है जैसा कि उपनिषदों में कहा गया है कि यदि दृष्टिहीन को रास्ता दिखाने वाला भी दृष्टिहीन हो तो लक्ष्य की प्राप्ति कठिन हो जाएगी। भारतवर्ष ज्ञान भूमि से अलंकृत है जो आधुनिक युग के विज्ञान से भी परे है, जो समस्त ज्ञान प्रेमियों के लिए शोध का विषय है। अब समय है भारत के द्वारा विश्व को दिए गए ज्ञान को संजोकर इसका संवर्धन किया जाए और भारत वर्ष की जनता को संस्कृति, पहचान और प्राप्त ज्ञान से जोड़ा जाए, तभी इसकी उपादेयता सिद्ध होगी। निष्कर्ष रूप में, आधुनिक शिक्षा प्रणाली भारतीय ज्ञान परंपरा का एकीकरण सीखने के लिए अधिक संतुलित और समग्र दृष्टिकोण का वादा करती है। यह न केवल बौद्धिक रूप से सक्षम व्यक्तियों को बल्कि भावनात्मक रूप से परिपक्व, नैतिक और आध्यात्मिक रूप से जागृत नागरिकों को भी पोषित करने का मार्ग प्रदान करती है। ऐसी शिक्षा प्रणाली न केवल व्यक्तिगत शिक्षार्थियों को लाभान्वित करेगी बल्कि अधिक सामंजस्यपूर्ण, दयालु और टिकाऊ दुनिया के निर्माण में भी योगदान देगी।

सहायक ग्रंथ

1. आचार्य लक्ष्मीचंद्र, "भारतवर्षे वैदिककालीना शिक्षापद्धतिः", संजय प्रकाशन, दिल्ली 1997, पृष्ठ 23
2. सुरेंद्र झा, 1997 "प्राचीन शिक्षा पद्धति", आशुतोष प्रकाशन, लखनऊ 2004, पृष्ठ 11
3. लोकमान्य मिश्र "पुरातनी शिक्षा", मृगाक्षी प्रकाशन, लखनऊ, 2011, पृष्ठ 97
4. उर्मिला रस्तोगी, "मनुस्मृति", श्रीमती परिमल पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2005, पृष्ठ 50
5. उमेश चंद्र पांडेय, "याज्ञवल्क्यस्मृति", चौखम्भा संस्कृत ऑफिस सीरीज, वाराणसी, 1967, पृष्ठ 63
6. कपिलदेव द्विवेदी, वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2000, पृष्ठ 65
7. सीताराम जायसवाल, भारतीय शिक्षा का इतिहास तथा समस्याएँ, प्रकाशन केंद्र, लखनऊ, पृष्ठ 112

8. वाई. एस. रमेश, भारतीय संस्कृति, हंसा प्रकाशन, जयपुर, (2007) पृष्ठ 45
9. पी.वी. काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, हिंदी समिति, लखनऊ, 2000, पृष्ठ 152
10. राकेश त्रिवेदी, "भारतीय शिक्षा का इतिहास" ओमेगा पब्लिकेशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ 98
11. संगीता शर्मा, एवं जयशंकर पांडेय, "उच्च शिक्षा के संदर्भ में राष्ट्रीय शिक्षा नीति की विशेषताएँ एवं भारतीय ज्ञान परंपरा के अनुशीलन में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की भूमिका, ह्यूमैनिटीज एंड डेवेलपमेंट, वॉल्यूम 18, अंक–01, जनवरी–जून, 2023, पृष्ठ 11
12. रजनीश कुमार शुक्ल, विश्व हिंदी सम्मेलन स्मारिका, फिजी, हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली, 2023, पृष्ठ 111

❑❑❑

यथार्थ का दर्पण जिस प्रकार जगत की बाह्य परिस्थितियाँ हैं, उसी प्रकार आदर्श का दर्पण मनुष्य के भीतर का मन है।

✍ सुमित्रानंदन पंत

भारतीय ज्ञान परंपरा और लोक संस्कृति की वैज्ञानिकता

✍ डॉ. रजनी प्रताप

मनुष्य ने अपनी जीवनी शक्ति के बल पर विकास के अनेक पड़ाव पार किए हैं। अपनी आदिम स्थिति से यहाँ तक पहुँचने में मनुष्य ने कई प्रकार की विपत्तियों, पीड़ाओं, व्यथाओं को झेलने के साथ–साथ हर्ष, उत्साह, उल्लास के क्षणों को भी जिया है। जीवन की इन स्थितियों से साक्षात्कार होने पर मानव ने अपने जीवन के ढंग को समय और परिस्थितियों के अनुकूल ढालते हुए स्वयं के अस्तित्व की रक्षा की है। परिस्थितियों के अनुरूप अग्रसारित होती इस जय–यात्रा में मानव ने कई क्रियाकलापों को अपने जीवन का अभिन्न अंग बना लिया। मानव ने यह क्रियाकलाप संभवतः अपनी दैहिक स्व–रक्षा और बौद्धिक विकास के लिए अपनाए होंगे, किंतु धीरे–धीरे यह क्रियाकलाप रीति–रिवाज के रूप में हमारे संस्कार बन गए। इन्हीं रीति–रिवाजों से हमारी सांस्कृतिक आधारभूमि तैयार हुई होगी। यह भी संभावना है कि आज हम जिस भारतीय संस्कृति की अवधारणा पर विचार करते हैं, वह इन्हीं रीति–रिवाजों का सम्मिलित रूप है। भौगोलिक परिवेश ने मानव के रहन–सहन, आचार–व्यवहार आदि को निर्धारित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों ने रीति–रिवाजों की निर्मिति के लिए वैचारिक आधारभूमि तैयार की। इसलिए भारत के भौगोलिक–वैविध्य के कारण भारत के विभिन्न क्षेत्रों का अपना विशिष्ट सांस्कृतिक परिवेश है। यही सांस्कृतिक वैशिष्ट्य क्षेत्र–विशेष की लोक संस्कृति है।

लोक संस्कृति वास्तव में किसी भी क्षेत्र के लोगों की जीवन–शैली है। इस जीवन–शैली में खान–पान, त्यौहार, उत्सव, रीति–रिवाज़ और जातीय संस्कार शामिल हैं और यह समस्त घटक वैज्ञानिक और बौद्धिक आधारों पर निर्मित हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा में ज्ञान प्राप्ति के लिए तर्क–पद्धति और कार्य–कारण संबंध सदैव ही महत्त्वपूर्ण रहे हैं। लोक संस्कृति ज्ञान–प्राप्ति के इन्हीं घटकों पर आधारित है। इसीलिए लोक–संस्कृति भारत की समृद्ध ज्ञान परंपरा को प्रमाणित करती हैं। ऋतुओं के अनुकूल खान–पान और त्यौहारों के निर्धारण, सामाजिक मूल्यों का संचार, नैतिक गुणों का विकास और मनुष्यता का प्रसार लोक–संस्कृति में निहित ज्ञान को

ही इंगित करता है। लोक–संस्कृति में वे निधियाँ निहित हैं जो मानव ने पोथियों के ज्ञान से अर्जित नहीं कीं, बल्कि अपने जीवनानुभवों से उन्हें संचित किया है। *लोक–संस्कृति से हमारा अभिप्राय जन–साधारण की उस संस्कृति से है, जो अपनी प्रेरणा 'लोक' से प्राप्त करती थी, जिसकी उत्स भूमि जनता थी और जो बौद्धिक विकास के निम्न धरातल पर उपस्थित थी।*[1] लोक संस्कृति मानव के जन्म से लेकर उसकी मृत्यु और मुत्यु के उपरांत भी उसके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बनी रहती है क्योंकि *व्यक्ति लोक की कोख से जन्मता है, लोक के बिना उसका अस्तित्व नहीं। उसका चिंतन लोक का चिंतन है। लोक चेतना के बिना व्यक्ति चेतना का अस्तित्व नहीं। लोक चेतना ही लोक की समस्त इकाइयों को साधती है। इस लोक चेतना का जितना लोक के कार्यों पर नियंत्रण रहता है, लोक का जीवन उतना ही अधिक सफल होता है।*[2] अतः यह कहा जा सकता है कि लोक संस्कृति व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक की यात्रा में उसके प्रत्येक क्रियाकलाप में अंतर्निहित होती है। आधुनिक युग में लोक–संस्कृति का महत्त्व और भी बढ़ गया है क्योंकि लोक में निर्धारित किए गए मानदंड आज वैज्ञानिक तर्कों पर भी उचित सिद्ध हो रहे हैं। इसीलिए लोक संस्कृति के वैज्ञानिक अध्ययन की भी आवश्यकता है। इससे भारतीय ज्ञान परंपरा में ज्ञान की लोक परंपरा को रेखांकित किया जा सकता है और यह सिद्ध करना भी संभव होगा कि भारत के किसी भी क्षेत्र की लोक संस्कृति के रीति–रिवाज़ केवल बाहरी संरचना का हिस्सा मात्र नहीं हैं, बल्कि मानव की जातीय अस्मिता, बौद्धिक विकास और मानवता का आधार भी हैं।

भारत की विभिन्न लोक–संस्कृतियों में निहित ज्ञान–परंपरा को अभिव्यक्त करने के विभिन्न माध्यम हैं। लोकगीत, लोकनाट्य, लोककथाएँ, परीकथाएँ, दंतकथाएँ, लोक संगीत, विरुदावलियाँ, लोक खेल, रीति–रिवाज़, मेले, व्रत, त्यौहार आदि वे रूप हैं जो मानव जाति द्वारा अर्जित ज्ञान का समाजीकरण करने में सहायक सिद्ध होते हैं। भारत की प्रत्येक दिशा की भौगोलिक संरचना परस्पर विभिन्न है, इसलिए सामाजिक संरचना में भी भिन्नता दिखाई देती है। सामाजिक संरचना की यह भिन्नता सामाजिक मान्यताओं में भी भिन्नता का कारण बनती है, किंतु यह एक आश्चर्यजनक निष्कर्ष है कि सामाजिक मान्यताओं में भिन्नता होने के बावजूद हमारे मानवीय मूल्य लगभग समान हैं। मानवीय मूल्यों में समानता बौद्धिक स्तर की समता का द्योतक है और यही समग्रतः भारत की ज्ञान की परंपरा का आधार है। इस ज्ञान परंपरा में कुछ वैज्ञानिक तथ्य भी निहित हैं।

भारत के प्रत्येक प्रांत की खान–पान की शैली भिन्न है। इसका कारण भौगोलिक भिन्नता और उपलब्ध प्राकृतिक संसाधन हैं, किंतु इसके बावजूद प्रत्येक प्रांत में आहार के नियमों का निर्धारण कुछ वैज्ञानिक आधारों पर किया गया है। भारत में मुख्यतः चार बार नवरात्रि की परिकल्पना विद्यमान है। माघ, चैत्र, आषाढ़ और आश्विन

माह में नौ दिन देवी की उपासना को समर्पित माने जाते हैं, किंतु उत्तर भारत में चैत्र और आश्विन माह की नवरात्रि अधिक प्रचलित हैं। उत्तर भारत की जलवायु के अनुसार ये वे माह हैं जिन्हें ऋतु परिवर्तन का संक्रांति–काल कहा जा सकता है। ऋतु परिवर्तन के इस चक्र में शरीर को विभिन्न व्याधियों से सुरक्षित रखने के लिए खान–पान का विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता होती है। लोकमन ने ऋतु परिवर्तन के इस विज्ञान को सहज ही अपनी जीवन शैली का अंग बना लिया क्योंकि यह विदित है कि भारतीय लोकजीवन में नवरात्रि में नौ दिन के उपवास की परंपरा चली आ रही है। यहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि यह परंपरा लोक उपवास के बरक्स ऋतु अनुरूप आहार के नियम निर्धारित करने की मंशा से अनुप्रेरित रही होगी। उपवास में फलाहार या अपथ्य भोजन का निषेध इसी बात का संकेत है कि बदलते मौसम में खान–पान को नियंत्रित रखना परमावश्यक है। *सूक्ष्मजीव वैज्ञानिकों का मानना है कि ऋतु परिवर्तन के संधिकाल में रोगजनित सूक्ष्मजीवों, जीवाणु और विषाणु की वृद्धि तीव्रता से होती है तथा इस काल में खाने की वस्तुओं, भोजन आदि में सूक्ष्मजीवों द्वारा किए जाने वाले संक्रमण की संभावनाएँ अधिक रहती हैं। ऐसा दूषित भोजन रोगों को निमंत्रण देता है। यदि इस समय पर हम अपनी इंद्रियों को नियंत्रित कर कुछ दिनों तक शुद्धता, पवित्रता और यथासंभव उपवास का पालन करते हैं तो निःसंदेह हमारा शरीर स्वस्थ और निरोगी रह सकता है।*[3] लोक ने इस वैज्ञानिक तथ्य को समझते हुए समाज में इस बात को प्रचारित करने हेतु इसे धार्मिक अनुष्ठान के रूप में स्थापित किया।

इसके अतिरिक्त भारतीय खाद्य शैली में नीम, करेला, लौकी, सहजन, तिल, अलसी, कद्दू के बीज, सत्तू, नारियल, मोटे अनाज आदि किसी न किसी रूप में सम्मिलित हैं। आधुनिक आहार विज्ञान भारतीय खाद्य परंपरा में सम्मिलित इन समस्त खाद्य पदार्थों के महत्त्व को रेखांकित कर रहा है। आज जिस कद्दू के बीजों को 'सुपरफूड' की श्रेणी में रखा गया है, उसके संबंध में पंजाब में यह लोक कहावत बहुत पहले से ही चली आ रही है–

कद्दुआं दे बी, घोट घोट पी
भांडें नहीं लभदे, ते छितरां च पी

अर्थात् कद्दू के बीज पोषकीय तत्त्वों से इतने भरपूर हैं कि उनको घोटकर पी लेना चाहिए और यदि उनको पीने के लिए बर्तन का अभाव हो तो जूते में डालकर ही पी लेना चाहिए। इसी प्रकार गुड़ और इमली भारतीय खान–पान शैली का अभिन्न अंग है। यह दोनों ही खाने को पचाने में सहायक हैं। भारत में इस प्रकार के कई उदाहरण मिल जाएँगे जो भारतीय खाद्य शैली की वैज्ञानिकता को सिद्ध करते हैं। भारतीय मनीषा में व्यावहारिक अनुभवों से प्राप्त ज्ञान की आधारभूमि इतनी समृद्ध है कि

आधुनिक विज्ञान में आज उसी के आधार पर शोधकार्य किया जा रहा है। भारत की लोक संस्कृति में केवल महत्त्वपूर्ण खाद्य पदार्थों का ही वर्णन नहीं है, बल्कि बहुत से खाद्य पदार्थों को ऋतु, आयु और बीमारी के अनुरूप त्याज्य और वर्जित भी घोषित किया गया है। यह तथ्य भी भारतीय ज्ञान परंपरा की समृद्धि का द्योतक है। भारत में खान–पान की इस शैली का आज भी यथोचित अनुसरण किया जा रहा है क्योंकि इस परंपरा के पीछे एक ठोस वैज्ञानिक आधार क्रियाशील है। इसीलिए लोकजीवन में आज भी लोक की इस वैज्ञानिकता को सहज ही स्वीकार किया जा रहा है।

भारत में लोक संस्कृति में प्रकृति को विशेष महत्त्व दिया गया है। वास्तव में भारत में समस्त सामाजिक संरचना ही प्रकृति पर आधारित है। भारत के व्रत, त्यौहार, जीवन–शैली आदि के केंद्र में प्रकृति ही है। कृषि आधृत समाज होने के कारण भारत के अधिकतर त्यौहार फसल की बटाई और कटाई के आधार पर ही निर्धारित किए गए है। बीज के अंकुरित होने, फसल के पकने तथा कटने तक की प्रक्रिया में प्रकृति का विशेष महत्त्व है। वैशाखी, बिहु, ओणम, एरूवाक पुन्नम, पोंगल आदि त्यौहार प्रकृति के प्रति समर्पण भाव के प्रतीक हैं। भारतीय जनचेतना में प्रकृति एक स्थायी तत्व के रूप में अंतर्निहित है क्योंकि वह इस तथ्य से भलीभाँति परिचित है कि प्रकृति में विद्यमान प्रत्येक तत्व मानव के विकास में सहायक है और प्रकृति के अभाव में जीवनयापन असंभव है। इसीलिए भारत के लोकाचार में नदी, वृक्ष, पौधे, फल, फूल, विभिन्न प्रकार के जीव आदि सभी को जीवन का अभिन्न अंग माना गया है। भारत में तुलसी को पवित्र पौधे के रूप में इसीलिए विशेष महत्त्व दिया गया क्योंकि तुलसी औषधीय गुणों से भरपूर है। मानव जीवन में उसकी उपादेयता इतनी अधिक है कि लोक ने उसे पूजनीय बनाकर ग्रहण किया। *ज्वर और खाँसी से पीड़ित व्यक्ति को तुलसी का काढ़ा पिलाया जाता है। डॉक्टरों का कहना है कि जहाँ तुलसी का पौधा लगाया जाता है, वहाँ मच्छर नहीं रह सकते अर्थात् वे नष्ट हो जाते हैं। अब तो तुलसी का उपयोग टी. बी. की दवा के लिए भी किया जाने लगा है। वैद्यों के अनुसार सैकड़ों रोगों में तुलसी की पत्तियों का प्रयोग सफल सिद्ध हुआ है।*[4] यह कथन इसी तथ्य को प्रमाणित करता है कि भारत में पौधों के औषधीय ज्ञान की परंपरा बहुत प्राचीन है। भारत में पीपल, बरगद, नीम, सहजन, केला, नारियल आदि पेड़ों को विशेष महत्त्व दिया गया है, पीपल का महत्त्व तो आधुनिक विज्ञान ने भी सिद्ध किया है कि यह एक ऐसा पेड़ है जो वातावरण में चौबीस घंटे ऑक्सीजन का संचार करता है और कार्बन डाईआक्साइड का अवशोषण करता है। इसीलिए भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित वनस्पति–ज्ञान आधुनिक वनस्पति–ज्ञान के लिए नींव का काम कर रहा है। भारत की यह ज्ञान परंपरा लोक परंपराओं के रूप में आज भी चली आ रही है। भारतीय लोकमानस ने इन तथ्यों को तर्क के आधार पर न केवल सिद्ध किया, अपितु

इन्हें अपनी जीवनशैली का आधार बनाकर लोकजीवन में निरंतर इस ज्ञान को प्रवाहित भी कर रहा है।

भारतीय लोक संस्कृति में सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि लोक संस्कृति निरंतर मानवीय मूल्यों के संचरण का कार्य कर रही है। हमारी लोक परंपराएँ केवल आधुनिक विज्ञान का ही आधार नहीं बन रहीं, अपितु एक अच्छा मनुष्य बनने के लिए आवश्यक गुणों को भी पीढ़ी–दर–पीढ़ी संचरित कर रही हैं और इस कार्य के लिए लोक को किसी विशेष गतिविधि, कार्यक्रम या फिर औपचारिक शिक्षा की आवश्यकता नहीं है। वह तो अपने दैनिक क्रियाकलापों में ही इन्हें ग्रहण करता और भावी पीढ़ी तक संचरित करता है। भारतीय लोकजीवन में बच्चों को नैतिक गुण सिखाने का कार्य तो बचपन से ही प्रारंभ कर दिया जाता है। लोक साहित्य के विभिन्न रूपों के माध्यम से ऐसे गीत और कथाएँ गढ़ी गईं हैं जिनसे बच्चे सहज ही आदर्श जीवन के गुण सीख लेते हैं। 'पंचतंत्र', 'हितोपदेश', 'जातक कथा' में निहित कथाएँ भारतीय बालमन को आगामी भविष्य में एक आदर्श बालक बनने के लिए प्रेरित करती हैं। इसी के साथ–साथ लोकनाटकों जैसे रामायण, महाभारत के माध्यम से भी भारत की उन प्राचीन परंपराओं के दर्शन होते हैं जो आदर्श मानव जीवन के आधारबिंदु हैं। बच्चों के मन पर यह विशेष प्रभाव डालते हैं। इसके अतिरिक्त बच्चों द्वारा गाए जाने वाले गीतों में उन्हें उत्थान के मार्ग पर अग्रसरित होने की प्रेरणा मिलती है। जैसे बच्चों का सर्वप्रचलित गीत है–

पोषम पा भई पोषम पा/डाकिये ने क्या किया
सौ रुपये की घड़ी चुराई/फिर भी उसको शर्म न आई
अब तो जेल में आना पड़ेगा/जेल की रोटी खानी पड़ेगी
जेल का पानी पीना पड़ेगा/अब तो जेल में आना पड़ेगा।

यह गीत केवल एक बालगीत नहीं है, अपितु आचरण की शुद्धता के लिए निर्धारित किए गए एक नियम के प्रति बालक को सचेत करने की प्रक्रिया भी है। इसमें बच्चे को एक डाकिये का संदर्भ बताकर यह बताने की कोशिश की जा रही है कि हमारे समाज का एक महत्त्वपूर्ण पात्र डाकिया भी दंड प्राप्त करता है, जब वह चोरी जैसा अनुचित कार्य करता है। इसी प्रकार– *कोटला छपाकी जुम्मे रात आई है/जो भी आगे पीछे देखे/उसकी शामत आई है।* यह बच्चों द्वारा एक खेल खेलते समय गाया जाने वाला लोकगीत है, जिससे उनको शिक्षा मिलती है। जीवन में बेईमानी करने वाले की जुम्मे रात वाले दिन अवश्य शामत आती है। अतः बच्चे को एक जीवनमूल्य सिखाने के लिए लोक ने किसी ग्रंथ का सहारा न लेकर एक गीत को माध्यम बनाया है। इसी प्रकार खासी (मेघालय) में 'चांद में दाग' नामक लोककथा प्रचलित है कि *चाँद और सूरज भाई–बहन थे। दोनों भाई–बहनों में बहुत स्नेह था। बड़े होने पर चाँद को संसार की सबसे सुंदर स्त्री यानि अपनी बहिन से विवाह करना*

था। जब यह बात सूरज को पता चली, तो वह अपने भाई से बहुत नाराज़ हुई। सूरज ने गुस्से में जलती राख चाँद के चेहरे पर फेंक दी। चाँद का चेहरा जल गया। आज तक उसके चेहरे पर वह दाग दिखाई देता है। अपनी ही बहन पर कुदृष्टि रखने के कारण वह आज तक उससे मुँह छिपाता फिर रहा है। यही कारण है कि जब सूर्यास्त होता है, तब ही चाँद निकलता है।[5] इस लोककथा के माध्यम से बच्चों में स्त्री के प्रति आदर भाव का मूल्य सहज ही संचरित कर दिया जाता है।

इसी प्रकार विभिन्न प्रांतों के लोक साहित्य में ऐसी बहुत सी कथाएँ और गीत प्रचलित हैं, जो समाज में मनुष्यता की पक्षधरता को प्रमाणित करते हैं और बच्चों को इन मानवीय मूल्यों से परिचित करवाते हैं। *देश के कोने–कोने में विद्यमान लोक संस्कृति के जीवन–रस ने संपूर्ण भारतीय बाल साहित्य को जीवंत बनाया है। तमिलनाडु के चोल राजाओं की कहानियाँ हों या आंध्र के सातवाहन नरेशों की कथाएँ, मदुरै के पांड्य नरेशों के किस्से हो या राजस्थान के राजपूतों की गौरव–गाथाएँ, महाराष्ट्र के शिवाजी की साहसिक कहानियाँ हों या पंजाब के गुरुनानक की बोध कथाएँ, सभी भारतीय बाल साहित्य में एक अंतःसूत्र की भाँति विद्यमान हैं।*[6] ये भारतीय संस्कृति में ज्ञान परंपरा के प्रवाह की दिशा–निर्धारक भी हैं। बच्चों में ज्ञान का प्रवाह कैसे किया जाए, इस दिशा में ये कथाएँ, गीत, लोकनाटक आदि लोक संस्कृति का एक सद्प्रयास जान पड़ते हैं। भारतीय संस्कृति के गौरव को बच्चों तक पहुँचाने में यह साहित्य विशेष भूमिका का निर्वहन कर रहा है। लोक प्रचलित मुहावरे, लोकोक्तियाँ और बुझारतें भी भारतीय ज्ञान की समृद्ध परंपरा का सशक्त प्रमाण हैं।

इसके अतिरिक्त खगोलविज्ञान की लोक परंपरा ने खगोल की गुत्थियाँ सुलझाने में आधुनिक खगोलशास्त्र को आधारभूमि प्रदान की है। *आकाश में अनेक पिंड विद्यमान हैं, जिनके विषय में अनेक लोकविश्वास प्रचलित हैं। इन पिंडों में सबसे प्रधान सूर्य है।... इसी सूर्य के चारों ओर सूर्य–परिवार के अन्य सदस्य जैसे पृथ्वी, चंद्रमा, मंगल, शनि और वृहस्पति आदि चक्कर लगाया करते हैं अर्थात् सूर्य की परिक्रमा करते हैं। सौर परिवार के सदस्यों के अतिरिक्त आकाश में सप्तर्षि मंडल की भी स्थिति है। इस मंडल में बादल, विद्युत, इंद्रधनुष, नक्षत्र तथा ध्रुव एवं अगस्त्य आदि तारों को भी स्थान प्राप्त है। इन सभी उपर्युक्त आकाशीय पिंडों के संबंध में साधारण जनता में अनेक लोक विश्वास प्रचलित हैं... ।*[7]

इससे यह स्पष्ट होता है कि लोक इन आकाशीय अवधारणाओं से भलीभाँति परिचित है, बल्कि केवल परिचित ही नहीं है, वह इनकी निरंतर परिवर्तित होती स्थितियों, इनके महत्त्व, इनके गुण–दोषों, प्रभावों–दुष्प्रभावों का ज्ञान भी रखता है। भारत में किसी भी मांगलिक कार्य के समय नौ ग्रह पूजन की क्रिया चिरकाल से ही चलती आ रही है जिसमें सूर्य को विशेष महत्त्व दिया गया है। अतः यह तो स्पष्ट है कि लोक चेतना में यह तथ्य तो बहुत पहले से ही प्रचलित था कि पृथ्वी का एक

खगोलीय अस्तित्व है, जिसमें सूर्य सहित नौ ग्रह हैं, तभी तो हमारे धार्मिक अनुष्ठानों में इन ग्रहों को महत्त्व दिया गया। ज्योतिष शास्त्र भी लोक में प्रचलित विभिन्न ग्रहों की दशाओं पर आधारित हैं। भारत के व्रत, त्यौहार, उत्सव और विभिन्न समयों पर किए जाने वाले मांगलिक कार्यों का समय निर्धारण ग्रहों की चाल और दिशाओं के आधार पर निर्धारित किया जाता है। भारत के प्रत्येक समुदाय में ब्रह्मांड के निर्माण के संबंध में विभिन्न मत प्रचलित हैं। ब्रह्मांड में विभिन्न नक्षत्रों के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों से हमारा लोक भलीभाँति प्रचलित है। चंद्र–ग्रहण और सूर्य–ग्रहण की अवधारणा हमारे लिए नयी नहीं है, यहाँ तक कि इनके नकारात्मक प्रभावों से बचने के लिए लोक में कुछ मत भी प्रचलित हैं। हमारे वार्षिक कैलेंडर में पूर्णिमा, अमावस्या, महीनों का निर्धारण इन ग्रहों और नक्षत्रों के आधार पर ही होता है और इसके लिए लोक में एक निश्चित प्रक्रिया निर्धारित है। लोक को किसी वैज्ञानिक के पास जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। लोक सूर्य और चंद्रमा की स्थितियों से स्वतः ही अपने वैज्ञानिक उपादानों से इनका अंदाज़ा लगा लेता है। इसी प्रकार हमारी पुरानी पीढ़ी सूर्य के प्रकाश से बनी परछाई से ही समय का अंदाज़ा लगा लिया करती थी। लोक में प्रचलित यह समस्त क्रियाकलाप हमारे बौद्धिक विकास की धरोहर को संकेतित करते हैं। भारतीय जनमानस में ज्ञान–प्राप्ति की इच्छा या विज्ञान की अवधारणा किसी निश्चित परिपाटी का अनुसरण करने को बाध्य नहीं है। बंद कमरों वाली प्रयोगशालाओं की अपेक्षा लोक ने खुले आकाश के नीचे अपने प्रयोग किए और प्राप्त हुए निष्कर्षों को आवश्यकतानुरूप अपनी जीवन–शैली का आधार बना लिया। भारतीय ज्ञान–परंपरा में लोक–संस्कृति ने अपना विशेष योगदान दिया है। यहाँ यह भी कहना अनुचित न होगा कि भारत की ज्ञान–परंपरा को अगली पीढ़ियों तक प्रवाहित करने का श्रेय लोक संस्कृति को ही जाता है। लोक में निहित ऊपर वर्णित सभी विचार इसी ओर संकेत करते हैं कि लोक के पास आधुनिक विज्ञान की भाँति कोई उपकरण और प्रयोगशालाएँ नहीं थीं, किंतु उन्होंने अपने जीवन के व्यावहारिक अनुभवों से इस प्रकार का ज्ञान अर्जित किया जो आधुनिक विज्ञान का भी पथप्रदर्शक सिद्ध हो रहा है। इसलिए भारतीय ज्ञान परंपरा को समझने के लिए भारतीय लोक–संस्कृति पर दृष्टिपात करना अनिवार्य है। लोक ने ज्ञान की जो विरासत हमें प्रदान की है, हमें उसका न केवल विश्लेषण करना है, अपितु अपनी भावी पीढ़ियों तक भी उस ज्ञान को पहुँचाने का प्रयास करना होगा। भारतीय ज्ञान–परंपरा का सातत्य इसी संचार द्वारा नैरंतर्य की स्थिति में बना रहेगा। भारतीय ज्ञान–परंपरा के सातत्य के लिए लोक–संस्कृतियों की भूमिका को रेखांकित करना परमावश्यक है क्योंकि लोक–संस्कृति में भारतीय परंपरा के मूलभूत आधार और सिद्धांत निहित हैं जिन्हें लोक ने अपने जीवनानुभवों के तर्क की कसौटी पर कसकर, परखकर फिर अपने जीवन का अंग बनाया है।

संदर्भ ग्रंथ

1. सुखविंदर कौर बाठ, संस्कृति का लोकपक्ष, शिवहरि प्रकाशन, दिल्ली, पृ.–18
2. सुनीता तिवारी, समकालीन हिंदी निबंधों में लोक चेतना, हिंदी अनुशीलन, सितंबर, 2008, पृ.–35
3. दैनिक ट्रिब्यून, नवरात्र उपवास और अनुष्ठान का वैज्ञानिक आधार (आलेख), राजेंद्र कुमार शर्मा, मार्च 20, 2023
4. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक संस्कृति की रूपरेखा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2014, पृ.–79
5. रमणिका गुप्ता (संपा. एवं संकलन), पूर्वोत्तर आदिवासी सृजन मिथक एवं लोककथाएँ, नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 2013, पृ.– 54
6. उषा यादव, राजकिशोर सिंह (संपा.), हिंदी बाल साहित्य और बाल विमर्श, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ.–38
7. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक संस्कृति की रूपरेखा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2014, पृ.–48

❑❑❑

साहित्य राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई नहीं बल्कि उसके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है।

✍ मुंशी प्रेमचंद

भारतीय ज्ञान परंपराः एक वैज्ञानिक परंपरा

✍ प्रो. संध्या वात्स्यायन

भारतीय ज्ञान परंपरा सार्थक तथा बहुआयामी ज्ञान–विज्ञानसम्मत प्रणाली है जो कि वर्षों के अथक प्रयास द्वारा परिपूर्ण एवं विकसित हुई है। यह परंपरा वेद–वेदांग, संहिताओं, उपनिषदों, श्रुतियों, स्मृतियों, पुराणों, महाकाव्यों और अन्य प्राचीन भारतीय ग्रंथों पर आधारित है। इस परंपरा में दर्शन, अध्यात्म, विज्ञान, गणित, चिकित्सा, खगोल, भूगोल, पर्यावरण आदि नाना प्रकार के विषयों का अध्ययन–अध्यापन शामिल है। भारतीय ज्ञान परंपरा की विशेषता है कि यह ज्ञान को एक संपूर्ण और एकीकृत रूप में प्रस्तुत करती है जो जीवन के समस्त क्रियाकलापों के लिए अति आवश्यक है।

हमारे प्राचीन आचार्यों ने विज्ञानसम्मत विषयों के अनुसंधान को सदैव ही प्रोत्साहन दिया था ताकि मानवीय जन–जीवन का कल्याण निश्चित हो सके। उन्होंने विज्ञान को हमेशा प्रकृति के साथ जोड़े रखा जिससे पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा मिल सके। प्राचीन भारतीय समाज मुख्यतः कृषि प्रधान था जिसमें कृषि को जीवन का मूलभूत आधार माना जाता था। कृषि के अलावा पशुपालन भी एक महत्त्वपूर्ण गतिविधि थी। उस समय समाज में ऋतुओं के अनुसार फसलों की बुवाई और कटाई की जाती थी और जल संचयन के लिए तालाब, नहरें और कुओं का निर्माण किया जाता था। समाज की बुनियादी आवश्यकताओं को केंद्र में रखकर ही प्राचीन आचार्यों ने उत्कृष्ट एवं उत्तम ग्रंथों का सृजन किया जिनमें आचार्य पराशर का ग्रंथ 'कृषिशास्त्रम्' तथा आचार्य कश्यप का ग्रंथ 'कृषिपद्धति' उल्लेखनीय हैं। भारतवर्ष में खाद्यान्न को उपजाने के साथ–साथ इसके उपयोग पर भी निरंतर शोध किए गए जिसके फलस्वरूप विभिन्न स्वाद के व्यंजनों का आविष्कार भी हुआ। भारतीय संस्कृति में जनमानस अपने इष्टदेव को छप्पन प्रकार के व्यंजन अर्पित कर आनंदित होते हैं। इतने अधिक स्वादिष्ट व्यंजनों का निर्माण भारत से बाहर दुर्लभ ही है। भारतीयों की शाकाहारी प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप ही खाद्यान्न के उत्पादन तथा उनके विविध रूपों का विकास संभव हुआ है जिसके पीछे वैज्ञानिकता दृष्टिगोचर होती है। प्राचीन आचार्य इससे भली–भाँति अवगत थे कि कृषि के लिए प्रकृति एवं वर्षा की समझ आवश्यक है इसीलिए उन्होंने वर्षा को समझने के लिए वैज्ञानिकतापूर्ण आयाम का

मार्ग अपनाते हुए जनमानस को वर्षा के महत्त्व का पाठ पढ़ाया था। ऋषि पराशर के अनुसार—

युग्माजगोमत्स्यगते शशाङ्के रविर्यदा कर्कटकं प्रयाति।
जलं शताढं हरिकार्मुकेऽर्द्ध वदंति कन्यामृगयोरशीतिम्।।[1]

चंद्रमा के मिथुन, मेष, वृष एवं मीन राशि में होने पर जब सूर्य कर्क राशि पर जाता है तो जल वृष्टि सौ आढक होती है। सूर्य के धनु राशि में होने पर उसकी आधी अर्थात् पचास आढक होती है। सूर्य के कन्या एवं सिंह राशि में होने पर अस्सी (आढक) जल का होना निश्चित है। खगोल विज्ञान का अनुसरण करने के पश्चात ही ऋषि पराशर ने वर्षा के संदर्भ में इन तथ्यों को अपने ग्रंथ में प्रस्तुत किया है।

प्राचीन भारत में जल की समस्या एक महत्त्वपूर्ण चुनौती थी इसीलिए इसका समाधान करने के लिए अलग—अलग विधियों का उपयोग किया जाता था। उस समय जल संरक्षण, संचयन और प्रबंधन के लिए कई तकनीकों का विकास किया गया था। प्राचीन भारतीय ग्रंथों में जल संचयन और प्रबंधन के महत्त्व का सार्थक विवरण उपलब्ध है। जल संचयन के लिए तालाब और सरोवर बनाए जाते थे जो वर्षा के जल को इकट्ठा करने और जल की कमी के समय इसका उपयोग करने में मदद करते थे। नहरें और बाँध बनाए जाते थे जो नदियों से जल को खेतों तक पहुँचाने में मदद करते थे। इसके साथ ही कुएँ और बावड़ियाँ जल संचयन के महत्त्वपूर्ण स्रोत थे जो भूजल को इकट्ठा करने और उपयोग करने में मदद करते थे। इन समाधानों के अलावा प्राचीन भारतीय समाज में जल का संरक्षण और प्रबंधन करने के लिए सामाजिक और सांस्कृतिक प्रयास भी किए जाते थे। जल के महत्त्व और संरक्षण के बारे में जागरूकता फैलाई जाती थी तथा जल संचयन और प्रबंधन के लिए सामूहिक प्रयास किए जाते थे और इन समाधानों को वैज्ञानिक रीति द्वारा ही संपन्न किया जाता था।

न स्यादित्येव मुनिभिः सौख्यं त्विति विनिश्चितम्।
अतः सर्वप्रयत्नेन भूपालो रक्षणव्रती।।[2]

आचार्य कश्यप मानते थे कि जलाशयों, जलस्रोतों के अभाव में पेयजल का प्रबंध नहीं होगा। जल के अभाव में न तो सांध्यकर्म होगा और न ही स्नान हो सकता है, फिर भला पौधों की वृद्धि कैसे हो सकती है? मुनियों के अनुसार यह निश्चित है कि पानी के अभाव में सुख की सृष्टि नहीं होती। अतः प्रजा की रक्षा का संकल्प करने वाले शासक को चाहिए कि वह सर्वप्रयत्नपूर्वक जलस्रोतों का भी विकास करें। आचार्य कश्यप ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाते हुए अपने ग्रंथ में कृषि के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की जैसे कि मिट्टी की पहचान तथा उसकी गुणवत्ता, बीजों की चयन—प्रणाली, फसलों की बुवाई और कटाई की सार्थक विधियाँ और जल संचयन एवं प्रबंधन। उनके अनुसार कृषि की सफलता के लिए मिट्टी की गुणवत्ता बहुत महत्त्वपूर्ण है। उनके द्वारा मिट्टी के विभिन्न प्रकारों का वर्णन किया है और बताया गया कि कौन सी

मिट्टी किस प्रकार की फसल के लिए उपयुक्त है। आचार्य कश्यप ने बीजों के चयन के महत्त्व को भी उजागर किया है जिसके अनुसार अच्छे बीजों का चयन फसल की गुणवत्ता और उत्पादकता को निर्धारित करता है। उन्होंने बीजों को संग्रहीत करने और उनका उपचार करने के तरीकों का भी वर्णन किया है जो उनके वैज्ञानिक दृष्टिकोण की ओर ही इंगित करता है।

कृषि प्रणाली और पद्धति को केंद्र में रखकर ही प्राचीन भारतीय आचार्यों ने अपने अमूल्य ग्रंथों का सृजन किया था। वर्षा के लिए वायु–प्रवाह के ज्ञान को समझते हुए आचार्य पराशर लिखते हैं–

सौम्यवारुणयोर्वृष्टिरवृष्टिः पूर्वयाम्ययोः,
निर्वाते वृष्टिहानिः स्यात्संकुले संकुलं जलम्।[3]

उत्तर या पश्चिम दिशा की हवा वृष्टि एवं पूर्व तथा दक्षिण की हवा अवृष्टि की सूचक है। हवा न चलने पर वृष्टि की हानि होती है एवं अव्यवस्थित वायुप्रवाह होने पर वृष्टि भी अव्यवस्थित होती है। इससे पता चलता है कि उस समय के आचार्यों को वायु–प्रवाह का अच्छा ज्ञान था जिसका अनुसरण करके उन्होंने वर्षा के अनुमान की विवेचना की थी। कृषि के लिए वर्षा, मिट्टी, बीज, जल–संरक्षण आदि का ज्ञान तथा उचित व्यवस्था का होना आवश्यक है जो कि विज्ञान तंत्र के बिना असंभव है। आचार्य कश्यप के अनुसार–

कुल्याजलसमृद्धिं च वीक्ष्य धीमान् कृषीवलः।
कृषिं प्रकल्पयेत् युक्तया स्थल सम्पत्क्रमात् भुवि।।[4]

बुद्धिमान किसान अपनी कृषि की गतिविधियों को चतुराई से योजनाबद्ध करता है। उसे बादलों के आगमन, जलवर्षण, अगाध जलस्रोतों–जलाशयों और नहरों से पर्याप्त सिंचाई और भूमि के प्रकार (उपजाऊ, अनुपजाऊ, ऊसर, बंजर आदि) को ध्यान में रखकर कृषि करनी चाहिए।

कृषि की अतिरिक्त बुनियादी चुनौतियों में स्वास्थ्य एवं चिकित्सा संबंधी समस्याएँ आती हैं। प्राचीन भारतीय परिवेश में आयुर्वेद, यूनानी और सिद्ध जैसी अलग–अलग प्रकार की चिकित्सा पद्धतियाँ प्रचलित थीं। भारतीय समाज चिकित्सा पद्धति में वैज्ञानिक रीति पर आधारित था जिसमें जड़ी–बूटियों और प्राकृतिक उपचारों का व्यापक उपयोग किया जाता था। प्राचीन भारत में चिकित्सकों के प्रशिक्षण और योग्यता के मानक निर्धारित करने के लिए गुरुकुल हुआ करते थे। चिकित्सक गुरु–शिष्य परंपरा के माध्यम से प्रशिक्षित होते थे। इसके लिए गहन शोध और वैज्ञानिकता की आवश्यकता होती थी जिसके लिए विद्वानों का एकत्र होना और स्वास्थ्य समस्या के समाधान पर विचार–विमर्श करना आवश्यक होता था जिसका उल्लेख चरक–संहिता में भी मिलता है जिसमें बताया गया है कि अंगिरा, जमदग्नि, वसिष्ठ, कश्यप, भृगु, आत्रेय, गौतम, सांख्य, पुलस्त्य, नारद, असित, अगस्त्य, वामदेव,

मार्कंडेय, आश्वलायन, पारीक्षि, भिक्षु, आत्रेय, भरद्वाज, कपिञ्जल, विश्वामित्र, आश्वरथ्य, भार्गव, च्यवन, अभिजित, गार्ग्य, शांडिल्य, कोण्डिन्य, वार्क्षि, देवल, गालव, साङ्कृत्य, वैजवापि, कुशिक, बादरायण, बडिश, शरलोमा, काप्य, कात्यायन, काङ्कायन, कैकशेय, धौम्य, मारीचि, शर्कराक्ष, हिरण्याक्ष, लोकाक्ष, दैङ्गि, शौनक, शाकुनेय, मैत्रेय, गैमतायनि, वैखानस, बालखिल्य और अन्य ब्रह्मज्ञान, यम, नियम और तप के तेज से चमकते हुए, आहुति से उज्ज्वल, अग्नि के समान तेजस्वी महर्षि लोग वहाँ उपस्थित हुए और आयुर्वेद पर विचार–विमर्श करने लगे।[5] 'चरक–संहिता' का यह उद्धरण प्रमाणित करता है कि उपर्युक्त सभी ऋषि उस समय के महान वैज्ञानिक थे जो शुद्ध वैज्ञानिक रीति से आयुर्वेद का मंथन करने के लिए एकत्रित हुए थे।

भारतीय इतिहास में अगर प्रथम चिकित्सक का श्रेय किसी को है तो वो आचार्य सुश्रुत हैं। उनका अमूल्य ग्रंथ 'सुश्रुत संहिता' आयुर्वेद के प्राचीन ग्रंथों में से एक है जो शल्य चिकित्सा के साथ–साथ चिकित्सा के विभिन्न स्तरों पर विस्तृत जानकारी प्रदान करता है। 'सुश्रुत संहिता' में आठ मुख्य विभाग हैं जिन्हें 'स्थान' कहा जाता है जो चिकित्सा संबंधी विभिन्न विषयों के ज्ञान पर आधारित है। 'सुश्रुत संहिता' के मुख्य विभाग में 'सूत्र स्थान' है जिसमें आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धांतों और चिकित्सा के सामान्य पहलुओं पर विस्तृत विवेचना की गई है, फिर 'निदान स्थान' जिसमें नाना प्रकार के रोगों के कारणों और लक्षणों का वर्णन किया गया है। उसके बाद 'शरीर स्थान' जिसमें मानवीय शरीर की संरचना और शरीर विज्ञान को समझा जा सकता है। 'चिकित्सा स्थान' नामक विभाग में विभिन्न रोगों के उपचार और चिकित्सा पद्धतियों का बहुत ही ज्ञानवर्धक वर्णन किया गया है। इसके बाद 'कल्प स्थान' नामक विभाग आता है जिसमें औषधियों के निर्माण और उपयोग पर गहन अध्ययन प्राप्त होता है। अंत में 'उत्तर स्थान' विभाग आता है जिसमें विभिन्न रोगों के उपचार और चिकित्सा पद्धतियों का वर्णन किया गया है जिसमें शल्य चिकित्सा प्रमुख है। 'सुश्रुत संहिता' में शल्य चिकित्सा के उपकरण, तकनीक, प्रक्रियाएँ आदि विभिन्न प्रकार के पहलुओं पर विस्तृत जानकारी दी गई है। यह ग्रंथ विभिन्न रोगों के उपचार और चिकित्सा पद्धतियों यथा आयुर्वेदिक औषधियाँ, पंचकर्म चिकित्सा और अन्य चिकित्सा पद्धतियों का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। 'सुश्रुत संहिता' में मानवीय शरीर की संरचना और शरीर विज्ञान पर भी विचार–विमर्श किया गया है जिसमें विभिन्न अंगों और प्रणालियों का वृहद् वर्णन किया गया है। आयुर्वेद की उत्पत्ति और विकास में 'सुश्रुत संहिता' एक महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है और आयुर्वेदिक चिकित्सा शिक्षा और चिकित्सकों के लिए एक महत्त्वपूर्ण संसाधन है जो कि वैज्ञानिक धरातल पर आधारित है और आयुर्वेदिक चिकित्सा को एक तर्कसंगत और प्रभावी पद्धति सिद्ध करती है।

आयुर्वेद में आचार्य सुश्रुत के उपरांत आचार्य चरक का स्थान आता है। उनका ग्रंथ 'चरक संहिता' आयुर्वेद के प्राचीन ग्रंथों में से एक है जो चिकित्सा के अलग–अलग पहलुओं पर सार्थक जानकारी प्रदान करता है। 'चरक संहिता' में आठ मुख्य विभाग हैं जिन्हें 'स्थान' कहा जाता है तथा इनमें विभिन्न विषयों पर गहन विचार–विमर्श किया गया है। इस ग्रंथ में सबसे पहले 'सूत्र स्थान' आता है जिसमें आयुर्वेद के मूल सिद्धांतों और चिकित्सा की विधियों का वर्णन मिलता है। उसके उपरांत 'निदान स्थान' नामक विभाग आता है जिसमें अलग–अलग प्रकार के रोगों के कारणों तथा लक्षणों का वर्णन किया गया है। तत्पश्चात 'विमान स्थान' आता है जिसमें रोगों के निदान और उपचार के लिए अलग–अलग पद्धतियों द्वारा समाधान प्रस्तुत किया गया है। 'शरीर स्थान' में मानवीय शरीर की संरचना और शरीर विज्ञान पर अनुसंधान किया गया है। 'इंद्रिय स्थान' में इंद्रियों के कार्यों और रोगों पर गहन अध्ययन किया गया है। तत्पश्चात 'चिकित्सा स्थान' नामक विभाग आता है जिसमें विभिन्न रोगों के उपचार और चिकित्सा पद्धतियों का वर्णन किया गया है। 'कल्प स्थान' में औषधियों की तैयारी और उपयोग पर विस्तृत सामग्री प्राप्त की जा सकती है तथा अंत में 'सिद्धि स्थान' आता है जिसमें चिकित्सा की विभिन्न विधियों एवं सफल चिकित्सक के आवश्यक तत्त्वों का वर्णन प्रस्तुत है। चरक संहिता आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धांतों का एक शुद्ध वैज्ञानिक ग्रंथ है जिसका उपयोग तत्कालीन समाज से लेकर आज तक आयुर्वेदिक चिकित्सा में रोगों के निदान और उपचार करने में सक्षम है। उत्तम भोजन को वैज्ञानिक दृष्टि से पारिभाषित करते हुए आचार्य चरक कहते हैं–

इष्ट–वर्ण–गन्ध–रस–स्पर्श विधिविहितमन्नपानं प्राणिनां प्राणिसंज्ञकानां प्राणमाचक्षते कुशलाः, प्रत्यक्ष फलदर्शनात, तदिन्धना ह्यन्तराग्नेः स्थितिः; तत् सत्त्वमूर्जयति, तच्छरीर–धातु–समूह–बल–वर्णेन्द्रियप्रसादकरं यथोक्तमुपसेव्यमानं, विपरीतमहिताय संपद्यते।।[6]

प्रिय या हितकर वर्ण, गंध, रस, स्पर्शयुक्त विधिपूर्वक सेवन किया अन्न–पान प्राणिमात्र का प्राण है। सब प्राणियों के प्राण स्थिर रखने के लिए आहार मुख्य कारण है। यह बात प्रत्यक्ष प्रमाण से भी सिद्ध है। ठीक प्रकार से किया गया अन्न का सेवन शरीर में स्थित जठराग्नि का आधार है और इस अग्नि का अन्न ईंधन रूप होता है। अन्न के सेवन करने से मन की शक्ति बढ़ती है, शरीर का धातुसमूह और बल बढ़ता है तथा इंद्रियाँ निर्मल होती हैं। विधि से विपरीत सेवन करने पर अन्न विपरीत परिणाम उत्पन्न करता है।

इन दोनों आयुर्वेद के विद्वानों के पश्चात् आचार्य वाग्भट्ट का स्थान आता है जिन्होंने आयुर्वेद के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। उनके द्वारा सृजित ग्रंथ 'अष्टांग संग्रह' आयुर्वेद के मुख्य ग्रंथों में से एक है जिसमें आयुर्वेद के विभिन्न पहलुओं पर सार्थक तथा उत्तम समाधान प्रस्तुत किए गए हैं। आचार्य वाग्भट्ट ने आचार्य सुश्रुत और

चरक के ग्रंथों का शोधपूर्ण अध्ययन किया। उनके सिद्धांतों और पद्धतियों के साथ अपनी नवीन मौलिक स्थापनाओं को अपने ग्रंथ में सम्मिलित किया जो कि उनका आयुर्वेद के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण योगदान सिद्ध होता है। ज्वर अथवा बुखार आना एक साधारण सा रोग होता है किंतु सही उपचार नहीं मिलने के कारण रोगी की स्थिति विकराल हो सकती है जिसका उपचार 'अष्टांग संग्रह' में आचार्य वाग्भट्ट द्वारा बताया गया है—

ज्वरे पेयाः कपायाश्च सर्पिः क्षीरं विरेचनम्।
षडहं षडहं युश्याद्वीक्ष्य रोगबलाबलम्।।[7]

उनके अनुसार ज्वर में दोषों के बल और अबल का विचार करके छह—छह दिन के बाद पेया (ज्वरनिवारक औषधि) कषाय, घी, दूध, विरेचन आदि रोगी को देना चाहिए। सबसे पहले प्रथम लंघन कराके पेया दो, फिर सातवें दिन कषाय, चौदहवें दिन घृत, इक्कीसवें दिन दूध और अट्ठाईसवें दिन विरेचन देना चाहिए। अतः स्पष्ट है कि आचार्य सुश्रुत, आचार्य चरक एवं आचार्य वाग्भट्ट आयुर्वेद की वैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति के विद्वान एवं आचार्य थे।

प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा एक दीर्घकालिक एवं समृद्ध वैज्ञानिक ज्ञान परंपरा है जिसमें अनेक महान ज्योतिषविद् और गणितज्ञों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इसी श्रेणी में महान ज्योतिषविद् और गणितज्ञ आर्यभट्ट का नाम प्रमुख है जिन्होंने अपने ग्रंथ 'आर्यभटीय' में गणित के वर्गमूल, घनमूल, समांतर श्रेणी और विभिन्न प्रकार के समीकरणों का विशुद्ध प्रतिपादन किया है। वर्ग क्षेत्रफल को प्रतिपादित करते हुए आर्यभट्ट ने कहा, *वर्गस्समचतुरश्रः फलञ्च सदृशद्वयस्य संवर्गः।*[8] जिस चतुर्भुज क्षेत्र की चारों भुजाएँ एवं दोनों कर्ण परस्पर समान हों, उसे 'समचतुरस्र' क्षेत्र कहते हैं। ऐसे 'समचतुरस्र' क्षेत्र का नाम 'वर्गक्षेत्र' भी है और इसके फल का नाम 'वर्गक्षेत्रफल' होता है। समान दो संख्याओं के परस्पर गुणन को 'संवर्ग' कहते हैं। 'आर्यभटीय' आर्यभट्ट की सबसे प्रसिद्ध कृति है जिसमें गणित के अतिरिक्त खगोल विज्ञान के सिद्धांतों का प्रमाण के साथ वर्णन किया गया है। खगोल विज्ञान के अंतर्गत आर्यभट्ट ने सूर्य और चंद्रग्रहण की घटना की व्याख्या की और उनके कारणों का वर्णन किया तथा पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है— इस नवीन, क्रांतिकारी तथा वैज्ञानिक विचार को आर्यभट्ट ने ही प्रमाणित किया था।

आर्यभट्ट के उपरांत भास्कराचार्य आते हैं जिनकी गणना प्राचीन भारतीय महान गणितज्ञों एवं ज्योतिषों में की जाती है। 'लीलावती' और 'बीजगणित' भास्कराचार्य के दो प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। 'लीलावती' में अंकगणित, बीजगणित और ज्यामिति के सिद्धांतों का सार्थक वर्णन है तथा 'बीजगणित' में समीकरणों के हल और अन्य बीजगणितीय सिद्धांतों का विशुद्ध वर्णन किया गया है। भास्कराचार्य ने गणित में कई महत्त्वपूर्ण योगदान दिए जिनमें प्रमुख है 'चक्रवाल विधि' जिसमें पेल के समीकरण को हल करने

के लिए एक सार्थक समाधान दिया गया है। गुणनफल की सार्थकतापूर्ण विधि को समझाते हुए भास्कराचार्य कहते हैं कि, *गुण्यस्त्वधोऽधो गुणखण्डतुल्य स्तैः खंडकैः संगुणितो युतो वा।*[5] गुणक के जितने खंड (टुकड़े) कल्पना करें, उतनी ही जगह गुण्य को धरकर और नीचे रखे हुए गुणक के खंडों से गुण्य को अलग दो गुणा करके जोड़ दें जिससे गुणनफल प्राप्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त अनंत श्रृंखला, ज्योतिष, ग्रहों की गति तथा ग्रहणों की भविष्यवाणी, नवीन गणितज्ञ सिद्धांत सम्मिलित हैं। भास्कराचार्य के शोधकार्य का प्रचार–प्रसार तथा प्रभाव भारतीय गणित और ज्योतिष पर बहुत अधिक रहा है तथा उन्हें भारतीय गणितज्ञों में सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान भी प्राप्त है। उनके ग्रंथों का अध्ययन–अध्यापन और अनुवाद कई भाषाओं में किया गया है तथा उनके सिद्धांतों का उत्तम उपयोग आज भी गणित और ज्योतिष में किया जाता है।

उपर्युक्त समग्र विवेचन के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा पूर्णरूप से एक प्रामाणिक वैज्ञानिक परंपरा है। प्राचीन संस्कृत साहित्य में ज्ञान की समस्त शाखाओं का वैज्ञानिकतापूर्ण विकास हुआ था जिसमें कृषि, जलवायु, पर्यावरण, चिकित्सा, गणित, ज्योतिष आदि विषयों का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अनुसंधान किया गया है। प्राचीन विज्ञान से परिपूर्ण ज्ञान की सार्थकता वर्तमान युग में न केवल महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक है अपितु प्रासंगिक भी है। आज की भौतिकवादी संस्कृति की समस्याओं का उत्तम समाधान प्राचीन भारतीय वैज्ञानिक ज्ञान परंपरा का अनुसरण करके ही प्राप्त किया जा सकता है।

संदर्भ

1. कृषि–पराशर, संपादक तथा अनुवादक प्रो. रामचंद्र पांडे, प्रकाशक– मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, प्रथम संस्करण, सन् 2002, वृष्टिखंड, श्लोक संख्या–18, पृष्ठ संख्या–23
2. कश्यपीय कृषि पद्धति, संपादक और टीकाकार डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', प्रकाशक– चौखंबा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, प्रथम संस्करण, सन् 2013, अथ तृतीय कथनम्, श्लोक संख्या–108, पृष्ठ संख्या–25
3. कृषि–पराशर, संपादक तथा अनुवादक प्रो. रामचंद्र पांडे, प्रकाशक– मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, प्रथम संस्करण, सन् 2002, वृष्टिखंड, श्लोक संख्या–22, पृष्ठ संख्या–26
4. कश्यपीयकृषिपद्धति, संपादक और टीकाकार डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', प्रकाशक– चौखंबा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, प्रथम संस्करण, सन् 2013, अथ दशम कथनम्, श्लोक संख्या–329, पृष्ठ संख्या–73

5. चरक–संहिता, प्रथम खंड, अनुवादक श्री अत्रिदेवजी गुप्त, प्रकाशक– भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारस, द्वितीय संस्करण, सन् 1948, प्रथमोऽध्याय, श्लोक संख्या–10–14, पृष्ठ संख्या–3
6. चरक–संहिता, प्रथम खंड, अनुवादक श्री अत्रिदेवजी गुप्त, प्रकाशक– भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारस, द्वितीय संस्करण, सन् 1948, सप्तविंशौडध्याय, श्लोक संख्या–3, पृष्ठ संख्या–323
7. श्रीमद्वाग्भट्ट विरचित अष्टांगसंग्रह, अनुवादक कविराज अत्रिदेव गुप्त, प्रकाशक– निर्णय सागर मुद्रणालय, बंबई, प्रथम संस्करण, सन् 1951, अध्याय सात, श्लोक संख्या–247, पृष्ठ संख्या–81
8. आर्यभटीयम्, अनुवादक उदय नारायण सिंह, प्रकाशक– शास्त्र पब्लिशिंग ऑफिस, विद्दूपुर–मुजफ्फरपुर–बिहार, गीतिकापादः, श्लोक संख्याः–2, पृष्ठ संख्याः–19
9. लीलावती भास्कराचार्य विरचित, अनुवादक खेमराज श्रीकृष्णदास श्रेष्ठिना, प्रकाशक– श्री वेंकटेश्वर मुद्रणालय, बंबई, तृतीय संस्करण, संवत 1964 अर्थात् सन् 1907, अथ खंडगुणा करने की रीति, सूत्र संख्या–3, पृष्ठ संख्या–9

❑❑❑

साहित्य में सहज होना भी मौलिकता का श्रेष्ठ प्रतिमान है।

✍ हजारीप्रसाद द्विवेदी

मणिपुर की पारंपरिक चिकित्सा पद्धति

✍ प्रो. एलाङबम विजय लक्ष्मी

भारत की ज्ञान परंपरा विश्व की प्राचीन, व्यापक और समृद्ध परंपराओं में से एक है। यह केवल पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित नहीं है, बल्कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त एक सजीव चेतना है जो सहस्राब्दियों से न केवल भारतीय समाज का मार्गदर्शन कर रही है, बल्कि संपूर्ण मानवता को आलोकित करती रही है। यह परंपरा धर्म और दर्शन से लेकर विज्ञान, गणित, खगोलशास्त्र, आयुर्वेद, संगीत, कला, वास्तुशास्त्र, कृषि और समाजशास्त्र तक हर आयाम में अपने अमूल्य योगदान के लिए जानी जाती है। भारतीय ज्ञान प्रणाली केवल ज्ञान का संग्रह नहीं है, बल्कि अनुभव, साधना और जीवनदृष्टि का संगम है– यह एक जीती–जागती परंपरा है जो आज भी हमारे जीवन और समाज को प्रभावित करती है। इसकी बहु–आयामी प्रकृति और समग्र दृष्टि ने भारत को न केवल बौद्धिक और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध किया, बल्कि वैश्विक मंच पर भी भारतीय संस्कृति को एक विशिष्ट और सम्माननीय पहचान दी। यह परंपरा इस बात का प्रमाण है कि जब ज्ञान को जीवन से जोड़ा जाता है, तब वह केवल पढ़ा नहीं जाता, जिया जाता है, सँवारा जाता है और पीढ़ी–दर–पीढ़ी आगे बढ़ाया जाता है। हमारे देश भारत के विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित ज्ञान की परंपरा को और समृद्ध करने के लिए देश के कोने–कोने में ज्ञान की जो अन्य धाराएँ बह रही हैं, उस ओर भी ध्यान दिए जाने की जरूरत है।

मणिपुर का ऐतिहासिक संदर्भ

मणिपुर पूर्वोत्तर भारत में स्थित सांस्कृतिक रूप से समृद्ध एक राज्य है। सन् 1891 में खोङजोम नामक स्थल पर ब्रिटिश के साथ हुए युद्ध में पराजय के बाद मणिपुर ब्रिटिश के अधीन हो गया। भारत की आजादी के बाद सन् 1949 में मणिपुर का भारत में विलय हुआ था। विलय से पहले मणिपुर का अपना संविधान बन चुका था। इससे पहले मणिपुर एक स्वतंत्र प्रदेश हुआ करता था। शाही इतिहास चौथारोल कुम्पाबा में सन् 33 से मणिपुर की एक समृद्ध शासन व्यवस्था और ऐतिहासिक गतिविधियों का वर्णन मिलता है। इसके अलावा जीवन के हर क्षेत्र से संबंधित ज्ञान का लिखित रूप विभिन्न पुया में संकलित हैं जैसे पूरे प्रदेश को सुचारु रूप से चलाने के लिए लिखित संविधान – लोयुम्बा शिनयेन पुया, वास्तु आधारित गृह निर्माण कला

संबंधी ग्रंथ – युमशारोल पुया, चादा लाइहुइ, युद्ध कला संबंधी ग्रंथ – चायनरोल, हिजन हिराओ, खुमन कङलैरोल आदि।

मणिपुर की पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियाँ–

मणिपुर भौगोलिक दृष्टि से जैव–विविधता की अमूल्य संपदा वाला क्षेत्र है। यहाँ अनेक प्रकार के दुर्लभ तथा औषधीय गुणों से भरपूर वनस्पति एवं जीव–जंतु मिलते हैं। यहाँ के प्रमुख निवासी मैतेई, कबुई तथा अन्य जनजाति समुदायों में प्रागैतिहासिक काल से पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों के प्रचलित होने का प्रमाण मिलता है। वनस्पति तथा जैविक पदार्थों को मानव अपने स्वास्थ्य लाभ के लिए उपयोग करता रहा है। पारंपरिक रूप से चिकित्सा के लिए मणिपुर में 1200 से भी अधिक प्रकार की वनस्पति का उपयोग किया जाता है। इन वनस्पतियों का उपयोग कर माइबा अथवा चिकित्सक रोगी को रोगमुक्त करता है। दूसरी तरफ प्रतिदिन भोजन में सेवन के माध्यम से भी रोगमुक्त रहा जा सकता है। औषधीय गुणों से भरपूर वनस्पतियों का सेवन करने से शरीर के अंदर प्रतिरक्षा अच्छी तरह विकसित हो जाती है जिससे जटिल जैव रासायनिक और शारीरिक प्रक्रियाओं के माध्यम से शरीर के अंदर रोग–प्रतिरोधक क्षमता का विकास होता है।

हमारे शरीर में सामान्य जैव रासायनिक प्रतिक्रियाओं के दौरान प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन और नाइट्रोजन कणों का निर्माण होता है जो रोगजन्य–शारीरिक स्थितियों में और अधिक बढ़ जाता है जिससे 'ऑक्सीडेटिव स्ट्रेस' उत्पन्न होता है। इस प्रक्रिया के दौरान कोशिकीय घटकों में परिवर्तन आ जाता है जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न रोग अवस्थाएँ उत्पन्न हो सकती हैं। इस स्थिति को प्रभावी रूप से निष्क्रिय किया जा सकता है, यदि कोशिकीय रक्षा प्रणाली को एंटीऑक्सीडेंट्स के रूप में सुदृढ़ किया जाए। एंटीऑक्सीडेंट्स तत्व से भरपूर वनस्पतियों को भोजन में शामिल कर लेने से मानव रोगमुक्त रह सकता है।

मणिपुर में उपलब्ध वनस्पतियों की लंबी सूची मिल जाएगी जिनका प्रयोग औषधि के रूप में ही किया जाता है। यहाँ कुछ प्रमुख औषधीय गुणों से भरपूर वनस्पतियों का विवरण दिया जा रहा है–

क्र. सं.	रोग	मणिपुरी नाम	वैज्ञानिक नाम	संस्कृत नाम	उपयोगी भाग तथा विधि	मात्रा	सावधानी	स्रोत
1	गला खराब होने पर	लोम्बा	Elsholtzia blanda	कपुरकपात	पकाकर, सूखा फल, काढ़ा बनाकर	3 चम्मच दिन में 3–4 बार	तेल तथा तेज मिर्च–मसाले वर्जित	श्री सोरोखायबम अडौ सिंह हियाङलम, थौबाल जिला, मणिपुर
2	उच्च रक्तचाप	मरोइ नापाकपी	Allium hookeri	अनुपलब्ध	हरी पत्तियाँ भोजन के साथ या उबालकर	सात दिनों तक लगातार सेवन	नमक वर्जित, बाद में कम नमक का सेवन	श्री खाडेन्बम मतुम सिंह
3	खून बहने पर	तेरा पायबी	Gynura cusimbua	हेमपुष्पा	पत्तियों को धोकर रस घाव पर निचोड़ें या पेस्ट बनाकर घाव पर लगाएँ	घाव सूखने तक	लगाने से पहले घाव को अच्छी तरह साफ पानी से धो लें। सूखा रखें	श्री आरोन शिमरे
4	नाखून सड़ने पर	खुजङ	Impatiensb alsamina	ताइरिनी	हरी पत्तियाँ	मसलकर या कूटकर लेप बनाकर नाखून पर प्रलेप।	घाव को गीला होने से बचाना जरूरी	लाइश्रम इबोतोम्बी सिंह, लमलाइ बाजार, इंफाल

5	पेट की सूजन (गैस्ट्राइटिस)	हैरिबोप	Citrum Latipes	जामबिर	फल	रस (250ml) के साथ मिश्री 10gm सात दिनों तक लगातार सेवन	प्रयोग के दौरान हल्का खाना। तेल, मिर्च–मसाले वर्जित	श्री माइबम नीलबाबू, नाओरेमथोङ शामुशङ, इम्फाल, मणिपुर
6	सर्दी–जुकाम और ज्वर	1.नोङमाङखा 2. शिङ 3. उचिथी	1. Adhatoda zeylanica 2. Zingiber officinale 3. Piper longum	1 वसा 2. अदरक 3. पिपली	1.पत्ते 2.ताजा अदरक 3.सूखे बीज	काढ़ा बनाकर या 100ml पाँच दिनों तक दिन में तीन बार	दूध तथा दूध से बनी वस्तुएँ वर्जित।	एन तोम्बी सिंह, उरिपोक, निङथौखोङजम लैकाय, इम्फाल
7	ज्वर (शिशु)	तुलसी	Ocimum sanctum	तुलसी	पत्तियाँ	¼चम्मच रस में ¼ चम्मच शहद	माँ बच्चे दोनों सर्दी से बचें। उपचार के दौरान माँ मिर्च–मसाले का सेवन न करें।	श्रीमती युमनाम युमजाओ लैमा, हियाङलम कैथेल मचा, जिला–थौबाल, मणिपुर
8	उच्च रक्तचाप	फकपाइ	Polygonum odoratum	लक्षा	पत्तियाँ	तीन पत्तियाँ चबाते हुए मुँह में लुग्दी बना लें। 2–5 मिनट तक उसे जीभ के नीचे रखकर धीरे–धीरे लार निगलते रहें।	नमक और नमकीन खाद्य पदार्थ वर्जित। इसे रक्तचाप बढ़ने पर ही सेवन करें।	ओइनाम निङथेम सिंह, लाङगोल लाइरेम्बी लैकाइ लम्फेलपात

9	दस्त	नुङशी हिदाक	*Mentha arvensis*	पुदीना	पत्तियाँ और तना	पत्तियों तथा कोमल तनों का प्रयोग कर रस निकाल लें और उसमें थोड़ा नमक मिलाकर 2–3 दिनों तक दिन में चार बार सेवन करें।	तेल, मसालेदार और गरिष्ठ भोजन वर्जित, पेय पदार्थों का ज्यादा प्रयोग करें।	सेले ओसोर कारोङ गाँव, जिला–सेनापति मणिपुर
10	दाद खाज खुजली	असि हैबोङ	इगमहे पगेजग्	अजाक्षी, काका	पत्तियाँ	ताजी पत्तियों को मसलकर रोग–ग्रस्त स्थान पर लगाए।	उपचार के दौरान उस स्थान पर साबुन का प्रयोग न करें।	आर. चिनाओ ताङखुल, सिकिबुङ गाँव, उख्रुल एन. तोंबीराज, उरोपोक, निङथोखोङजम लैकाइ, इंफाल

मणिपुरी समाज में पारंपरिक रूप से माइबा या चिकित्सक विशेष वनस्पतियों तथा जीवों का प्रयोग कर रोगों का निदान करते हैं जिसमें मंत्रों का उच्चारण भी किया जाता है। देखने में यह अत्यधिक जादुई प्रतीत होता है, लेकिन इसका प्रचलन आज भी व्यवहार में है। नाड़ी परीक्षण द्वारा रोग की जड़ को पहचाना जाता है और रोग की प्रकृति के अनुसार उपचार किया जाता है। शरीर की मालिश और हर्बल उपचार जैसी तकनीकों को भी अपनाया जाता है।

मणिपुर स्टेट बायोडायवर्सिटी बोर्ड, मणिपुर सरकार, अपुनबा मणिपुर माइबा–माइबी फुरुप तथा सेंटर फॉर एडवांस्ड स्टडीज़ इन लाइफ साइंसेज़, मणिपुर विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित लोकल हेल्थ ट्रेडिशन्स ऑफ मणिपुर में निङथौखोंजम तोम्बीराज ने लिखा है– पारंपरिक माइबा–माइबी उपचार पद्धति भारत की एक स्थानीय स्वास्थ्य परंपरा है, जो मणिपुर राज्य और उसके पड़ोसी क्षेत्रों में प्राचीन काल से प्रचलित है। माइबा (पुरुष चिकित्सक) और माइबी (महिला चिकित्सक) रोगियों का इलाज उन औषधियों से करते हैं, जिन्हें वे स्वयं स्थानीय रूप से उपलब्ध औषधीय पौधों, पशु अंगों और अयस्क, क्रिस्टल आदि जैसे अकार्बनिक पदार्थों से तैयार करते हैं। यह लोक स्वास्थ्य परंपरा पीढ़ी–दर–पीढ़ी मौखिक रूप से स्थानांतरित होती रही है और मानव जाति के अस्तित्व में आने के समय से लेकर आज तक निरंतर चली आ रही है।

मणिपुर में प्राप्त वनस्पतियों का प्रयोग तो औषधि के रूप में करते ही हैं, भोजन में भी इनके उपयोग की परंपरा है। हम जो भोजन करते हैं, उसी से हमारा शरीर बनता है। किसी भी तरह की बीमारी से बचने का माध्यम पौष्टिक भोजन है। रोग के विरुद्ध रोकथाम स्वस्थ शरीर ही कर सकता है। औषधीय पौधों को उचित समय पर, सही मात्रा और सही रूप में लिया जाए तो यह स्वास्थ्यवर्धक होने के साथ–साथ शरीर को रोगों से मुक्त भी रखता है। मणिपुरी समाज और जीवन में आहार चिकित्सा एक महत्त्वपूर्ण परंपरा है। किसी ने कहा भी है कि भोजन को दवा की तरह खाओ ताकि दवा को भोजन की तरह न खाना पड़े। मौसमी और औषधीय पौधों का उपयोग संतुलित आहार के रूप में किया जाए तो रोगों की रोकथाम और उपचार दोनों संभव हैं। मणिपुर में मौसमी परिवर्तन तथा व्यक्ति की शारीरिक प्रकृति के अनुसार भोजन का चयन किया जाता है। सर्दियों में अदरक, तिल और फर्मेंटेड सोयाबीन जैसे गर्म तासीर वाले खाद्य पदार्थों का इस्तेमाल ज्यादा किया जाता है। गर्मियों में पेरुक (ब्राह्मी; वैज्ञानिक नाम – Centella asiatica) तथा हैबी मना (वैज्ञानिक नाम– Eclipta prostrata) जैसे ठंडी तासीर के पौधों का उपयोग किया जाता है। मणिपुरी जीवन में अनेक पौधों का सेवन रोज़मर्रा के भोजन के रूप में किया जाता है।

दैनिक आहार में औषधीय व्यंजन

चमफुत– यह मौसमी सब्जियों को उबालकर बनाई जाने वाली अत्यधिक सादी सब्जी है। किसी भी सब्जी जैसे लौकी, कद्दू, स्क्वैश, खीरा, गाजर, फ्रेंच बीन्स आदि हरी सब्जियों को उबालकर यह सादी सब्जी तैयार की जाती है। यह उबली सब्जी पेट को सही स्थिति में रखने में तथा पाचन में सहायक है। इस सब्जी का सेवन बीमार व्यक्ति भी कर सकता है। यह मणिपुर के रोज़ाना के खाने का एक अहम हिस्सा होती है और इसे चावल के साथ खाया जाता है।

कङसोई या चमथोङ– इसमें सब्जियों को बिना तेल उबालकर हल्के सूप के समान तैयार किया जाता है। इस सब्जी को भोजन में लगभग प्रतिदिन शामिल किया जाता है। यह अत्यंत पौष्टिक माना जाता है। इसमें कोई मसाला या तेल न होने से इसका स्वाद प्राकृतिक और बहुत ही सादा होता है। कभी–कभी इसे ङारी अर्थात फर्मेंटेड मछली या सूखी मछली के साथ बनाया जाता है। इस सब्जी का शाकाहारी संस्करण भी अत्यंत लोकप्रिय है। जब शरीर को हल्का भोजन चाहिए, तब इसे खाना पसंद किया जाता है। इसे विशेषकर चावल के साथ खाया जाता है।

शिङजू– मणिपुर का एक बहुत ही लोकप्रिय और पारंपरिक रूप से तैयार किया जाने वाला व्यंजन है, जो आमतौर पर कच्ची सब्जियों या हल्की उबली हुई सब्जियों को मिलाकर बनाया जाता है, और उसमें खासतौर पर ङारी (फर्मेंटेड मछली) या थोइदिङ पाउडर (Perilla seeds) तथा भुना हुआ बेसन मिलाया जाता है। यह तीखा, नमकीन और कुरकुरे स्वाद का अद्भुत मेल होता है। शिङजू का प्रकार वनस्पतियों की भिन्नता पर निर्भर करता है। कुछ निश्चित मात्रा की सब्जियों को तरह–तरह की सब्जियों के साथ मिलाया जाता है।

ईरोंबा– मणिपुर राज्य में बसने वाले लगभग सभी समुदायों में ईरोंबा एक लोकप्रिय व्यंजन है। पारंपरिक रूप से तैयार किया जाने वाला यह व्यंजन मौसमी सब्जियों, जिसमें हर तरह की हरी सब्जियाँ, आलू, बींस (फलियाँ) शामिल हैं, को उबाला जाता है। फिर उबली हुई सामग्रियों को मसलकर यह खाद्य–पदार्थ तैयार किया जाता है। इसे फर्मेंटेड मछली के साथ तथा निरामिष अर्थात् बिना मछली के भी तैयार किया जाता है। यह व्यंजन बिना तेल के होने के कारण अत्यंत पौष्टिक है। इस व्यंजन के साथ औषधीय गुणों से भरपूर वनस्पतियों या जड़ी–बूटियों के रूप में प्रयोग में लाई जाने वाली पत्तियों का भी सेवन किया जाता है।

उती– मणिपुर में उती प्रमुख रूप से दो तरह से बनाई जाती है। पहली– मटर, पीला–सूखा मटर या विभिन्न दालों से बनती है और दूसरी हरी पत्तेदार सब्जियों से बनाई जाती है, जो देखने में एकदम हरी होती है। उती कमजोर पाचन वालों के लिए

बेहतर हो सकती है। यह व्यंजन पाचन शक्ति बढ़ाने में सहायक है। यह बच्चों में अत्यंत लोकप्रिय है।

कङसू– कङसू भी ईरोंबा की तरह पेरुक (ब्राह्मी) के पत्ते, बाँस की जड़ (बेंबू शूट) या हैबा मना (*Ficus palmat*) आदि पत्तों को उबालकर तैयार किया जाने वाला व्यंजन है। यह एक नमकीन और मिर्च वाला व्यंजन है। जहाँ ईरोंबा को थोड़ा रसीला बनाया जाता है, वहीं कङसू में पानी बिल्कुल नहीं मिलाया जाता।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र की समृद्ध जैव विविधता, विशेष रूप से औषधीय पौधों की विविधता, न केवल पारंपरिक चिकित्सा को जीवित रखती है, बल्कि इस बात को भी रेखांकित करती है कि स्थानीय संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग से स्वास्थ्य व जीवन दोनों को संतुलित रखा जा सकता है।

मणिपुरी समाज की पारंपरिक चिकित्सा पद्धति, जिसमें माइबा और माइबी रोगों का उपचार करते हैं, न केवल एक चिकित्सा प्रणाली है, बल्कि यह जीवनशैली, भोजन और प्राकृतिक संसाधनों के साथ गहरे जुड़ाव का प्रतीक है। यह परंपरा पीढ़ी–दर–पीढ़ी मौखिक रूप से चली आ रही है और आज भी व्यवहार में है। इस चिकित्सा पद्धति में औषधीय पौधों, पशु अंगों, खनिजों और जैविक पदार्थों का उपयोग करके उपचार किया जाता है।

मणिपुरी भोजन में औषधीय पौधों का प्रयोग केवल औषधि के रूप में ही नहीं, बल्कि दैनिक आहार के हिस्से के रूप में भी होता है, जिससे रोग–प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाई जाती है। जैसे– चमफुत, कङसोई, चमथोङ, शिङजू, ईरोम्बा, उती और कङसू जैसे व्यंजन पोषण और औषधीय गुणों से भरपूर हैं।

यह स्पष्ट है कि मणिपुरी समाज में आहार और औषधि के बीच कोई दूरी नहीं है, बल्कि एक गहरा संबंध है– भोजन ही औषधि है और यह परंपरा आज के आधुनिक संदर्भ में भी प्रासंगिक और प्रेरणास्पद है।

सहायक पुस्तकें–

1. Ningthoukhongjam Tombiraj, Local Health Traditions of Maibas-Maibis of Manipur, LOCAL HEALTH TRADITIONS OF MANIPUR, Manipur State Biodiversity Board, Government of Manipur.
2. Singh Konsam Manikchand Loyumba Silyel : An Ancient Constitution of Manipur, Translated and Transliterated Annotations 2012.

3. Singh Thokchom Tomba, Dr. Prabhakar Ignatius KHAYOM LAKPA, Vol- 12, IJFANS International Journal of Food and Nutritional Sciences, ISSN: 2319-1775.

4. Singh S. Shyamkiran, Traditional Wisdom and Methods of Health Care in Manipur, World Journal of Pharmaceutical Research, Vol-9 Issue -7, ISSN:2277-7105.

5. Devi TI, Devi KU, Wild Medicinal plants in the hills of Manipur India: A Traditional Theorapeutic potential, Intl Journal of Science, Research publication 2025.

6. Maibam Punyakishore, Sahi Vaidurya Pratap, Singh Thangjam Gopeshshwor, A Review of Medicinal Plants commonly used in Manipur: With special reference against COVID- 19, Journal of Ayurvedic and Harbal Medicine 2022, ISSN: 2454-5023.

❑❑❑

रहिमन चुप ह्वै बैठिए
देखि दिनन के फेर।
जब नीके दिन आइ हैं,
बनत न लगि है देर।।

✍ रहीम

भारतीय ज्ञान परंपरा और विज्ञान

✍ प्रो. सी. जयशंकर बाबु

भारतीय वाङ्मय सहस्राब्दियों के ज्ञान–विज्ञान की अनूठी निधि है। भारतीय मनीषा की जिज्ञासा, चिंतन व गहन अध्ययन का ही यह सुफल है। यह वाङ्मय केवल साहित्यिक नहीं, मगर बहुआयामी ज्ञान–विज्ञान की अविरल धारा है। इसी आधार पर भारतीय ज्ञान प्रणाली और परंपरा की चर्चा हो रही है जो कि बहुआयामी बौद्धिक धरोहर है। पश्चिमी शिक्षा पद्धति ने भारतीय ज्ञान प्राणाली और भारतीय दृष्टिकोण की विशिष्टता को धीरे–धीरे उपेक्षा का शिकार कर दिया था।

भारतीय चिंतन में वैज्ञानिक पद्धति

भारतीय चिंतन में वैज्ञानिक पद्धति के मूलभूत तत्व शामिल हैं। दृश्यमान जगत के अलावा समूची प्रकृति को समझने के लिए अपनाए जाने वाले चिंतन की सुनिश्चित पद्धति को हम 'वैज्ञानिक पद्धति' मान सकते हैं। वैज्ञानिक अनुसंधानों को वैध और विश्वसनीय बनाने में वैज्ञानिक पद्धति के विभिन्न दृष्टिकोणों, सिद्धांतों का बड़ा योगदान होता है। मूलतः भारतीय वाङ्मय परंपरा में अनुभवजन्य अवलोकन के आधार पर समूची प्रकृति के असंख्य आयामों को समझकर जीवन–व्यवहार को सुगम बनाने के वैज्ञानिक नियमों का प्रतिपादन मिलता है। सहस्राब्दियों से भारतीय जीवन की विशिष्ट उपलब्धियों में केवल दृश्यमान भौतिक जीवन के लिए दृष्टि ही नहीं, अदृश्यमान सत्यों के लिए अपेक्षित आंतरिक चिंतन–क्षमता भी शामिल है। समूची सृष्टि की गतिविधियों के वस्तुनिष्ठ अवलोकन से इंद्रियजन्य ज्ञान और व्यवहार वैज्ञानिक उन्नति में सहायक रहे हैं। आधुनिक विज्ञान में परिकल्पना, परीक्षण, प्रयोग, चिंतन–विश्लेषण के आधार पर सिद्धांतों के विकास में भी वस्तुनिष्ठ अवलोकन–आधारित दृष्टि का बड़ा महत्त्व है। सहस्राब्दियों पूर्व भारतीय ज्ञान प्रणाली ने जो स्थापनाएँ की हैं, उनमें असंख्य ऐसे तथ्य रह गए हैं जिन्हें आधुनिक वैज्ञानिक पद्धतियों से स्थापित करने में और कई सदियाँ लग जाएँगी।

भारतीय ज्ञान परंपरा

भारतीय ज्ञान प्रणाली की विशिष्टता से विकसित परंपरा में दर्शन, भाषा–चिंतन, कला के अलावा ज्ञान–विज्ञान के कई आयाम शामिल हैं। इसे अतीत, वर्तमान व भविष्य की वैज्ञानिक उपलब्धियों के लिए मूलभूत चिंतन की आधारशिला मान सकते

हैं। गणित, चिकित्सा, खगोलविज्ञान सहित भौतिक–रासायनिक, जैव विज्ञान, पर्यावरणीय दृष्टिकोण आदि कई क्षेत्रों में भारतीय ज्ञान परंपरा का योगदान महत्त्वपूर्ण है। समूचे विश्व की वैज्ञानिक व प्रौद्योगिकीय उन्नति और उपलब्धियों की चर्चा में हम अपने यहाँ के योगदान को बिल्कुल ध्यान नहीं देते हैं। वैज्ञानिक उन्नति निरंतर विकास की प्रक्रिया है। पश्चिम की जिन उपलब्धियों की हम बात करते हैं, उनमें भारतीय चिंतन के योगदान की यदि उपेक्षा हुई है तो हमें निश्चय ही आधुनिक बौद्धिक संपदा अधिकारों की दृष्टि से भी चिंतन करने की आवश्यकता है। सहस्राब्दियों से भारतीय आयुर्वेद, चिकित्सा ज्ञान परंपरा के बावजूद पश्चिमी राष्ट्रों द्वारा कई पौधों के औषधीय गुणों के ज्ञान पर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बौद्धिक–संपदा अधिकारों को विगत दशकों में हासिल कर पाना बड़ी विडंबना है, क्योंकि बौद्धिक संपदा का अधिकार उस विषय–ज्ञान की खोज पहले करने वाले का होना चाहिए। भारत सहस्राब्दियों पूर्व से ही चिकित्सकीय प्रयोग के लिए जिनका प्रयोग करता आ रहा है उनका बौद्धिक अधिकार दूसरे राष्ट्र द्वारा छीन लेना निश्चय ही ध्यान देने की बात है। ऐसी उपेक्षाओं से बचने हेतु पहल करने की अपेक्षा है। भारतीय ज्ञान प्रणाली और परंपरा का सम्यक् बोध कराते हुए आधुनिक वैज्ञानिक उन्नति की दिशा में अग्रसर होना और भारतीय प्रतिष्ठा को बरकरार रखना संभव है। जो भूलें हमने की हैं, उन्हें सुधारने का यह महत्त्वपूर्ण अवसर है।

भारतीय ज्ञान परंपरा के स्रोत

भारतीय ज्ञान परंपरा मुख्यतः श्रुतियों, स्मृतियों से विकसित भारतीय ज्ञान प्रणाली पर आधारित है। वैदिक ऋचाओं और संहिताओं, उपनिषद, पुराण सहित प्राचीन ऋषि–मुनियों के विभिन्न ग्रंथ, महाकाव्य भी इस चिंतन के स्रोत हैं। रामायण, महाभारत और अष्टाध्यायी जैसे कई ग्रंथ भी इस ज्ञान परंपरा के पोषक माने जाते हैं। इन ग्रंथों में हमें धर्म, दर्शन, भाषा–चिंतन, विज्ञान, गणित, खगोल विज्ञान, आयुर्वेद, योग और ज्योतिष जैसे विषयों का विस्तृत ज्ञान मिल जाता है।

भारतीय चिंतन दार्शनिक गहराई, आध्यात्मिक साधना, वैज्ञानिक चिंतन की प्रगति और सांस्कृतिक विशिष्टता की दृष्टि से दुनिया के आकर्षण का केंद्र रहा है। भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रति पश्चिमी दुनिया ने आकर्षित होकर औपनिवेशिक दौर में अपने स्वार्थ के लिए यहाँ के तमाम संसाधनों का भरपूर प्रयोग किया है।

भारतीय ज्ञान परंपरा में अपौरुषेय वैदिक साहित्य और उसके चिंतन आधार पर ऋषि–मुनियों द्वारा स्थापित सिद्धांतों और हासिल वैज्ञानिक उपलब्धियों के रूप में हमें दर्शन, गणित और खगोल–विज्ञान, भौतिक–रासायनिक विज्ञान, आयुर्वेद और चिकित्सा, मनोविज्ञान, कला आदि कई क्षेत्रों से संबंधित चिंतन और प्रमाण हमें मिल जाते हैं। इनकी कई उपलब्धियाँ हैं। आधुनिक वैज्ञानिक उपलब्धियों के साथ प्राचीन

भारतीय चिंतन परंपरा का तालमेल बिठाने की दृष्टि से विज्ञान–लेखन को प्रवृत्त होने की बड़ी आवश्यकता है। भारतीय दर्शन ने तर्क, प्रमाण, ज्ञानमीमांसा और अनुभवजन्य सत्य को आधार बनाया। भारतीय परिवेश में कई ऐसे वैज्ञानिक हुए हैं जिन्होने आज जैसे विभिन्न तकनीकी साधनों के बिना ही बड़ी उपलब्धियाँ हासिल की हैं। प्राचीन वैज्ञानिक चिंतन में कई ऋषि–मुनियों, वैदिक चिंतन के दिग्गज विद्वानों ने बड़ा योगदान दिया है। आर्यभट्ट, वराहमिहिर, भास्कराचार्य जैसे कई प्रतिभावान विद्वानों ने गणित, खगोल–विज्ञान सहित कई क्षेत्रों में अद्वितीय योगदान दिया। आर्यभट्ट ने π (पाई) का मान निर्धारित किया था और ग्रहों की गति का वैज्ञानिक विवेचन भी किया था। भास्कराचार्य की 'लीलावती' और 'बीजगणित' आधुनिक गणित की आधारशिला मानी जाने योग्य कृतियाँ हैं। वैदिक ज्ञान को समझने की क्षमता विकसित करने की दृष्टि से पाणिनि ने अष्टाध्यायी के माध्यम से व्याकरण की जो मौलिक शिक्षा दी, उसके कई ऐसे मौलिक बिंदु हैं, जिन्हें साबित करने में पश्चिमी दुनिया को और काफी लंबा समय लग सकता है।

सदेव सोम्वेदमस आसीदेकमेवाद्वितीयम्। छांदोग्य उपनिषद (6.2.1) की इस उक्ति का अर्थ है कि सृष्टि से पहले केवल सत् (सत्य, अस्तित्व) था, जो एक और अद्वितीय था। इसका उल्लेख करते हुए भारतीय विज्ञान की विशिष्टता पर म.म. श्रीगिरिधर शर्मा चतुर्वेदी (1960) जी ने विचार प्रकट किया है कि इस उपनिषदीय कथन के आलोक में अंततः पाश्चात्य विज्ञान को सहस्राब्दियों पूर्व के वैदिक विज्ञान की शरण में आना पड़ा है। इलेक्ट्रॉन और प्रोटॉन एक ही मूल से होने के निष्कर्ष पर पश्चिमी वैज्ञानिक जो आज पहुँच गए हैं, वह बात प्राचीन वैदिक साहित्य में ही है।

भारतीय ज्ञान प्रणाली के प्रमुख घटक

भारतीय ज्ञान प्रणाली को इसके तीन प्रमुख घटकों के माध्यम से समझा जा सकता है–

ज्ञानः यह बौद्धिक मान, प्रथाओं और परंपराओं के विशाल भंडार को संदर्शित करता है, जिसमें दर्शन, विज्ञान, गणित, इंजीनियरिंग आदि जैसे विविध क्षेत्र शामिल हैं, जिनकी उत्पत्ति और विकास भारतीय उपमहाद्वीप में सहस्राब्दियों से हुआ है।

विज्ञानः यह घटक भारतीय ज्ञान प्रणाली में निहित वैज्ञानिक ज्ञान का प्रतिनिधित्व करता है जो अवलोकन, प्रयोग और गहन विश्लेषण के माध्यम से प्राप्त होता है और स्वास्थ्य, कृषि और इंजीनियरिंग जैसे विभिन्न क्षेत्रों को प्रभावित करता है।

जीवन दर्शनः यह भारतीय ज्ञान प्रणाली में निहित जीवन के प्रति समग्र दृष्टिकोण पर जोर देता है जो स्थिरता, नैतिकता, कल्याण और व्यक्ति, प्रकृति और समाज के बीच संबंध जैसे मूल्यों पर केंद्रित है।

ये तीन स्तंभ सामूहिक रूप से भारतीय ज्ञान प्रणाली की नींव बनाते हैं जो समकालीन समय में भी प्रासंगिक मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं।

भारतीय ज्ञान परंपराः राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की अपेक्षाएँ

भारतीय ज्ञान प्रणाली अनादि काल से भारतवर्ष के सर्वोत्कृष्ट वैज्ञानिक विकास का माध्यम रही है। भारत के प्राचीन पारंपरिक ज्ञान की संपदा को समकालीन ज्ञान प्रणालियों के साथ तुलना करते हुए उसे एकीकृत करने की आवश्यकता है। इस आवश्यकता की पूर्ति की दिशा में शिक्षा के क्षेत्र में अंतर्विषयी, बहुविषयी शिक्षण और अनुसंधान को महत्त्व दिया जा रहा है। पश्चिमी विचारधारा के प्रभुत्व के कारण उपेक्षित भारतीय ज्ञान प्रणालियों को पुनः प्रतिष्ठित करने की पहल सर्वत्र करने की आवश्यकता पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने बल दिया है। भारतीय ज्ञान प्रणाली के परिणामतः जिस वैज्ञानिक पद्धति और वैज्ञानिक सिद्धांतों व स्थापनाओं को महत्त्व मिलना चाहिए, उनका अपेक्षित मूल्यांकन का यह सही अवसर है। पश्चिमी शिक्षा पद्धति ने हमें अपने अतीत के गौरव को समझने में जिस रूप में वंचित रखा था, उस कमी की पूर्ति की पहल राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने की है। वर्तमान दौर में भारतीय विज्ञान–लेखन से अपेक्षा है कि इन तमाम महत्त्वपूर्ण तथ्यों को ध्यान में रखते हुए भारतीय ज्ञान प्रणाली व परंपराओं के तालमेल में वर्तमान उपलब्धियों का मूल्यांकन, विश्लेषण, विवेचन करें।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की तीसरी वर्षगाँठ के अवसर पर अखिल भारतीय शिक्षा समागम 2023 का आयोजन 29–30 जुलाई, 2023 को किया गया जिसका उद्घाटन माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी ने किया था। चर्चाओं में निम्नलिखित कुछ मुद्दों पर विचार–विमर्श किया गयाः

• भारतीय ज्ञान प्रणालियाँ सदियों से चली आ रही हैं, लेकिन पश्चिमी सोच के प्रभाव में आ गई हैं। मौजूदा जनमानस की मानसिकता में बदलाव लाने और भारतीय ज्ञान प्रणाली के बारे में जन–जागरूकता पैदा करने की आवश्यकता है।

• प्राचीन ज्ञान भंडार के पुनरुद्धार के कार्य में चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है जैसे आधुनिक समय में ज्ञान की प्रामाणिकता, सामग्री की गुणवत्ता और प्रासंगिकता को बनाए रखना।

• भारतीय ज्ञान प्रणाली पहलों को बढ़ावा देने के लिए पर्याप्त धन की उपलब्धता ताकि आधुनिक चुनौतियों का समाधान किया जा सके और छात्रों एवं इच्छुक व्यक्तियों में सांस्कृतिक विरासत, बौद्धिक विकास और आत्मविश्वास पर गर्व को बढ़ावा दिया जा सके।

• स्कूलों और उच्च शिक्षा संस्थानों में भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित पाठ्यक्रम को शामिल करना।

• भारतीय ज्ञान प्रणाली के क्षेत्र में संकाय प्रशिक्षण।

भारतीय ज्ञान प्रणाली संबंधी तमाम लक्ष्यों, कार्य योजनाओं के सफल कार्यान्वयन, भारत के समृद्ध पारंपरिक ज्ञान और विरासत के विभिन्न पहलुओं को बढ़ावा देने, संरक्षित करने और प्रसारित करने के उद्देश्य से भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय के तहत अक्तूबर 2020 में भारतीय ज्ञान परंपरा विभाग स्थापित किया गया है।

विज्ञान–लेखन की अवधारणा

विज्ञान–लेखन का अर्थ है, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के सभी क्षेत्रों से संबंधित जानकारी व शोध–उपलब्धियों को सभी की जानकारी के लिए अक्षरबद्ध करना। यह विज्ञान के मूलभूत चिंतन, वैज्ञानिक उपलब्धियों और शोध से संबंधित लेखन विधा है। इसका मूल उद्देश्य वैज्ञानिक चेतना जगाते हुए वैज्ञानिक सिद्धांतों, खोज व उपलब्धियों को प्रामाणिकता व स्पष्टतापूर्वक प्रस्तुत करना होता है। स्पष्ट है कि यह ज्ञान–प्रसार और शोध की केंद्रीय विधा है। वैज्ञानिक लेखन का मूल उद्देश्य किसी विचार, तथ्य या खोज को इस प्रकार प्रस्तुत करना है कि वह स्पष्ट, प्रमाणित और वैश्विक स्तर पर स्वीकार्य हो।

वैज्ञानिक उन्नति का अवबोध भावी पीढ़ियों को कराने और जीवन–व्यवहार में ज्ञान परंपरा के विकास को जारी रखने और सुनिश्चित कराने में विज्ञान–लेखन, शिक्षण–प्रशिक्षण और प्रेरणा की बड़ी भूमिका है। अवबोध के मुख्य पहलुओं में प्रकृति की समझ, ज्ञान–प्राप्ति, जागरूकता, क्रमिक विकास के पहलू शामिल होते हैं। इस क्रम को बनाए रखने की दृष्टि से वैज्ञानिक चिंतन व आविष्कारों, अनुसंधान के प्रयासों को अक्षरबद्ध करने की प्रक्रिया द्वारा ही विज्ञान–लेखन कहते हैं। विज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधानरत वैज्ञानिकों द्वारा अपने अनुसंधान की दिशा तय करने में विज्ञान–लेखन की निरंतरता उपयोगी है। शिक्षा जगत में अध्ययन–अध्यापन की पुस्तकें, शैक्षिक–सामग्री आदि के विकास में विज्ञान–लेखन की बड़ी भूमिका होती है। सामान्य जनता के लिए सुलभ और समझने योग्य तरीके से प्रस्तुत करने की दृष्टि से भी पत्र–पत्रिकाओं, पुस्तकों में विज्ञान–लेखन किया जाता है। यह वैज्ञानिक अवधारणाओं को सरल भाषा में समझाने, वैज्ञानिक खोजों और आविष्कारों को लोकप्रिय बनाने और वैज्ञानिक साक्षरता को बढ़ावा देने का भी एक महत्त्वपूर्ण तरीका है।

मौखिक रूप से अभिव्यक्त बातें अक्षरबद्ध होने से भावी पीढ़ियों तक विज्ञान का ज्ञान हस्तांतरित करने में विज्ञान–लेखन सहायक होता है। बहुभाषी समुदाय में इस रूप में अक्षरबद्ध ज्ञान किसी एक भाषा तक सीमित न होकर जन–जन तक पहुँचने के लिए कई भाषाओं में प्रसारित होना अपेक्षित है। दुनिया में लगभग छह हजार से अधिक भाषाएँ हैं जिनमें एक तिहाई भाषाएँ भारत में ही हैं। सहस्राब्दियों से भारतवर्ष में विकसित ज्ञान संस्कृत में वाङ्मय परंपरा में सुरक्षित रहा है जिसे संहिताबद्ध कर

समझ विकसित करने के कई प्रयास हुए हैं। आधुनिक समय में वैज्ञानिक उन्नतियों के लेखन के लिए अंग्रेजी प्रचलित भाषा बन गई है। लेकिन यह अंग्रेजी के व्यावहारिक भाषा के रूप में प्रयोग के अलावा अंग्रेज़ों के औपनिवेशिक सत्ता के तहत कई दशकों, सदियों तक झेलनेवाले देशों के संदर्भ में ही सही है। रूस, चीन, जापान, जर्मनी, फ्रांस, कोरिया जैसे राष्ट्र अपनी वैज्ञानिक उपलब्धियों का ज्ञान अपने राष्ट्र के नागरिकों के लिए अपनी ही भाषाओं में प्रसारित कर रहे है। जिस जगह जो भी वैज्ञानिक खोज व आविष्कार होते हैं, उनका आरंभिक उल्लेख उस प्रांत की प्रचलित व्यावहारिक भाषा में होने के बावजूद उनका अनुवाद दुनिया की प्रमुख संपर्क भाषाओं में निरंतर होता रहा है। भारतीय ज्ञान परंपरा की उपेक्षा के कारणों का विश्लेषण करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि कई भाषाओं व बोलियों के विस्तार व प्रसार के बीच संस्कृत का व्यवहार कम होना भी इसका प्रमुख कारण रहा है। पश्चिमी दृष्टिकोण को अपनाने से कई गुणा इस चिंतन की उपेक्षा हुई है। मैकाले की शिक्षा पद्धति इस उपेक्षा का प्रमुख कारण है, तत्पश्चात् सुधार की ओर हमने ध्यान नहीं दिया है। आज भारतीय भाषाओं के माध्यम से भारतीय ज्ञान परंपरा को प्रतिष्ठित कर भारतवर्ष वैज्ञानिक उन्नति में पुनः अतीत का वैभव हासिल कर 'विश्व गुरु' की संज्ञा को सार्थक बना सकता है।

विज्ञान–लेखनः भारतीय ज्ञान परंपरा का परिप्रेक्ष्य

लिपि की खोज और लेखन के आरंभ से पूर्व ही भारतवर्ष अनादिकाल से वाङ्मय परंपरा के ज्ञान–प्रसारण में सक्रिय है। लेखन की शुरुआत के बाद भारत में विज्ञान–लेखन कई रूपों में सदियों से होता रहा है। लेखन से पूर्व काफी लंबे दौर तक वैज्ञानिक विकास के चिंतन में उस परंपरा की ओर ध्यान देना भी अपेक्षित है जिसकी वैज्ञानिक जीवन–व्यवहार में नींव की भूमिका रही है। प्रेक्षण से और गहन चिंतन से उन्नत खोज में सहायक प्रणाली से प्रतिष्ठित भारतीय ज्ञान परंपरा का विशिष्ट महत्त्व है। मगर विगत एकाध सदियों में इसे उतना महत्त्व नहीं दिया गया है। अधिकांश लेखन पश्चिमी वैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधार पर लिखे जाते रहने के कारण भारतीय वैज्ञानिक उपलब्धियों और ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में भारत के योगदान की उपेक्षा होती रही है। आज हमें यह ध्यान देना जरूरी है कि भारतीय चिंतन व दर्शन ने कई दृष्टियों से वैश्विक वैज्ञानिक चिंतन व उन्नति में योगदान दिया है। भारतीय ज्ञान परंपरा के महत्त्व को स्थापित करते हुए हमें विज्ञान–लेखन करने की आवश्यकता है। भारत की वर्तमान पीढ़ियों को अपने राष्ट्र के चिंतकों के योगदान के महत्त्व को समझने और वैज्ञानिक उपलब्धियाँ हासिल करने, वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय अनुसंधान की दिशा में अग्रसर होने की प्रेरणा मिलेगी। आधुनिक वैज्ञानिक उपलब्धियों में भारतीय चिंतन के योगदान का मूल्यांकन करने के प्रयासों के साथ–साथ वैज्ञानिक

दृष्टिकोण के प्रति निरंतर प्रतिबद्धता का विकास संभव हो पाएगा। कई राष्ट्र अपनी भाषा में ही चिंतन, अध्ययन, शिक्षण–प्रशिक्षण व अनुसंधान करते हुए बड़ी वैज्ञानिक प्रगति हासिल कर रहे हैं। औपनिवेशिक शासन के दौर से भारत में इन क्षेत्रों में अंग्रेजी का बोल–बाला है, भारतीय भाषाएँ कई रूपों में उपेक्षित रह गई हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा की दृष्टि से वैज्ञानिक उपलब्धियों का लेखन हमें तमाम भारतीय भाषाओं में करने की दिशा में पहल करने की आवश्यकता है। नवोन्मेषी खोज–दृष्टियों के विकास में भारतीय ज्ञान परंपरा मददगार ही नहीं, उत्प्रेरक हो सकती है। 'लोका समस्ता सुखिनोभवंतु' के भारतीय लोकहितकारी चिंतन का फायदा समूची दुनिया को दिलाने के लिए उचित प्रयास करने में हमारी परंपरा उपयोगी है। अपनी इस सोच में ही गहन व विशिष्ट दृष्टिकोण को अपनाकर हम लोकहित सुनिश्चित कर सकते हैं।

भारतीय ज्ञान परंपरा के आलोक में कुछ ही ऐसे लेखन सामने आ रहे हैं जिनमें भारतीय ज्ञान परंपरा को आधुनिक वैज्ञानिक उपलब्धियों के साथ तुलना करते हुए भारतीय वैदिक ज्ञान की प्राचीनता और प्रामाणिकता व प्रासंगिकता को सिद्ध करने के प्रयास हो रहे हैं। भारतीय ज्ञान प्रणाली के गहन अध्ययन और वर्तमान संदर्भ में उसके अनुप्रयोगों की दिशा में दुनिया को प्रेरित करने की दृष्टि में यह पहल अत्यंत ही आवश्यक है।

भारत बहुभाषी देश है। भारत की कुछ बहुप्रचलित भाषाओं में प्रकाशित होने वाली विज्ञान की पत्रिकाएँ हजारों हैं– विज्ञान और प्रौद्योगिकी के निरंतर विकास की वजह से आज कई विषय–क्षेत्र विकसित हो गए हैं। कुछ पत्रिकाएँ विज्ञान–प्रौद्योगिकी के निश्चित विषय–क्षेत्र पर केंद्रित हैं और कुछ तो कई विषय–क्षेत्रों से संबंधित सामान्य विज्ञान की पत्रिकाएँ हैं। इनके अलावा समाचारपत्रों और पत्रिकाओं में भी स्तंभ, फीचर, परिशिष्ट आदि प्रकाशित हो रहे हैं। इन पत्रिकाओं में कतिपय पत्रिकाएँ पहले से ही भारतीय चिंतन दृष्टि को महत्त्व देती रही हैं। कई पत्रिकाएँ इस ओर जो ध्यान नहीं दे रही थीं, अभी किसी हद तक भारतीय ज्ञान परंपरा को अपने पन्नों में जगह दे रही हैं।

हिंदी में प्रकाशित होने वाली कुछ विज्ञान–विषयक पत्रिकाओं की संक्षिप्त सूची इस प्रकार है– 'विज्ञान प्रगति', 'विज्ञान खेती', 'आविष्कार', 'विज्ञानदूत', 'पर्यावरण', 'विज्ञान प्रवाह', 'चकमक', 'विज्ञान गरिमा सिंधु', 'विज्ञान वीथिका', 'विज्ञान बंधु', 'जिज्ञासा', 'पर्यावरण डाइजेस्ट', 'विज्ञान क्षितिज', 'डाउन टाउन एक्सप्रेस', 'विज्ञान जगत', 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए', 'ज्ञान गरिमा सिंधु', 'विज्ञान प्रकाश', 'स्पेस इंडिया', 'विज्ञान गंगा', 'पर्यावरण', 'प्रसार दूत', 'ड्रीम 2047', 'पर्यावरण ऊर्जा टाइम्स', 'विज्ञान आपके लिए', 'विज्ञान आलोक', 'तरंग', 'विज्ञान कथा', 'ऊर्जायन', 'ज्ञान–विज्ञान बुलेटिन', 'साइंस इंडिया', 'विज्ञान गंगा' आदि।

जैसे कि पहले चर्चा की गई है, इन पत्र–पत्रिकाओं में एक सामान्य अवलोकन यह भी है कि अधिकांश पत्रिकाएँ जो मानक और स्तरीय हैं, जिनमें केवल पश्चिमी दृष्टिकोण से ही विज्ञान का विवेचन देखने को मिलता है, आजकल धीरे–धीरे भारतीय जान परंपरा की ओर इनका ध्यान जा रहा है। गुरुकुल कांगड़ी की अंतरराष्ट्रीय वैदिक शोध पत्रिका वेदों की सही परिप्रेक्ष्य में व्याख्या करने के प्रयास के रूप में संस्कृत, हिंदी व अंग्रेजी में विज्ञानपरक लेखन को संबल दे रही है। इस प्रकार के प्रयासों को बढ़ाने की आवश्यकता है।

हिंदी व भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन– चुनौतियाँ और समाधान

भारतीय ज्ञान परंपरा की गरिमा इस बात में है कि यह न केवल अतीत की बौद्धिक संपदा है, बल्कि आधुनिक विज्ञान–लेखन के लिए भी एक प्रेरणा–स्रोत है। वैज्ञानिक लेखन में पारंपरिक सूत्रों की सटीकता, तर्क की मजबूती के साथ अभिव्यक्ति जितनी महत्त्वपूर्ण है भाषा की स्पष्टता का भी उतना ही महत्त्व है। वैश्विक स्तर पर विज्ञान जगत में भारत की ज्ञान प्रणाली और परंपरा को एक विशिष्ट व प्रामाणिक पहचान स्थापित करने की दिशा में जो चूक हुई थी, उसी दिशा में विदेशी भाषाओं में हमारी वैज्ञानिक उपलब्धियों का लेखन कर सकते हैं। वैज्ञानिक दृष्टि के विकास में भारतीय ज्ञान प्रणालियों की चेतना के विकास के लिए हमें भारतीय भाषाओं के माध्यम से वैज्ञानिक लेखन के लिए व्यवस्थित उद्यम करने की आवश्यकता है। इस दिशा में हमें सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी, सामाजिक माध्यम, कृत्रिम बुद्धिमता और वेब का भरपूर प्रयोग करने की आवश्यकता है। विद्यार्थियों तथा नागरिकों में वैज्ञानिक चेतना के साथ–साथ अपनी परंपरा के प्रति श्रद्धाभाव के विकास में ऐसे प्रयास कुछ हद तक सार्थक परिणाम दे पाएँगे। सभी प्रचलित भारतीय भाषाओं में युद्धस्तर पर तकनीक एवं वैज्ञानिक शब्दावली के विकास की आवश्यकता है। वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग ने विभिन्न विषयों में लगभग 250 शब्दावलियों का विकास किया है। अद्यतन ज्ञान–विज्ञान एवं भारतीय ज्ञान प्रणाली एवं परंपरा की दृष्टि से शब्दावली को सुसमृद्ध करने की दृष्टि से आयोग को युद्धस्तर पर कार्य करना होगा। परंपरागत रूप से अधिकांश अंग्रेजी के माध्यम से उच्च शिक्षा दी जाने के कारण उत्पन्न चुनौतियों को समाप्त करने की दृष्टि से सभी ज्ञान–विज्ञान, प्रौद्योगिकी क्षेत्रों की शिक्षा प्रचलित भारतीय भाषाओं में दिए जाने की दिशा में अग्रसर होना अपेक्षित है।

भारतीय ज्ञान प्रणाली व परंपरा से समूची सृष्टि के समक्ष उपस्थित तमाम समस्याओं के लिए समाधान खोजने की दिशा तय करने हेतु विज्ञान लेखन को पहल करने की आवश्यकता है। इस दिशा में चेतना जगाने की पहल करने के साथ–साथ उच्चतर शिक्षा–संस्थानों द्वारा भारतीय भाषाओं के माध्यम से कम से कम कार्यक्षेत्र की क्षेत्रीय भाषाएँ और हिंदी सहित संभावित अन्य भाषाओं में विज्ञान विषय की पुस्तकों

का प्रकाशन करते हुए उसमें भारतीय ज्ञान परंपरा के परिप्रेक्ष्य में उपलब्धियों और संभावनाओं का विवेचन करने से निश्चय ही भारतीय परंपरा की दृष्टि से भारत में वैज्ञानिक चेतना की पुनः प्रतिष्ठा होगी ।

भारतीय ज्ञान प्रणाली और परंपरा की चेतना के साथ भारतीय वैज्ञानिक लेखन की आज बड़ी आवश्यकता है। समूचे भारतीय भाषाओं के माध्यम से ऐसे प्रयास होने के साथ–साथ दुनिया की प्रमुख भाषाओं में भी भारतीय ज्ञान परंपरा की आधुनिक दुनिया में प्रासंगिकता साबित करने की दृष्टि से लेखन–प्रकाशन भी हमें सुनिश्चित करने की दिशा में कदम उठाने होंगे। दुनिया के समक्ष उपस्थित समस्याओं के लिए भारतीय ज्ञान प्रणाली के परिप्रेक्ष्य में कारगर समाधान हमें देने होंगे। भारतीय विज्ञान लेखन की सार्थकता इन्हीं प्रयासों से सिद्ध हो सकती है। आइए, हम चिंतित दिशा में विज्ञान–लेखन को प्रवृत्त करने के आंदोलन शुरू करें और विज्ञान से दुनिया की समस्त समस्याओं का समाधान करें।

संदर्भ–

1. म.म. श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी (1960), वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति, बिहार–राष्ट्रभाषा–परिषद, पटना।
2. डॉ. शिवगोपाल मिश्र (2001), स्वतंत्रता–पूर्व हिंदी में विज्ञान–लेखन, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली।
3. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार।
4. https://www.education.gov.in_sites_upload_filesèmhrd_files_nep_ABSS_Report_Session_15.pdf

❑❑❑

भारत के मुख्य पंचाङ्ग, काल–गणना व भ्रांति

✍ **संजय गोस्वामी**

विदेशी लेखक अल बरुनि तथा मुगल अकबर के दरबारी अबुल फजल तक भारतीय कालगणना विश्वप्रसिद्ध थी और उन लोगों ने महाभारत, श्रीहर्ष शक, विक्रम संवत् आदि की गणना का वर्णन किया है। अकबर के दीन–ए–इलाही का आरंभ युधिष्ठिर शक में लिखा गया। पर अंग्रेजी शासन काल में प्रचार हुआ कि भारतीय लोग तिथि नहीं देते थे तथा सिकंदर आक्रमण के समय 326 ई.पू. से भारतीय इतिहास का कालक्रम आरंभ कर दिया। उस समय मगध में आंध्र वंश का अंत और गुप्त राज्य का आरंभ हो रहा था जिनके 5 राजाओं का उल्लेख ग्रीक लेखकों ने किया है, पर सभी 5 को चंद्रगुप्त मौर्य बना कर 1300 वर्षों का इतिहास नष्ट कर दिया। जितने राजाओं ने वर्ष गणना (कैलेंडर) आरंभ किया, उनको काल्पनिक घोषित कर दिया। अभी पर्व त्यौहार विक्रम संवत् के अनुसार मनाए जाते हैं, अतः विक्रमादित्य को काल्पनिक बनाया। भगवान् राम और श्रीकृष्ण के बाद उज्जैन के परमार वंशी सम्राट विक्रमादित्य के नाम पर सबसे अधिक साहित्य है, पर उसके बदले चंद्रगुप्त द्वितीय को नकली विक्रमादित्य घोषित कर दिया। पुरातत्त्व खोज में जो भी ईंट या पत्थर मिलता है, उसे बिना जाँचे गुप्त काल का घोषित कर देते हैं जिससे वह 'स्वर्ण युग' बन गया है। 78 ई. में विक्रमादित्य के पौत्र शालिवाहन द्वारा आरंभ शक को कश्मीर के गोनंद वंशी राजा कनिष्क के नाम पर कर दिया जिनका देहांत राजतरंगिणी के अनुसार 1350 वर्ष पूर्व 1272 ई.पू. में हो चुका था। शक का अर्थ नहीं समझने के कारण उसे विदेशी शक जाति का घोषित कर दिया। विक्रमादित्य के एक नवरत्न कालिदास ने ज्योतिर्विदाभरण में ग्रंथ निर्माण और समाप्ति की तिथियाँ दी हैं (3068 कलि = 34 ई.पू.)। अतः इस ग्रंथ को 1168 ई. का बता कर इसे जाली घोषित किया जो संवत् के अज्ञान के कारण है। पर केवल इसी से पता चलता है कि कालिदास ने 3 महाकाव्य भी लिखे थे। इसे जाली कहने पर कालिदास का ही अस्तित्व नहीं है। इसके विपरीत ग्रीस या रोम में विक्रम संवत् के पूर्व कोई कैलेंडर नहीं था तथा टालेमी ने राजाओं के शासन–काल जोड़ कर वर्ष गणना की है। इसमें हर 100 वर्ष में 2–3 वर्ष की भूल होती थी। पर वे लोग बिना किसी कैलेंडर के तिथि कैसे देते थे, यह नहीं बताया। आज तक यह रहस्य ही है कि सिकंदर काल के ग्रीक लेखकों को यह कैसे पता चला कि 326 वर्ष बाद ईस्वी

सन् आरंभ होने वाला है। भारत के गाँवों के अशिक्षित लोग भी पंचाङ्ग देखना जानते हैं, किंतु भारतीय विद्या भवन के 19 खंड के इतिहास में शक या संवत् शब्दों का प्रयोग भी नहीं हुआ है।

शक और संवत्– शक वर्ष गणना का शक जाति से कोई संबंध नहीं है। कैलेंडर आरंभ करने वाले हर भारतीय राजा युधिष्ठिर, शूद्रक, श्रीहर्ष, विक्रमादित्य, शालिवाहन आदि को शक–कर्ता कहा गया है। सभी ज्योतिष लेखक इनको उद्धृत भी करते हैं, पर पुनः अंग्रेज भक्ति में शालिवाहन शक को एकमात्र शक मान कर उसे विदेशी कनिष्क का कहते हैं। चंद्रमा मन का स्वामी है, मानसिक रोग चंद्र की कला के अनुसार होते हैं, पूर्णिमा के समय रोग बढ़ते हैं। इसे रोकने के लिए 11–12 तिथि संधि पर उपवास करते हैं, अर्थात् जिस एकादशी तिथि को सूर्यास्त से पूर्व द्वादशी आरंभ हो उस दिन। अंग्रेजी में भी पागल को ल्यूनेटिक कहते हैं (ल्यूनर = चंद्र संबंधित)। अतः हमारे पर्व त्योहार चांद्र तिथि के अनुसार होते हैं। तिथि गणना को संवत्सर या संक्षेप में संवत् कहते हैं। संवत्सर = सम् + वत् + सरति; अर्थात् जिसके अनुसार समाज चलता है। तिथि गणना में कठिनाई यह है कि यह क्रमागत दिनों में नहीं होती है। पंचमी (5) के बाद 5, 6, या 7 तिथि भी हो सकती है। अतः दिनों की क्रमागत गणना के लिए अन्य कालगणना का प्रयोग होता है जिसे शक कहते हैं। इसमें सौर वर्ष, मास और दिन गणना होती है जिससे ग्रह गति आदि की गणना में सुविधा होती है। विश्व की हर भाषा में कुश 1 का चिह्न है। 1–1 कर जोड़ने से उसका गठ्ठर शक्तिशाली होता है, अतः उसे शक कहते हैं। इंद्र को भी शक्तिशाली अर्थ में शक्र कहते थे। शक्र का अन्य अर्थ है शत–क्रतु = 100 वर्ष यज्ञ या शासन करने वाला। कुश या स्तंभ आकार के बड़े वृक्षों को भी शक कहते थे, जैसे उत्तर भारत में साल (शक या सखुआ) तथा दक्षिण भारत में टीक (शकवन = सागवान)। आस्ट्रेलिया में भी स्तंभ जैसे 300 प्रकार के युकलिप्टस वृक्ष हैं, अतः उसे शक द्वीप कहते थे। दक्षिण यूरोप और मध्य एशिया की बिखरी जातियाँ मिलकर शक्तिशाली हो गई थीं, अतः उनको भी शक कहते थे। कालिदास के ज्योतिर्विदाभरण (22/17) में रोम के जुलियस सीजर को भी शक राजा कहा है जिसे विक्रमादित्य ने सीरिया युद्ध में पराजित कर बंदी बनाया था। इसे छिपाने के लिए रोमन लोगों ने 5 प्रकार की झूठी कहानियाँ बनाईं। उस परंपरा में आज तक अंग्रेज इतिहास नष्ट करने में लगे हुए हैं।

पंचाङ्ग–नासा के कैलेंडर सॉफ्टवेयर से गणना करने पर 5000 वर्ष पुरानी तिथि में 68 घंटे की भूल होती है तथा 7000 वर्ष पुरानी गणना में प्रायः 7 दिन की भूल। पर भारत में दीर्घकालिक गणना 12,000 वर्ष के चक्र में होती है। इसी चक्र में ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य ने बीज–संस्कार (संशोधन) का वर्णन किया है। संशोधन का कारण इन लोगों ने आगम या परंपरा कहा है जिसका आधार उनको ज्ञात नहीं था। इसका

मुख्य कारण है कि 12–12 हजार वर्ष के अवसर्पिणी (सत्य से कलि युग) तथा उत्सर्पिणी (कलि से सत्य युग) के 2 'चक्र' 24,000 वर्ष के होते हैं। पर अयन चक्र (पृथ्वी अक्ष की लट्टू की तरह गति) 26,000 वर्ष का है। यह ऐतिहासिक युग है। ज्योतिषीय युग इसका 360 गुणा है जिसमें शनि तक के ग्रहों की पूर्ण परिक्रमा होती है। अतः शनि कक्षा तक क्षेत्र को सूर्य रथ का चक्र कहा गया है (विष्णु पुराण, 2/8 आदि)। गणना की अशुद्धि की जाँच के लिए देखते हैं कि उसके अनुसार वार क्या आ रहा है। यदि उसमें 1–2 वार का अंतर है, तो दिन संख्या उसके अनुसार घटाते या बढ़ाते हैं, इसे वार शुद्धि कहते हैं। अधिक शुद्धि के लिए कुल 5 गणना करते हैं–तिथि, वार (क्रमागत दिन अनुसार), नक्षत्र, योग, करण। अतः इस पद्धति को पंचाङ्ग कहते हैं। इसके अतिरिक्त ग्रह गति तथा स्थानीय लग्न–मुहूर्त का भी वर्णन भी किया जाता है, अतः उसे कुछ लोगों ने सप्ताङ्ग नाम दिया है।

पंचाङ्ग गणना–जब सूर्य–चंद्र पृथ्वी से एक दिशा में होते हैं, उसे अमावास्या (एक साथ वास) कहते हैं। इस समय चंद्र का अंधकार भाग हमारी तरफ होता है। चंद्र निकट होने के कारण उसकी कोणीय गति सूर्य से अधिक है, अतः वह सूर्य से आगे निकलता है और उसका प्रकाशित भाग बढ़ता है, जिसे शुक्ल पक्ष कहते हैं। जब वह सूर्य की विपरीत दिशा अर्थात् 180 अंश दूर होता है, तब पूर्णिमा तिथि होती है। यह 15 दिन से थोड़ा कम है, अतः इसमें 15 तिथि की गणना करते है। अतः हर तिथि में चंद्र– सूर्य का अंतर 12 अंश होगा। तिथि निकालने के लिए चंद्र–सूर्य अंतर को 12 से भाग देते हैं, पूर्ण संख्या गत तिथि है, उसके बाद वाली संख्या वर्तमान तिथि होगी। तिथि का आरंभ किसी समय हो सकता है, पर व्यवहार में स्थानीय सूर्योदय के समय जो तिथि होगी, उसे ही आगामी सूर्योदय तक तिथि मानते हैं। पूर्णिमा के बाद चंद्र का प्रकाशित भाग कम होने लगता है, और अमावास्या तक पूरा लुप्त हो जाता है। इसे कृष्ण पक्ष कहते हैं। इसकी तिथि गणना के लिए चंद्र–सूर्य अंतर 180 अंश से जितना अधिक (बहुल) हुआ, उसमें 12 से भाग देते हैं। इसमें अंतिम अमावास्या को पूर्णिमा से अलग दिखाने के लिए 15 के स्थान पर 30 लिखते हैं। शुक्ल पक्ष गणना शुद्ध–दिवस की है, जिसे संक्षेप में सुदी कहते हैं, कृष्ण पक्ष के बहुल दिवस को बदी। अतः गणित के अनुसार कृष्ण पक्ष से मास का आरंभ होता है, और शुक्ल पक्ष से अंत। कलियुग के 3044 वर्ष बाद 26,000 वर्ष के अयन चक्र के कारण ऋतु–चक्र 1.5 मास पीछे हो गया था। 1 मास का अंतर = 26000/12 = प्रायः 2167 वर्ष। अतः विक्रमादित्य ने शुक्ल पक्ष के बदले कृष्ण पक्ष से मास आरंभ किया। किंतु अधिक मास या वर्ष आरंभ में परिवर्तन नहीं होने दिया। इस कारण चैत्र मास का प्रथम भाग (कृष्ण पक्ष) वर्ष के अंत में आता है तथा द्वितीय भाग में परंपरा अनुसार चैत्र शुक्ल पक्ष से नया वर्ष का आरंभ होगा। इसकी नकल में 46 ई. पू. के जुलियन कैलेंडर में जनवरी

से वर्ष आरंभ हुआ क्योंकि जूनो देवी आगे तथा पीछे दोनों तरफ देखती थी। शान्ति पाठ में भी कहते हैं–*अदितिर्जातम्, अदितिर्जनित्वम्।* कश्यप के समय पुनर्वसु नक्षत्र से वर्ष का अंत और नये वर्ष का आरंभ होता था, अतः पुनर्वसु का देवता अदिति कहा गया। जिस मास में सूर्य उत्तरायण गति में विषुव रेखा पर होता है, उस मास से वर्ष का आरंभ होता है। सरल गणना के लिए सावन वर्ष में 30–30 दिनों के 12 मास गिनते थे, अर्थात् 360 दिन। बचे 5 दिनों को पांचरात्र कहते थे। कभी कभी 6 दिन अतिरिक्त होते थे जिनको षडाह कहते थे। अतः वृत्त में 360 अंश मानते हैं, सूर्य की दैनिक गति प्रायः 1 अंश होगी।

चंद्रमा पृथ्वी की परिक्रमा 27.3 दिन में करता है, अतः उसके कक्षा पथ (क्रांति वृत्त) के 360 अंश को 27 से भाग दे कर 27 नक्षत्र मानते हैं। चंद्र कक्षा दक्ष–वृत्त है, नक्षत्र उसकी 27 पुत्रियाँ हैं। नक्षते = साथ रहता है, चंद्रमा 1 दिन 1 नक्षत्र के साथ रहता है। पूर्णिमा के दिन चंद्र जिस नक्षत्र में रहता है, उसके अनुसार चांद्र मास का नाम होता है–चित्रा नक्षत्र से चैत्र मास, विशाखा से वैशाख आदि।

अमावास्या से आगामी अमावास्या तक गणित के अनुसार चांद्र मास होता है। चंद्र परिक्रमा 27.3 दिन में पूरी होती है, किंतु तब तक सूर्य भी प्रायः 2.2 अंश आगे निकल जाता है, अतः उसके साथ पहुँचने में चंद्रमा को 29.5 दिन लगते है। 1 सौर वर्ष = 365.22 दिन में 12 चांद्र मास 354 या 355 दिन में होते हैं। इस कारण 360 अंश के चक्र में 12 राशि हैं। सौर वर्ष में 11 दिन अधिक होते हैं, अतः वेदाङ्ग ज्योतिष में प्रति अर्ध वर्ष में 11 दिनार्ध (करण) जोड़ते थे। प्रायः 30 या 31 मास में 1 चांद्र मास अधिक हो जाता है। जिस मास में सूर्य का राशि परिवर्तन (संक्रांति) नहीं होती है, उसे अधिक मास कहा जाता है। उसके पूर्व का जो शुद्ध मास होता है, उसी नाम का अधिक मास होगा। विक्रम संवत् में पिछले मास के कृष्ण पक्ष को वर्तमान मास के शुक्ल पक्ष से जोड़ते हैं। अतः इसके अधिक मास में एक मास का कृष्ण पक्ष और आगामी मास का शुक्ल पक्ष होगा।

दिन–रात के आधे भाग में कार्य होता है, जिसे करण कहते हैं। अतः तिथि के 1/2 भाग को करण कहा गया है। चांद्र मास की 30 तिथि में 60 करण होते है। इसमें सप्ताह के 7 वार की तरह 7 करण 8 बार आते हैं जिनको चल करण कहते हैं। इसका सप्तम करण भद्रा (शुभ) या विष्टि (अंतिम, विष्टा) है। यह छुट्टी जैसा है, जिसमें नया कार्य आरंभ नहीं करते है। किंतु भद्रा का अर्थ शुभ है। 8 चक्र में 56 चल–करण हुए; बचे हुए 4 करण स्थिर करण हैं जिनका आरंभ कृष्ण चतुर्दशी के द्वितीय करण से होता है।

तिथि के लिए चंद्र–सूर्य का अंतर निकालते हैं। इनका योग कर योग निकालते हैं जिसका चक्र 25 दिन में होता है। इस अवधि में 27 नक्षत्र की तरह 27 योग होते हैं। इनका प्रयोग मुहूर्त आदि के लिए है।

भारत के मुख्य पंचाङ्गः

• **ब्रह्मा**—29102 ई.पू. में स्वायंभुव मनु (ब्रह्मा) के समय अभिजित् नक्षत्र से वर्ष आरंभ होता था। इसमें 27 दिन की चांद्र गति के लिए 27 नक्षत्र और 0.3 दिन की गति के लिए 28वाँ अभिजित् नक्षत्र जोड़ते थे जिसका स्वामी ब्रह्मा या प्रजापति है। कार्तिकेय के समय पृथ्वी के उत्तरी ध्रुव की दिशा अभिजित् नक्षत्र से दूर चली गई, अतः उस समय के ब्रह्मा (वाणी—हिरण्यगर्भ पुत्र अपांतरतमा) की सलाह से अभिजित् के पूर्व नक्षत्र धनिष्ठा से संवत्सर का आरंभ हुआ। (महाभारत, वन पर्व, 230/8—10)। उस समय धनिष्ठा नक्षत्र से वर्षा आरंभ होती थी, अतः संवत्सर को वर्ष कहा गया। भारत को भी वर्ष कहते हैं क्योंकि यह हिमालय के कारण एक वर्षा क्रम का क्षेत्र है। हिमालय वर्ष पर्वत है। इतना व्यवस्थित क्षेत्र केवल भारत है जो हिमालय के कारण उत्तर ध्रुव के हिम युग से प्रभावित नहीं हुआ। इस कारण भारत में सनातन सभ्यता रही। यह 15800 ई.पू. में हुआ। धनिष्ठा नक्षत्र या माघ मास से वर्ष आरंभ वेदाङ्ग ज्योतिष में होता था। ब्रह्मा के पंचाङ्ग में वर्ष के उत्तरायण—दक्षिणायन भाग 6—6 मास के होते थे (गीता, 8/24—26)। अयन के पुनः 2 भाग होते थे—विषुव के उत्तर और दक्षिण 3—3 मास। 0—12 अंश तक 1 मास, 12—20 अंश तक द्वितीय मास, 20—24 अंश तक तृतीय मास। यही पद्धति पुराने इथियोपियन बाइबिल (प्रायः 1700 ई. पू.) में इनोक (हनूक या हनुमान्) पुस्तक में है।

• **कश्यप**—प्रायः 17500 ई.पू. में अदिति के पुनर्वसु नक्षत्र में विषुव संक्रांति से वर्ष आरंभ होता था।

• **वैवस्वत मनु**—13902 ई.पू. से चैत्र मास से वर्ष आरंभ हुआ। इसका सिद्धांत मनु के पिता विवस्वान् (सूर्य) ने किया था। विष्णु धर्मोत्तर पुराण (82/7—8) के अनुसार मत्स्य अवतार 9533 ई.पू. में हुआ जब दोनों मतों से प्रभव वर्ष था। उस काल के जल प्रलय से वर्ष गणना में त्रुटि हो रही थी, अतः सतयुग अंत से 121 वर्ष पूर्व मय असुर ने 9223 ई.पू. में इसमें संशोधन किया। यह रोमक पत्तन (मोरक्को का पश्चिम तट) के अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन जैसा था।

• **इक्ष्वाकु**—तन्जावुर मंदिर अभिलेखों के अनुसार एनी बेसंट ने इनका अभिषेक काल 1—11—8576 ई. पू. निर्धारित किया है।

• परशुराम का कलम्ब संवत् 6177 ई.पू. में आरंभ हुआ जो केरल में कोल्लम के नाम से चल रहा है। भारतीय गणना को उद्धृत कर ग्रीक लेखकों ने कहा है कि इनसे 15 पीढ़ी या 600 वर्ष पूर्व 6777 ई.पू. में बाक्कस का आक्रमण हुआ था।

• **युधिष्ठिर काल के 4 कैलेंडर**—(क) उनका अभिषेक 17—12—3139 ई.पू. में हुआ जिसके 5 दिन बाद उत्तरायण आरंभ होने पर माघ शुक्ल अष्टमी को भीष्म पितामह ने देह त्याग किया। इसका प्रयोग विक्रमादित्य तक के प्रायः सभी अभिलेखों

में है। (ख) शासन के 36 वर्ष से कुछ अधिक बीतने पर 17–2–3102 ई.पू. में भगवान् श्रीकृष्ण परमधाम गए तो कलियुग का आरंभ हुआ। उस दिन उज्जैन मध्यरात्रि के 2 दिन 2–30 घंटे बाद चैत्र मास का आरंभ हुआ। पंचाङ्गों में इसी से गणना होती है। (ग) इसके 6 मास 15 दिन बाद 25–8–3102 ई.पू. को जब विजय संवत्सर समाप्त हो कर जय संवत्सर आरंभ हुआ तो परीक्षित को राज्य दे कर पाण्डव अभ्युदय के लिए हिमालय गए। इस दिन से जयाभ्युदय शक आरंभ हुआ। इसका प्रयोग जनमेजय और उनके वंशजों ने किया है। (घ) कलियुग के 25 वर्ष बाद 3076 ई.पू. में युधिष्ठिर स्वर्ग गए तब सप्तर्षि मघा नक्षत्र से निकले और 2700 वर्ष का नया सप्तर्षि चक्र आरंभ हुआ। इस लौकिक वर्ष का राजतरंगिणी तथा कश्मीर में प्रयोग हुआ।

• **आर्यभट्ट**– इनकी पुस्तक का काल कलि आरंभ बाद गुरु वर्ष के 6 चक्र अर्थात् 360 कलि (2742 ई.पू.) में है। बाद में इसे ग्रीक नकल दिखाने के लिए इसे 3600 कलि अर्थात् 499 ई. कर दिया।

• **शिशुनाग शक**– 1954 ईपू में शिशुनाग के देहांत पर बर्मा (अब म्यांमार) में कौजाद (= नाग) वर्ष का आरंभ हुआ। इस शक में सिद्धार्थ बुद्ध के जीवन की घटनाएँ वर्णित हैं, जिनको फादर बिगण्डेट ने अपनी पुस्तक गौतम में उद्धृत किया है।

• **नन्द अभिषेक** 1634 ई.पू. में हुआ जिसका प्रायः सभी पुराणों में उल्लेख है। यह परीक्षित अभिषेक के प्रायः 1500 (1504) वर्ष बाद था। इसे पंच–शतोत्तर सहस्र लिखा है। पंचशतोत्तर को पंचाशतोत्तर कर अंग्रेजों (विलियम जोन्स और एरिक पार्जिटर) ने 1050 कर दिया।

• **शूद्रक शक**–असीरिया इतिहास के अनुसार वहाँ की रानी सेमिरामी ने अफ्रीका तथा मध्य एशिया के राजाओं की सहायता से 35 लाख सेना के साथ भारत पर आक्रमण किया। उसे रोकने के लिए विष्णु अवतार बुद्ध (मगध में अजिन ब्राह्मण के पुत्र) ने आबू पर्वत पर 4 राजाओं का संघ बनाया–परमार, प्रतिहार, चाहमान, चालुक्य। इनको अग्रणी होने के कारण अग्निवंशी कहा गया। 4 राजाओं के संघ का अध्यक्ष होने के कारण मालवा राजा इंद्राणीगुप्त को सम्मान के लिए शूद्रक कहा गया और 756 ई.पू. में उनका शक आरंभ हुआ।

• **चाप या चाहमान शक**–यह 612 ई.पू. में आरंभ हुआ जिसका प्रयोग वराहमिहिर (बृहत् संहिता, 13/3), कालिदास और ब्रह्मगुप्त ने किया है। ब्रह्मगुप्त ने इसे चापवंश (चपहानि या चौहान) का शक कहा है। इस समय उस राजा ने असीरिया की राजधानी निनेवे को पूरी तरह ध्वस्त कर दिया जिसका उल्लेख बाइबिल में 18 बार है। उस राजा को सिंधु पूर्व के मध्यदेश का राजा कहा गया है।

• **श्रीहर्ष शक**–मालव गण दुर्बल होने पर मालवा राजा श्रीहर्ष ने स्वतंत्र राज्य

स्थापित कर 456 ई.पू. में अपना शक आरंभ किया। 300 वर्ष तक के मालव गण को ग्रीक लेखकों ने 300 वर्ष का गणतंत्र काल कहा है।

- **विक्रम संवत्**–57 ई.पू. से।
- **शालिवाहन शक**–18 ई. से विक्रमादित्य के प्रपौत्र शालिवाहन द्वारा।

उपसंहार

विक्रम संवत् भारत के उत्तरी और पश्चिमी क्षेत्रों और भारतीय उपमहाद्वीप के अन्य देशों में उपयोग किया जाता है। यह एक चंद्र–आधारित कैलेंडर है। एक चंद्र वर्ष केवल 354 दिनों का होता है, जो सौर वर्ष से लगभग 11 दिन छोटा होता है। इस अंतर को पूरा करने के लिए हर तीसरे वर्ष एक अतिरिक्त चांद्र मास जोड़ा जाता है। हिंदू नववर्ष– 2081 जिसे चैत्र शुक्लादि के नाम से भी जाना जाता है, चैत्र माह के शुक्ल पक्ष प्रतिपदा के दिन होता है। 2024 में, हिंदू नव वर्ष 9 अप्रैल, मंगलवार को था। नक्षत्र, योग और शुभ मुहूर्त पर विवरण पंचांग अप्रैल 2024 और हिंदू कैलेंडर अप्रैल 2024 एक जैसा है। हिंदू कैलेंडर का उपयोग अप्रैल 2024 में किसी भी स्थान पर किसी भी दिन की तारीख निर्धारित करने के लिए किया जाता है। अप्रैल 2024 का हिंदू तिथि कैलेंडर कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष के दिनों को दर्शाता है। यह अप्रैल 2024 के महीने के दौरान पूर्णिमा, अमावस्या, व्रत, एकादशी और अन्य तारीखों की जानकारी प्रदान करता है।

संदर्भ–सूचीः

- द क्वींट, (22 मार्च 2019)। "हैप्पी 'शक' नव वर्ष 1941ः भारत के राष्ट्रीय के पीछे की कहानी"। क्वींट, 12 अगस्त 2020
- "जीजी जॉलिडे कैलेंडर"। भारत सरकार की अधिकारिक वेबसाइट।
- मरिसम–वेबस्टर। "मरिसम–वेबस्टर्स इनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ वर्ल्ड रिलिजंस"। डोनिगर में, वेंडी; हॉले, जॉन स्ट्रैटन (संस्करण) मेरिएम वेबस्टर, निगमित। 1999, पृष्ठ 449–460 (हिंदू धर्म), 1159 (युग)। आईएसबीएन 0877790442।
- एम.वी. गुप्ता, "अध्याय 1.24 समय मापन"। राबर्ट हल; ऑसगूड, रिचर्ड एम. जूनियर; जुर्गन पेरिसी, वार्लिमोंट, हंस (संस्करण)। माप की इकाइयाँ; अतीत, वर्तमान और भविष्य। इकाइयों की अंतरराष्ट्रीय प्रणाली, सामग्री विज्ञान में स्प्रिंगर शृंखलाः 122. स्प्रिंगर। 2010, पृ. 6–8. आईएसबीएन 9783642007378..
- जोसक्लिन गॉडविन, अटलांटिस और सम के चक्रः भविष्यवाणियाँ, परंपराएँ और गुप्त रहस्योद्घाटन। आंतरिक परंपराएँ। पी.पी. 300–301, 2011 आईएसबीएन 9781594778575।
- "कालक्रम– एक ऐतिहासिक घटना से निदनांकित गणना (एनसाइक्लोपिडिया ब्रिटानिका)"। ब्रिटानिका.कॉम. 21 फरवरी 2023।

• शैलेंद्र भंडारे, "मुद्राशास्त्र और इतिहासः गंगा के मैदानों में मौर्य–गुप्त का अंतर्संबंध"। पैट्रिक ओलिवेल (सं.) में। साम्राज्यों के बीचः भारत में समाज 300 ईसा पूर्व से 400 ई.पू.: भारत में समाज 300 ईसा पूर्व से 400 ई.पू. तक। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस। 2006 पी–169, आईएसबीएन 9780199775071।

• क्रिस्टोफर जॉन फुलर, कपूर की लौः भारत में लोकप्रिय हिंदू धर्म और समाज। प्रिस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 109–110, 2004, आईएसबीएन 9870691120485।

• क्लाउस के. क्लोस्टरमेयर, हिंदू धर्म का एक सर्वेक्षणः तीसरा संस्करण। स्टेट यूनिर्वसिटी ऑफ न्यूयॉर्क प्रेस। 2007, पृष्ठ 490, आईएसबीएन 9780791470824.

• ऐलेनोर नेम्बिट, सिख धर्मः एक बहुत ही संक्षिप्त परिचय, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस। 2016, पृ. 122–123, आईएसबीएन 9780198745570।

❑❑❑

मनुष्य की शक्ति ही कितनी है?
वह दो ही खेल खेलता है
प्रिय को देवता बना लेता है या फिर
देवता को प्रिय बना लेता है

✍ हजारी प्रसाद द्विवेदी

भारतीय ज्ञान परंपरा और ज्ञान–विज्ञान की विकास यात्रा

✍ चेतनादित्य आलोक

ज्ञान की दृष्टि से भारतवर्ष विश्व की प्राचीनतम सभ्यता और संस्कृति वाला देश है। यही वह देश है, जहाँ ज्ञान रूपी सूर्य का अभ्युदय सबसे पहले हुआ। आज इस बात पर विश्व के लगभग सभी विद्वान एकमत हैं कि भारत की लिखित ज्ञान परंपरा का आरंभ वैदिक काल में हुआ और इसके प्रमाणस्वरूप उन्होंने 'ऋग्वेद संहिता' को विश्व के प्रथम ग्रंथ के रूप में स्वीकृत भी किया है। हालाँकि, ऋग्वेद की रचना से पूर्व भी भारत में लोक और विश्व की हितैषी हमारी ज्ञान परंपरा का प्राचीन स्वरूप मौखिक एवं श्रव्य रूप में विद्यमान था, लेकिन आज हमारे पास इसके प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। इसलिए इसका सिर्फ अनुमान ही किया जा सकता है– संस्कृति एवं ज्ञान की दृष्टि से भारतीय सभ्यता विश्व की प्राचीनतम सभ्यता मानी जाती है। लिखित व मौखिक दोनों ही स्वरूपों में यह ज्ञान का आदि स्रोत है। ऋग्वेद विश्व का प्रथम ग्रंथ स्वीकार किया गया है। वैसे, भारत की ज्ञान परंपरा वेद ग्रंथों के रचनाकाल से स्वीकृत हुई है, परंतु यह मात्र प्रमाणित, लिखित एवं दृश्य ज्ञान है। यथार्थ में तो भारतीय ज्ञान परंपरा का आरंभ मौखिक एवं श्रव्य स्वरूप में इससे कई वर्षों पूर्व अनुमानित किया जा सकता है।[1] वैसे, इस अनुमान का भी एक ठोस आधार ज्ञान की हमारी वही मौखिक एवं श्रव्य परंपरा है। बता दें कि प्राचीन भारतीय समाज में मौजूद साधु–संतों, ऋषि–मुनियों, महर्षियों, विद्वानों एवं आचार्यों के आश्रमों तथा गुरुकुलों में शिक्षा–दीक्षा आदि की व्यवस्था उसी मौखिक एवं श्रव्य प्रणाली पर आधारित होती थी जिसके अंतर्गत परंपरा, प्रयोग और अनुभव से प्राप्त समस्त ज्ञान को शृंखलाबद्ध रूप में पीढ़ी–दर–पीढ़ी संचारित किया जाता था।

भारतीय ज्ञान परंपरा के आधार वेद

भारतीय ज्ञान परंपरा में हमारे संतों, ऋषि–मुनियों, महर्षियों, विद्वानों एवं आचार्यों का अप्रतिम योगदान रहा है जिन्होंने भारतीय ज्ञान परंपरा के प्राचीन मौखिक एवं श्रव्य स्वरूप को वेदों के रूप में समायोजित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। गौरतलब है कि ज्ञान एवं विज्ञान से समन्वित ये वेदगत शब्दराशि भाषा और लिपि में निबद्ध ग्रंथ

रूप में उपलब्ध होने के पूर्व, नित्यात्मक ध्वनि के रूप में प्रवर्तित रही है। प्रत्येक सृष्टि के आरंभ में प्राण रूप आदि ऋषियों के अंतःकरण में नित्यात्मक ध्वनि रूप यह वेदगत शब्दराशि प्रकाशित होती है। कालांतर में यही ध्वनि रूप सूक्ष्म शब्द राशि भाषा एवं लिपि में निबद्ध होकर ग्रंथ रूप में उपलब्ध होती है। इसके साथ ही वेद के अध्ययन–अध्यापन का क्रम परंपरागत वेदाध्ययन के अंतर्गत श्रुति विधा के अनुसार मौखिक रूप में ही गुरु–शिष्य के मध्य, अनुशासित विधान से समन्वित, अविच्छिन्न रूप में यथावत् प्रवर्तित हुआ है।[2] बता दें कि अपने पूर्वजों से वरदानस्वरूप प्राप्त वैदिक ज्ञान के प्रकाश में ही हमारी अनगिनत पीढ़ियाँ पली–बढ़ीं और फली–फूलीं। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो वेदों की छत्रछाया में ही हमने यहाँ तक की अपनी ज्ञान–विज्ञान की विकास यात्रा तय की है। जाहिर है कि यदि वेदों का मार्गदर्शन हमें नहीं मिला होता तो दुनिया की अन्य संस्कृतियों और सभ्यताओं के लोगों की तरह हम भी सदियों तक अज्ञानता के घने अंधकार में गोते लगा रहे होते।

इसलिए सच कहा जाए तो वेद हमारे गुरु, मार्गदर्शक और ज्योति–स्तंभ हैं। ये ही हमारी महान भारतीय सभ्यता और संस्कृति के आधार–स्तंभ भी हैं। ऐसे में, वेदों को भुलाना अथवा इनसे विमुख होना अपने पूर्वजों से प्राप्त बहुमूल्य ज्ञान से वंचित रहना होगा। इसलिए हमें अपने पूर्वजों के द्वारा बहाई गई ज्ञान की वेद रूपी पवित्र गंगा को सूखने से बचाना ही होगा, जो अज्ञानियों का कल्याण और पतितों को पावन करने वाली है। भले ही इसके लिए हमें चाहे कोई भी मूल्य क्यों न चुकाना पड़े। अन्यथा भारतीय ज्ञान परंपरा का आधार ही ध्वस्त हो जाएगा और संपूर्ण सनातन परंपरा ही आधारहीन हो जाएगी। सच कहा जाए तो वेदों की इन्हीं विशेषताओं के कारण महर्षि मनु ने अपने स्मृति–ग्रंथ में वेदों को 'सर्वज्ञानमय कोष' कहा है।[3] वहीं, स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा लिखित पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश की घोषणा के अनुसार, वेद ही समस्त ज्ञान के स्रोत हैं– *सर्वज्ञानमयो हि सः।*[4] ज्ञातव्य है कि पाणिनि, कौटिल्य, भरतमुनि, पतंजलि, वात्स्यायन, चरक, सुश्रुत, आर्यभट्ट, वराहमिहिर आदि अनेकानेक विद्वानों ने प्राचीन भारतीय ज्ञान दर्शन की इसी परंपरा को सातत्य प्रदान करने के साथ–साथ और समृद्ध करने का कार्य भी किया। महत्त्वपूर्ण यह भी है कि ऐसा करते हुए वे अपनी रचनाओं को प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा से जोड़ना और अपने पूर्ववर्ती आचार्यों का उल्लेख करना नहीं भूले।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि महर्षि पाणिनि ने विश्व का प्रथम व्याकरण, महर्षि चाणक्य जो कौटिल्य के रूप में विश्वविख्यात् हुए, ने दुनिया का प्रथम अर्थशास्त्र, भरतमुनि ने विश्व का प्रथम नाट्यशास्त्र, आचार्य वात्स्यायन ने कामसूत्र एवं महर्षि यास्क ने वैदिक भाषा के अनुशासन पर निरुक्त नामक ग्रंथ की रचना कर भारतीय ज्ञान परंपरा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। बाद में, भारतीय ज्ञान परंपरा की इस यात्रा को बौद्ध एवं जैन विद्वानों ने भी अपने साहित्य में आगे बढ़ाने का कार्य किया। इसी

प्रकार, प्राचीन काल में आरंभ हुई भारतीय ज्ञान परंपरा की यह अविरल धारा ऊँचे–नीचे, आड़े–टेढ़े एवं उथले–छिछले रास्तों से होते हुए आधुनिक काल में भी बहती रही और आज तक जारी है।

भारतीय ज्ञान परंपरा में विज्ञान लेखन

भारतीय ज्ञान परंपरा में वैज्ञानिक लेखन की अत्यंत समृद्ध एवं सुदीर्घ परंपरा रही है जो प्राचीन काल से ही अनवरत चली आ रही है। हमारे वैदिक ग्रंथों यानी वेद और उनसे संबद्ध संपूर्ण साहित्य यथा– ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, वेदांग, संहिताएँ, कल्पसूत्र आदि में ऐसे अनेक प्रमाण भरे पड़े हैं जो भारतीय ज्ञान के साथ–साथ विज्ञान की भी समृद्ध परंपरा की प्राचीनता को साबित करते हैं। वेदों की गौरव गाथा गाने वाले भारतवर्ष के महान वैज्ञानिक महर्षि कणाद के विचारों से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है, जिन्होंने *तद्वचनादाम्नायस्य प्राणाण्यम* और *बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेद* कहकर वेद को दर्शन और विज्ञान का स्रोत बताया है। इसी प्रकार, परम ब्रह्मनिष्ठ ऋषि याज्ञवल्क्य ने भी वेदों की महिमा बताते हुए स्पष्ट कहा है कि वेदशास्त्र से भिन्न कोई शास्त्र प्रमाण नहीं, समस्त शास्त्र सनातन वेद से ही निकले हैं।[5] वहीं, महर्षि कृष्ण द्वैपायन के शब्दों में कहा जाए तो लोक में जितने भी आगम शास्त्र तथा लोक प्रवृत्तियाँ देखी जाती हैं, वे सब वेद के आधार पर ही क्रमानुसार आरंभ हुई हैं।[6] वैसे, देखा जाए तो वेद के चारों भाग ऋक्, यजु, साम और अथर्व क्रमशः विज्ञान, कर्म, उपासना एवं ज्ञान का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसलिए अपने तपोमय चिंतन और अंतर्दृष्टि के द्वारा विश्व में सर्वप्रथम विज्ञान के विविध आयामों की रचना करने वाले ऋग्वेद के हमारे ऋषि–ऋषिकाएँ विश्व के प्रथम वैज्ञानिक हुए।

वैदिक काल में विज्ञान लेखन

आज हमें पता है कि चंद्रमा सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है, लेकिन क्या हमने यह जानने का प्रयास किया कि हजारों वर्ष पूर्व ही यजुर्वेद में हमारे ऋषियों ने लिख दिया था कि चंद्रमा में अपना प्रकाश नहीं है। उसे सूर्य की 'सुषुम्ण' नामक किरण प्रकाशित करती है– *सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चंद्रमा गंधर्व।*[7] इस बात की पुष्टि यास्क ने भी अपने ग्रंथ 'निरुक्त' में की है– *अयाप्यस्यैको रश्मिश्चंद्रमंस प्रति दीव्यति। आदित्योऽस्य दीप्रिर्भवति।*[8] ऐसे ही, ऋग्वेद के ऋषियों द्वारा प्रतिपादित एक वैज्ञानिक सिद्धांत को आधुनिक वैज्ञानिक आइंस्टीन ने भी अपने प्रयोगों और अनुसंधान से साबित कर यह घोषणा की थी कि द्रव्य और ऊर्जा में से कोई भी चीज न नष्ट की जा सकती है, न उत्पन्न, केवल इसका रूपांतरण होता है। अब ऋग्वेद के उस मंत्र का अवलोकन करना भी आवश्यक है, जिसको हमारे ऋषि वैज्ञानिकों ने आइंस्टीन से हजारों वर्ष पूर्व ही रच डाला था– *अदितेर्दक्षो अजायत, दक्षाद् उ–अदितिःपरि।*[9] अर्थात् अदिति यानी 'मास–मैटर' से 'दक्षता' यानी 'एनर्जी' उत्पन्न होती है और 'दक्षता' यानी 'एनर्जी' से अदिति यानी 'मास–मैटर।' तात्पर्य यह है कि द्रव्य और ऊर्जा परस्पर

रूपांतरित हो सकते हैं। इस प्रकार, हमारे वैदिक ऋषियों ने विज्ञान के प्रायः प्रत्येक पहलू का अवलोकन और अनुसंधान कर वैज्ञानिक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है। इसी क्रम में उन्होंने शरीर विज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान किया और कई सिद्धांत रचे।

ऋग्वेद में हृदय की बीमारियों को कदाचित् ठीक करने का सूत्र देते हुए हमारे ऋषियों ने सदियों पहले लिखा कि सूर्य की किरणें हृदय के रोगों और खून की कमी को दूर करती हैं। ऋग्वैदिक सूत्र के अनुसार, यदि उदय होते सूर्य की किरणें छाती पर ली जाए तो सिरदर्द, पीलिया, हृदय की बीमारियाँ आदि रोग दूर हो जाते हैं– *उद्यन अद्य मित्रामह, आरोहन् उत्तरा दिवम। हृद्रोगं मम सूर्य, हरिमाणं च नाशय।।*[10] ज्ञातव्य है कि महर्षि कणाद ने ईसा से 600 वर्ष पूर्व 'वैशेषिक सूत्र' नामक ग्रंथ का सृजन कर बता दिया था कि उन्होंने द्रव्यों में निहित अणुओं एवं परमाणुओं की खोज कर ली है। बता दें कि सर्वप्रथम महर्षि कणाद ने ही यह वैज्ञानिक स्थापना दी थी कि किसी भी द्रव्य का सूक्ष्मातिसूक्ष्म कण 'परमाणु' कहलाता है तथा अणु की संरचना 'परमाणुओं' के संघनन से होती है।[11] तात्पर्य यह कि महर्षि कणाद ने परमाणु को द्रव्य का अंतिम तत्त्व आज से हजारों वर्ष पूर्व ही अपने ग्रंथ 'वैशेषिक सूत्र' के माध्यम से बता दिया था, जबकि लगभग 2400 वर्षों के बाद सन् 1803 में जॉन डाल्टन यह बताकर कि प्रत्येक वस्तु परमाणुओं से बनी हुई है, परमाणु सिद्धांत के जनक बन गए। दुर्भाग्य से, भारतवर्ष के बच्चों को आज तक यही पढ़ाया भी जाता है, जबकि वास्तव में महर्षि कणाद परमाणु शास्त्र के जनक हैं जिन्होंने सर्वप्रथम् परमाणु विज्ञान की दृष्टि से संपूर्ण ब्रह्मांड का अद्भुत विश्लेषण किया था।

उल्लेखनीय है कि 'वैशेषिक सूत्र' में ही महर्षि कणाद ने गति के तीन नियम भी प्रतिपादित किए थे– *वेगः निमित्तविशेषात कर्मणो जायते। वेगः निमित्तापेक्षात कर्मणो जायते नियतदिक क्रियाप्रबंधहेतु। वेगः संयोगविशेषविरोधी।।*[12] वहीं, महर्षि कणाद से 2287 वर्ष बाद सन् 1687 में सर आइजैक न्यूटन गति के इन्हीं तीन नियमों को अपनी पुस्तक 'फिलॉसाफी नेचुरेलिस प्रिन्सिपिया मैथेमेटिका' में प्रकाशित कर गति के तीन नियमों के मूल आविष्कारक बन गए, जिसके बाद दुनिया भर में और देश में भी बच्चों की पाठ्य पुस्तकों में यह पढ़ाया जाने लगा कि गति के तीन नियमों के मूल आविष्कारक न्यूटन हैं, जबकि वास्तव में इनके आविष्कारक महर्षि कणाद हैं। यही नहीं, गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत के संबंध में तथ्य तो यह है कि न्यूटन से कई हजार वर्ष पूर्व महर्षि वेदव्यास, कणाद, आर्यभट्ट एवं वराहमिहिर रचित सभी ग्रंथों में गुरुत्वाकर्षण की विशद व्याख्याएँ की जाती रही हैं, जो भारतीय विज्ञान परंपरा के महत्त्व और गौरव की परिचायक है। बता दें कि गुरुत्वाकर्षण समेत पृथ्वी के अनेकानेक गुणों की व्याख्या महर्षि वेद व्यास रचित महाभारत ग्रंथ में मिलती है, जिसमें पितामह भीष्म ने अपने पौत्र युधिष्ठिर से कहा– *भूमैः स्थैर्यं गुरुत्वं च काठिन्यं प्रसवात्मना, गन्यो भारश्च शक्तिश्च संघातः स्थापना वृति।*[13] अर्थात् हे युधिष्ठिर!

स्थिरता, गुरुत्वाकर्षण, कठोरता, उत्पादकता, गंध, भार, शक्ति, संघात, स्थापना आदि भूमि के गुण है।

गौरतलब है कि महान भारतीय वैज्ञानिक आर्यभट्ट ने वैदिक विज्ञान के आधार पर रचित अपने ग्रंथ 'आर्यभटीयम' में मात्र 23 वर्ष की अवस्था में 499 ई. में बता दिया था कि पृथ्वी गोल है और अपनी धुरी पर घूर्णन करती हुई सूर्य का चक्कर लगाती है।[14] इसके बावजूद, आज तक भारत समेत संपूर्ण विश्व में विद्यार्थियों को यह पढ़ाया जाता है कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती हुई सूर्य का चक्कर लगाती है, यह सिद्धांत पोलैंड के वैज्ञानिक कोपरनिकस (1473–1543) ने दिया था। बता दें कि वैज्ञानिक आर्यभट्ट ने 'आर्यभटीयम' में नक्षत्र विज्ञान एवं गणित संबंधी कुल 121 श्लोकों की रचना की है। उक्त ग्रंथ में उन्होंने पृथ्वी की परिधि एवं सूर्य से पृथ्वी तथा अन्य ग्रहों की दूरी के विषय में गणना कर अनेक महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक ज्ञान प्रकट किया था। इसी प्रकार, जब विश्व भर में चिकित्सा विज्ञान का विकास भी नहीं हुआ था, तब भारत में हमारे वैदिक चिकित्सा–विज्ञानियों ने चिकित्सा के क्षेत्र में अनेक अद्भुत उपलब्धियाँ प्राप्त कर ली थीं। ऋग्वेद में देव वैद्य कहे जाने वाले अश्विनी कुमारों का वर्णन मिलता है। यही नहीं, प्राचीन भारत में अनेक महर्षियों ने 'आयुर्वेद' के अनेक ग्रंथों की भी रचना की थी। काशी में पैदा हुए शल्य चिकित्सा (सर्जरी) के जनक महर्षि सुश्रुत ने ईसा से लगभग 700 वर्ष पूर्व आयुर्वेद के मूलभूत ग्रंथ 'सुश्रुत संहिता' की रचना की। अपने ग्रंथ में उन्होंने 1120 प्रकार के रोगों, 700 औषधीय पौधों, 120 प्रकार के उपक्रमों एवं प्लास्टिक सर्जरी समेत 300 प्रकार की शल्य (सर्जरी) प्रक्रियाओं का वर्णन किया है, जो कि एक अद्भुत एवं अतुलनीय उपलब्धि है।[15]

इनके अतिरिक्त, प्राचीन काल में भारतीय ऋषि वैज्ञानिक रसायन विज्ञान और धातु विज्ञान के क्षेत्र में भी अनेक स्थापनाएँ दे चुके थे। बता दें कि ऋग्वेद से संबंधित श्रीसूक्त में हमारे ऋषि वैज्ञानिकों ने 16 मंत्रों के माध्यम से सोना बनाने की विधि बताई है। वहीं, दूसरी शताब्दी में जन्मे महान रसायन शास्त्री आचार्य नागार्जुन ने रसायन शास्त्र की कई पुस्तकें लिखीं। उन्होंने अपने लोकप्रिय ग्रंथ 'रस रत्नाकर' में सोना बनाने की विधि का वर्णन करते हुए बताया है कि उन्होंने 12 वर्षों तक पारे का शोधन करके उसके कुल 18 संस्कारों का पता लगाया था। यही नहीं, उन्होंने चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में भी बहुत शोध किया और अनेक ग्रंथों की रचना की जिनमें मुख्य रूप से 'कक्षपुटतंत्र', 'आरोग्य मंजरी', 'योगसार' तथा 'योगाष्टक' महत् उल्लेखनीय हैं।[16] ज्ञातव्य है कि भारतीय ऋषि वैज्ञानिक उस काल में भी वैमानिकी से जुड़े विज्ञान के क्षेत्र में अद्भुत और अतुलनीय प्रतिभा रखते थे, जब अन्य देशों के वैज्ञानिकों ने कदाचित् इसकी कल्पना भी नहीं की होगी। ऐसे ही, एक ऋषि वैज्ञानिक महर्षि भरद्वाज हुए जिन्होंने 'यंत्र सर्वस्व' नामक अपने ग्रंथ में प्रायः सभी प्रकार के यंत्रों के निर्माण और संचालन की विधि विस्तार से बताई है। उस ग्रंथ के एक भाग में वैमानिक

शास्त्र भी शामिल है, जिसकी टीका लिखते हुए बोधानंद जी ने महर्षि भरद्वाज की भूरि–भूरि प्रशंसा की है।

बोधानंद जी के अनुसार, महर्षि भरद्वाज ने वेदरूपी समुद्र का मंथन कर 'यंत्र सर्वस्व' नामक ऐसा मक्खन निकाला है जो मनुष्य मात्र को इच्छित फल प्रदान करने वाला है। ग्रंथ के चालीसवें अधिकरण में वैमानिक प्रकरण है जिसमें विमान विषयक रचनाओं के क्रम दर्शाए गए हैं। आठ अध्यायों में विभाजित इस ग्रंथ में एक सौ अधिकरण तथा पाँच सौ सूत्र शामिल हैं जिसका प्रधान विषय वैमानिकी ही है।[17] गौरतलब है कि महर्षि भरद्वाज ऐसे पहले विमान शास्त्री हुए जिन्होंने महर्षि अगस्त्य के काल में विमानों में प्रयुक्त होने वाले विद्युत ऊर्जा के ज्ञान को अभिवर्धित किया। दरअसल, महर्षि अगस्त्य और भरद्वाज ने ईसा से शताब्दियों पूर्व भारत में विमान बनाने की तकनीक का विकास कर लिया था। इस तथ्य का प्रकाशन महर्षि अगस्त्य ने अपने 'अगस्त्य संहिता' नामक ग्रंथ में किया था जिसकी प्राचीन पांडुलिपि का उल्लेख आधुनिक वैज्ञानिक डॉ. वामनराव काटेकर ने अपने एक शोध–प्रबंध में लगभग छह दशक पूर्व किया था।[18] वहीं, महर्षि अगस्त्य ने अपने 'अग्नियान' ग्रंथ में विमानों में प्रयुक्त होने वाले विद्युत ऊर्जा के रूप में 'मित्रावरुण तेज' का उल्लेख किया है। यह वही 'मित्रावरुण तेज' है, जिसका उपयोग वाल्मीकि रामायण में वर्णित 'पुष्पक विमान' में होता था, जो लंका के राजा रावण के पास था और लंका–विजय के पश्चात् जिस पर सवार होकर भगवान श्रीराम अयोध्या वापस लौटे थे।

इस प्रकार, देखा जाए तो भारत के प्राचीन संतों, ऋषि–मुनियों, महर्षियों, विद्वानों एवं आचार्यों द्वारा रचे गए ग्रंथ आधुनिक काल के वैज्ञानिकों के अनेकानेक अनुसंधानों के मूल स्रोत रहे हैं। यह पृथक् बात है कि उन्हें आज तक इसका श्रेय नहीं दिया जाता। दुनिया की बात तो दूर, भारत में ही हमारे प्राचीन संतों, ऋषि–मुनियों, महर्षियों, विद्वानों एवं आचार्यों के रचनात्मक योगदानों को कहाँ कभी श्रेय अथवा मान्यता भी दी गई। इतना ही नहीं, आज तक भारत के लोगों को हमारे उन पूर्वजों की कृतियों के संबंध में पता ही कहाँ है! हाँ, टीवी आदि पर अत्यधिक प्रचार–प्रसार होने के कारण एक 'पुष्पक विमान' के संबंध में देश के लोगों को अवश्य पता है कि रामायण काल में भारत में 'पुष्पक विमान' था। हालाँकि, पश्चिमी चमक–दमक के प्रभाव के कारण आजकल उसे मानते कम ही लोग हैं, लेकिन इसमें उनका दोष नहीं है क्योंकि भारत के प्राचीन संतों, ऋषि–मुनियों, महर्षियों, विद्वानों एवं आचार्यों की कृतियों और उनके रचनात्मक योगदानों के संबंध में देश के लोगों को कभी बताया ही नहीं गया। जरा सोचिए, कि क्या बुरा होता यदि हमारे विद्यालयों आदि में अपनी कला, साहित्य, संस्कृति एवं सभ्यता की उपलब्धियों और विशेषताओं को बच्चों को आरंभ से ही पढ़ाया–सिखाया जाता?

हिंदी में विज्ञान लेखन

वैदिक काल में जितना और जो भी विज्ञान लेखन हुआ, वह देवभाषा संस्कृत में ही हुआ। यही कारण है कि कालांतर में जैसे–जैसे संस्कृत भाषा प्रचलन से बाहर होती गई, धीरे–धीरे वैदिक काल में लिखे गए वैज्ञानिक साहित्य भी 'लोक' यानी जन–सामान्य की रुचि और उपयोग से बाहर होते चले गए। तब तक पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाएँ प्रचलन में आ चुकी थीं। इसलिए उन भाषाओं में विज्ञान तथा अन्य सभी प्रकार के विषयों में नया और अनूदित साहित्य लिखा जाने लगा। हालाँकि, यह स्थिति भी तात्कालिक साबित हुई और धीरे–धीरे पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाएँ भी 'लोक' में अप्रचलित होती गईं। उसके बाद विदेशी आक्रमणकारियों के काल में भारत में अरबी और फारसी का प्रचलन आरंभ हुआ और तेजी से बढ़ा। यह वही काल था, जब देश में अपभ्रंश के गर्भ से हमारी हिंदी (खड़ी बोली) का जन्म हुआ और सौभाग्य से धीरे–धीरे यह सभी देशवासियों को प्रिय और स्वीकार्य लगने लगी। उसके बाद, 'हिंदी के पितामह' भारतेंदु हरिश्चंद्र के 'निज भाषा उन्नति अहै...' के उद्घोष के बाद 19वीं सदी के उत्तरार्ध में खड़ी बोली यानी हिंदी में सभी प्रकार के साहित्य का सृजन प्रारंभ हुआ। हालाँकि, उस काल के विज्ञान लेखन के इतिहास पर ध्यान दें तो यह जानकर निराशा ही हाथ लगती है कि सन् 1900 ई. तक हिंदी में विज्ञान लेखन बहुत ही कम हुआ और जो कुछ हुआ भी, उसकी भाषा और पाठ्य–सामग्री दोनों ही अत्यंत कामचलाऊ और निम्नस्तरीय थी।

वैसे, सन् 1947 से पूर्व भारत में वैज्ञानिक लेखन के कार्य को समय–समय पर देश के विभिन्न क्षेत्रों में गठित कुछ विशेष सोसायटियों, समितियों, संस्थानों, पुस्तकालयों एवं प्रकाशन केंद्रों ने भी आगे बढ़ाने का कार्य किया जिनके तत्वावधान में विशेष रूप से वैज्ञानिक अनुसंधानों, सर्वेक्षणों एवं विशिष्ट पीरियॉडिकल्स तथा जरनलों के प्रकाशन के माध्यम से वैज्ञानिक लेखन को आगे बढ़ाने का महत्त्वपूर्ण कार्य संपन्न होता रहा है। सन् 1784 में स्थापित एशियाटिक सोसायटी ऐसी ही एक संस्था थी जिसके प्रथम अध्यक्ष विज्ञान और कला के क्षेत्र में तत्कालीन भारत की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों का महत्त्व बखूबी समझने वाले अंग्रेज विद्वान सर विलियम जोन्स (1746–1794) थे जिन्होंने भारतीय संस्कृति के पुनरुद्धार में बड़ा योगदान दिया था। ज्ञातव्य है कि 1788 में उनकी ही पहल पर एशियाटिक सोसायटी के तत्वावधान में 'एशियाटिक रिसर्चेज' नामक जरनल का प्रकाशन आरंभ हुआ जिसमें भौतिकी, रसायन, भू–विज्ञान एवं चिकित्सा विषयक शोध–पत्रों का प्रकाशन किया जाता था। इनके अतिरिक्त, भारत में वानस्पतिक सर्वेक्षण को आरंभ कराने का श्रेय भी उनको ही दिया जाता है। इसी प्रकार, सन् 1833 में गठित 'मद्रास लिटररी सोसायटी' के तत्वावधान में 'मद्रास जरनल ऑफ लिटरेचर एंड साइंस' नामक वैज्ञानिक जरनल का प्रकाशन होता था जिसके सभी अंकों में वैज्ञानिकों के शोध–पत्र प्रकाशित किए जाते थे।

हालाँकि, 1900 के बाद हिंदी भाषा में विज्ञान लेखन में तेजी तो आई लेकिन दुर्भाग्य से, सन् 1947 से पूर्व के सभी लिखित एवं प्रकाशित वैज्ञानिक साहित्य का एक स्थान पर कोई प्रामाणिक विवरण उपलब्ध नहीं है, जिसके आधार पर ठीक–ठीक यह कहा जा सके कि सन् 1947 से पूर्व रचे गए वैज्ञानिक साहित्य की संख्या कितनी है, उनमें पुस्तकों और पत्रिकाओं की संख्या कितनी है, उनमें भी कितने निबंध, ललित निबंध और कितनी कहानियाँ, लघु कथाएँ एवं कविताएँ लिखी गईं आदि... आदि। हालाँकि, नारायण चतुर्वेदी, माता प्रसाद गुप्त तथा डॉ. सत्यप्रकाश ने अपने अथक प्रयासों से उस दौर के विज्ञान लेखकों की रचनाओं का संतोषजनक विवरण प्रस्तुत किया है। बता दें कि श्री नारायण चतुर्वेदी ने अपनी पुस्तक 'आधुनिक हिंदी का आदिकाल' में लिखा है कि उन्होंने प्राचीन भारतीय ज्योतिष पर आधृत पुस्तकों तथा वैद्यक ग्रंथों को छोड़कर 1857 से 1908 के बीच विज्ञान विषयक प्रकाशित विविध पुस्तकों की एक सूची बनाई थी जिसमें लगभग 200 ग्रंथ शामिल थे। श्री चतुर्वेदी ने अपनी पुस्तक में यह भी स्वीकार किया है कि उस युग में अंग्रेजी भाषा बहुत नहीं फैली थी, हमारे हिंदी–सेवियों ने इन विषयों पर पुस्तकें लिखकर हिंदी के भंडार को भरने का प्रयत्न किया था।[19] वहीं, 'हिंदी पुस्तक साहित्य' नामक पुस्तक का संपादन करने वाले डॉ. माता प्रसाद गुप्त ने अपनी उक्त पुस्तक में यह घोषित किया है कि सन् 1867 से लेकर 1942 के दौरान हिंदी भाषा में विज्ञान की कुल 269 पुस्तकों का प्रकाशन हो चुका था।[20]

इसी प्रकार, डॉ. सत्य प्रकाश ने अपने संपादन में प्रकाशित 1939 के 'विज्ञान' अंक में यह घोषित किया है कि सन् 1939 तक हिंदी भाषा में प्रकाशित विज्ञान की पुस्तकों की कुल संख्या 392 है, जिसमें सन् 1900 के पूर्व की 86 पुस्तकें भी शामिल हैं।[21] तात्पर्य यह कि विभिन्न स्रोतों से प्राप्त जानकारी के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सन् 1947 से पूर्व लगभग 500 विज्ञान की पुस्तकें लिखी जा चुकी थीं। वैसे, विद्वान लेखक डॉ. शिव गोपाल मिश्र ने अपनी पुस्तक 'स्वतंत्रता पूर्व हिंदी में विज्ञान लेखन' में लिखा है कि 1990 तक हिंदी भाषा में प्रकाशित विज्ञान की पुस्तकों की संख्या लगभग 7,000 तक पहुँच गई थी। डॉ. मिश्र के अनुसार, संचित सूचना के आधार पर हिंदी में विज्ञान की विभिन्न विषयों की प्रथम प्रकाशित पुस्तक की प्रकाशन तिथियाँ इस प्रकार हैं– गणित 1850, ज्योतिष 1825/1840, रसायन 1847, कृषि 1856, भौतिकी 1862, आयुर्वेद 1826/1874, वनस्पति विज्ञान 1897, प्राणि विज्ञान 1882 (अनुवाद), पशु चिकित्सा 1896, कोश 1906।[22] गौरतलब है कि अभी तक हिंदी में जो भी विज्ञान साहित्य लिखा जा चुका है और पुस्तक रूप में उपलब्ध है, उसका विहंगावलोकन किया जा सकता है, किंतु विषय की विविधता होने से किसी प्रकार की निर्णयात्मक टिप्पणी कर पाना संभव नहीं है। वैसे भी, विज्ञान इतनी तेजी से प्रगति कर रहा है कि कोई भी कृति अपने लेखन के 10 वर्षों के बाद बासी पड़ जाती है।

अतः किसी प्रकार के तुलनात्मक विवेचन की भी गुंजाइश नहीं है। केवल मुख्य प्रवृत्तियों और विधाओं पर ही विस्तार से चर्चा की जा सकती है। हमें यह देखकर प्रसन्नता हो रही है कि विगत 150 वर्षों में हिंदी साहित्य के समकक्ष ही हिंदी में विज्ञान वाङ्मय में भी श्रीवृद्धि हुई है। इससे हिंदी का पक्ष मजबूत हुआ है।[23]

हिंदी भाषा के विज्ञान लेखक

वैसे, हिंदी के विज्ञान लेखन करने वाले लेखकों की बात करें तो इनकी संख्या बहुत बड़ी है। इतनी बड़ी कि यदि सूची बनाई जाए तो एक पुस्तक भी शायद कम पड़ जाए। उल्लेखनीय है कि भारत में 3500 से भी अधिक हिंदी भाषा के विज्ञान लेखक मौजूद हैं जिनमें 150 महिलाएँ भी हैं। वहीं, अब तक 8000 हजार से भी अधिक विज्ञान विषयक पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं, परंतु दुर्भाग्य से इतनी सारी उपलब्धियों और देश में विज्ञान विषयक लेखकों की इतनी विशाल संख्या मौजूद रहने के बावजूद विज्ञान लेखकों का न तो कोई राष्ट्रीय संगठन है और न ही आज तक हिंदी में विज्ञान लेखकों की कोई निर्देशिका प्रकाशित हो सकी है ताकि लेखकों का आपसी पत्र व्यवहार अथवा संपर्क स्थापित करने का क्रम आरंभ हो पाए।[24] बहरहाल, भारत में वैज्ञानिक साहित्य में अपना बहुमूल्य योगदान देकर हिंदी भाषा को समृद्ध करने वाले विज्ञान लेखन के कुछ प्रमुख पुरोधाओं का उल्लेख करना हो तो उनमें स्वामी सत्यप्रकाश, डॉ. गोरख प्रसाद, डॉ. शिवगोपाल मिश्र, श्री पृथ्वी नाथ पांडेय, डॉ. फूलदेव सहाय वर्मा, डॉ. ब्रज मोहन, डॉ. निहालकरण सेठी, गुणाकर मुले, डॉ. रमेश दत्त शर्मा, श्री प्रमोद जोशी, डॉ. जगदीप सक्सेना, डॉ. विजय कुमार उपाध्याय, डॉ. पी. के. मुखर्जी, डॉ. दिनेश मणि आदि को कतई भुलाया नहीं जा सकता।

हालाँकि, इनके अतिरिक्त भी हिंदी भाषा में वैज्ञानिक साहित्य सृजन के कुछ अन्यान्य सशक्त हस्ताक्षरों के नाम प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं, यथा– सर्वश्री प्रेमचंद श्रीवास्तव, गणेश कुमार पाठक, विश्वमोहन तिवारी, जगनारायण, शुकदेव प्रसाद, देवेंद्र मेवाड़ी, राम चंद्र मिश्र, विजय चितौरी, प्रेमानंद चंदोला, आइवर यूशियल, इरफान ह्यूमेन, राय अवधेश कुमार श्रीवास्तव, डॉ. रमेश बाबू, डॉ. दीपक कोहली, डॉ. डी. डी. ओझा, डॉ. विष्णु दत्त शर्मा, डॉ. देवेंद्र कुमार राय एवं डॉ. श्रवण कुमार। इस प्रकार देखा जाए तो हिंदी में विज्ञान विषयक लेखन करने वाले विद्वान रचनाकारों की संख्या बहुत बड़ी है। इसके बावजूद, हिंदी भाषा में विज्ञान लेखन को जो सहयोग, सम्मान, प्रेम और प्रोत्साहन मिलना चाहिए था, वह दुर्भाग्य से अब तक नहीं मिल पाया है।

हिंदी पत्रिकाओं में विज्ञान लेखन

इसी प्रकार, भारत भर में हिंदी भाषा में विज्ञान की पत्रिकाओं का भी बहुत तेजी से विस्तार हुआ, जो कि हिंदी–प्रेमियों और विज्ञान–प्रेमियों दोनों ही के लिए अत्यंत हर्ष की बात है क्योंकि वास्तव में ये पत्रिकाएँ हिंदी भाषा में विज्ञान को लोकप्रिय बनाने की भूमिका तो निभा ही रही हैं, साथ ही इनके प्रकाशन के माध्यम से विज्ञान के क्षेत्र

में हिंदी भाषा को भी लोकप्रिय बनने का सुअवसर प्राप्त हो रहा है। बहरहाल, भारत में वैज्ञानिक साहित्य में अपना बहुमूल्य योगदान देने तथा हिंदी भाषा को समृद्ध करने वाली ऐसी कुछ प्रमुख पत्रिकाओं का उल्लेख करना हो तो उनमें इलाहाबाद से प्रकाशित 'विज्ञान', होशंगाबाद से प्रकाशित 'संदर्भ', भोपाल से प्रकाशित 'स्रोत', जयपुर से प्रकाशित 'विज्ञान चेतना', गाजियाबाद से प्रकाशित 'विज्ञान आपके लिए', गोरखपुर से प्रकाशित 'सामयिक नेहा', जबलपुर से प्रकाशित 'विज्ञान भारती प्रदीपिका' प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। वैसे, इनके अतिरिक्त विज्ञान प्रगति, आविष्कार, विज्ञान जगत, विज्ञान लोक और विज्ञान गरिमा सिंधु जैसी हिंदी में प्रकाशित होने वाली कई अन्य पत्रिकाएँ भी वैज्ञानिक साहित्य सृजन के क्षेत्र में सक्रिय भूमिका निभा रही हैं।[25]

अन्य भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन

गौरतलब है कि यदि हिंदी की तुलना में अन्य भारतीय भाषाओं में प्रकाशित विज्ञान की पुस्तकों से तुलना करें तो प्रसिद्ध विज्ञान लेखक डॉ. शिव गोपाल मिश्र के अनुसार, मराठी में सन् 1900 तक 233, जबकि सन् 1901 से 1937 तक 729 पुस्तकें उपलब्ध थीं। वहीं, तमिल में सन् 1900 से पूर्व 477 पुस्तकें लिखी गई थीं, और 1996 तक यह संख्या बढ़कर 4,352 तक पहुँच गई थी।[26]

अन्य भाषाओं की पत्रिकाओं में विज्ञान लेखन

उसी दौर में देश के अलग–अलग भागों से अलग–अलग भाषाओं में कई विज्ञान पत्रिकाओं का प्रकाशन भी आरंभ हुआ जिनमें 1914 में मराठी में आरंभ हुई 'उद्यम' नामक पत्रिका, 1928 में पुणे से आरंभ हुई 'सृष्टि ज्ञान' नामक विज्ञान की विशुद्ध पत्रिका, 1966 में आरंभ हुई 'मराठी विज्ञान पत्रिका' और 1969 में छपनी शुरू हुई 'विज्ञान युग' पत्रिका मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं। ज्ञातव्य है कि अकेले 'सृष्टि ज्ञान' पत्रिका में ही सन् 1995 तक 6360 लेख तथा इस पत्रिका के अनेक विशेषांक भी प्रकाशित हुए। इनके अतिरिक्त, 'मराठी साहित्य परिषद्' के तत्वावधान में 1901 में एक वैज्ञानिक शब्दकोश के लिए शब्द–संग्रह का कार्य आरंभ किया गया जिसका प्रकाशन 48 वर्षों के पश्चात् सन् 1949 में दाते–कार्वे के संपादन में संपन्न हो पाया। मराठी के विज्ञान–लेखकों में बी. आर. भागवत, बी.आर. केलकर, डी.वी. मोकशी, डी.सी. सोमान, डी.पी. खंबरे, नारायण धरप, हरि केशव जी, जगन्नाथ शास्त्री, एस.वी. केतकर, लक्ष्मण लोढ़े, बाल फोंडके, जयंत विष्णु नार्लिकर, शुभदा गोगाटे, डॉ. नार्लिकर आदि महत्त्वपूर्ण नाम हैं। इसी प्रकार, 1818 में 'दिग्दर्शन', 1872 में 'बंगदर्शन' और 1948 में 'ज्ञान ओ विज्ञान' नामक बंगला में प्रकाशित होने वाली प्रमुख विज्ञान पत्रिकाएँ थीं। इनमें से 'बंगदर्शन' पत्रिका के संपादक प्रसिद्ध राष्ट्रवादी लेखक और संपादक श्री बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय थे जिन्होंने स्वयं भी विज्ञान विषयक अनेक लेख लिखे।

अन्य भारतीय भाषाओं के विज्ञान लेखक

बता दें कि बांग्ला के विज्ञान लेखकों में बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय, जगदीशचंद्र बोस, आचार्य प्रफुल्ल चंद्र राय, डॉ. सत्येंद्र नाथ बोस, योगेश चंद्र, विश्वकवि रवींद्र नाथ टैगोर, डॉ. राजेंद्र लाल मित्र, रामेंद्र सुंदर त्रिवेदी, भूदेव मुखोपाध्याय, सत्यजित राय, समीर गांगुली, समरजित कर, अक्षय कुमार दत्ता तथा कृष्ण मोहन बंद्योपाध्याय प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार, 1917 में 'तमिलार नेसन', 1926 में 'थोजिर कल्वी', 1950–60 के मध्य कलाई कादिर, अनुकादिर, इत्लम नामक तमिल में प्रकाशित होने वाली प्रमुख विज्ञान पत्रिकाएँ थीं। गौरतलब है कि अघुसामी नामक तमिल के लोकप्रिय विज्ञान लेखक ने 1917 से 1932 के दौरान 1500 लेख तथा 16 पुस्तकों की रचना कर डाली। यह अपने–आप में एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। वैसे, देखा जाए तो अब बांग्ला, मराठी, तमिल, गुजराती आदि की तुलना में हिंदी भाषा में रचित साहित्य की संख्या बहुत बड़ी है।

कथा साहित्य में विज्ञान लेखन

देखा जाए तो हिंदी के कथा साहित्य में विज्ञान लेखन प्रायः कम ही हुआ है। शायद हिंदी साहित्य के लेखक वैज्ञानिक लेखन के प्रति उतने उदारमना नहीं रहे हों अथवा उनके भीतर विज्ञान की गहरी समझ एवं विज्ञान के उचित ज्ञान का अभाव रहा हो, जिसके कारण हिंदी के अधिकतर लेखक विज्ञान लेखन में प्रवृत्त नहीं हो पाए हैं। बहरहाल, भारत में विज्ञान साहित्य लेखन की परंपरा में पहला नाम बंगाल का आता है– *मूर्धन्य वैज्ञानिक सर जगदीश चंद्र बसु द्वारा बंगाली की प्रथम विज्ञान कथा 'पलातक तूफान' 1897 ई. में भारत में प्रकाशित हुई थी। बांग्ला साहित्य की भाँति मराठी भाषा का भी साहित्य अतीव समृद्ध है, परंतु इस भाषा की प्रथम विज्ञान कथा 'तरचेहास्य' 1915 में प्रकाशित हुई थी। इन दोनों कथाओं में विज्ञान का संपुट था। 'पलातक तूफान' (तूफान पर विजय) सरफेस टेन्शन पर आधारित थी तो तरचेहास्य (तारे का रहस्य) तारे के विज्ञान सम्मत पक्ष से संबंधित थी। 'आश्चर्यवृत्तांत' विशुद्ध रूप से विज्ञान गल्प था जो तिलस्मी और जासूसी प्रभावों से सर्वथा उन्मुक्त था। हिंदी की प्रथम लंबी विज्ञान कथा 'आश्चर्य वृत्तांत' थी, जो साहित्याचार्य पं. अंबिकादत्त व्यास (1858–1900) द्वारा विरचित तथा उन्हीं के समाचार पत्र 'पीयूष प्रवाह' में 1884 से 1888 तक के अंकों में प्रकाशित होती थी।*[27] तात्पर्य यह है कि हिंदी भाषा में विज्ञान विषयों पर आधृत आलेखादि लेखन का कार्य तो होता ही रहा है, लेकिन हिंदी साहित्य में विज्ञान कथा–कहानियों एवं कविताओं के लेखन का कार्य भी हुआ अवश्य है, परंतु यह अपेक्षाकृत अब तक उपेक्षित ही रहा है। हालाँकि, हिंदी भाषा में विज्ञान लेखन को लेकर पहले जो सबसे बड़ी समस्या आड़े आती थी वह थी, हिंदी में वैज्ञानिक एवं पारिभाषिक शब्दावलियों की कमी, परंतु जबसे भारत सरकार के वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग एवं केंद्रीय हिंदी संस्थान के तत्वावधान में पारिभाषिक

शब्दावलियों का प्रकाशन होने लगा है, तबसे देश में वैज्ञानिक एवं पारिभाषिक शब्दावलियों का कतई अभाव नहीं है। इसलिए अब हिंदी में विज्ञान साहित्य अथवा हिंदी साहित्य में विज्ञान लेखन कम होने के लिए कम–से–कम वैज्ञानिक एवं पारिभाषिक शब्दावलियों के अभाव का बहाना नहीं बनाया जा सकता।

संदर्भ–सूत्र

1. विदुषी आमेटा एवं दयानिधि पाठक, भारतीय ज्ञान परंपरा और शोध, दि एशियन थिंकर, ए क्वार्टरली बाइलिंगुअल पीयर–रिव्यूड जरनल फॉर सोशल साइंसेज एंड ह्यूमैनिटीज, वर्ष–04, वॉल्यूम–03, इशु–15, जुलाई–सितंबर 2022
2. तैत्तरीय आरण्यक, 2.10, निरुक्त–1.6.20 (वेद विज्ञान भास्वती, वैदिक विज्ञान केंद्र, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वैदिक चेतना विज्ञान, पृष्ठ–01)
3. मनु स्मृति (भाषा पत्रिका, मार्च–अप्रैल 2020, पृष्ठ–96)
4. सत्यार्थ प्रकाश
5. बृहद्योग, याज्ञवल्क्य स्मृति. 12.1 (विज्ञान और तकनीकी में वेदों की प्रासंगिकता, पृष्ठ–178)
6. महाभारत अनु. 1.22.4 (विज्ञान और तकनीकी में वेदों की प्रासंगिकता, पृष्ठ–178)
7. यजुर्वेद, 18.40 (भाषा पत्रिका, मार्च–अप्रैल 2020, पृष्ठ–57)
8. निरुक्त 2.6 (भाषा पत्रिका, मार्च–अप्रैल 2020, पृष्ठ–57)
9. ऋग्वेद–10.72.4 (भाषा पत्रिका, मार्च–अप्रैल 2020, पृष्ठ–58)
10. ऋग्वेद 1.50.11 (भाषा पत्रिका, मार्च–अप्रैल 2020, पृष्ठ–58)
11. वैशेषिक सूत्र ऑफ कणाद, लेखक–देवाशीष चक्रवर्ती, प्रकाशक डी. के. प्रिंटवर्ड, 2004 (वेदविज्ञान भास्वती, वैदिक विज्ञान केंद्र, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधानों के मूल में है वैदिक विज्ञान, पृष्ठ–20)
12. वैशेषिक सूत्र ऑफ कणाद, लेखक–देवाशीष चक्रवर्ती, प्रकाशक–डी. के. प्रिंटवर्ड, 2004 (वेदविज्ञानभास्वती, वैदिक विज्ञान केंद्र, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधानों के मूल में है वैदिक विज्ञान, पृष्ठ–20)
13. महाभारत–शांति पर्व, 261 (वेदविज्ञान भास्वती, वैदिक विज्ञान केंद्र, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधानों के मूल में है वैदिक विज्ञान, पृष्ठ–20)
14. आर्यभटीयम, लेखक डॉ. दिवाकर दत्त शर्मा, प्रकाशक–अभिषेक प्रकाशन, द्वितीय संस्करण, 2017 (वेदविज्ञान भास्वती, वैदिक विज्ञान केंद्र, काशी हिंदू विवि, आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधानों के मूल में है वैदिक विज्ञान, पृष्ठ–21)

15. सुश्रुत संहिता, संपादक– नारायण राम आचार्य, प्रकाशक चौखंभा कृष्णदास अकादमी, 2014 (वेदविज्ञान भास्वती, वैदिक विज्ञान केंद्र, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधानों के मूल में है वैदिक विज्ञान, पृष्ठ–21) तथा (भाषा पत्रिका, मार्च–अप्रैल 2020, पृष्ठ–103)
16. रसरत्नाकर, लेखक– डॉ. स्वामीनाथ मिश्रा, प्रकाशन–चौखंभा ओरन्टालिया, 2015 (वेदविज्ञान भास्वती, वैदिक विज्ञान केंद्र, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधानों के मूल में है वैदिक विज्ञान, पृष्ठ–21)
17. यंत्र सर्वस्व/वैमानिकी शास्त्र, लेखक महर्षि भरद्वाज, कोरानेशन प्रेस, मैसूर, 2017 (वेदविज्ञान भास्वती, वैदिक विज्ञान केंद्र, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधानों के मूल में है वैदिक विज्ञान, पृष्ठ–22)
18. अगस्त्य संहिता, लेखक– महावीर प्रसाद, प्रकाशक–विद्यावारिधि ग्रंथमाला प्रकाशन, 1985 (वेदविज्ञान भास्वती, वैदिक विज्ञान केंद्र, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधानों के मूल में है वैदिक विज्ञान, पृष्ठ–22)
19. आधुनिक हिंदी का आदिकाल, श्री नारायण चतुर्वेदी, हिंदुस्तानी एकेडमी, 1973 (स्वतंत्रतापूर्व हिंदी में विज्ञान लेखन, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, पृष्ठ–13)
20. हिंदी पुस्तक साहित्य (1867–1942), माता प्रसाद गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी 1945 (स्वतंत्रतापूर्व हिंदी में विज्ञान लेखन, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, पृष्ठ–13)
21. विज्ञान, 1939, डॉ. सत्य प्रकाश, (स्वतंत्रतापूर्व हिंदी में विज्ञान लेखन, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, पृष्ठ–13)
22. डॉ. शिव गोपाल मिश्र, स्वतंत्रतापूर्व हिंदी में विज्ञान लेखन, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, 2001, पृष्ठ 14
23. डॉ. शिव गोपाल मिश्र, हिंदी में स्वतंत्रता परवर्ती विज्ञान लेखन, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, 2019, पृष्ठ 15
24. डॉ. सुशील कुमार शर्मा, साहित्य में विज्ञान लेखन, साहित्यकुंज.नेट, अंक 208, जुलाई प्रथम, 2022 में प्रकाशित
25. डॉ. सुशील कुमार शर्मा, साहित्य में विज्ञान लेखन, साहित्यकुंज.नेट, अंक 208, जुलाई प्रथम, 2022 में प्रकाशित
26. डॉ. शिव गोपाल मिश्र, स्वतंत्रतापूर्व हिंदी में विज्ञान लेखन, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, 2001, पृष्ठ 17, 18
27. डॉ. सुशील कुमार शर्मा, साहित्य में विज्ञान लेखन, साहित्यकुंज.नेट, अंक 208, जुलाई प्रथम, 2022 में प्रकाशित

❑❑❑

भारतीय ज्ञान परंपरा और हिंदी साहित्य में विज्ञान लेखन

✍ डॉ. अमित सिंह

ज्ञान की विभिन्न धाराओं का आदर्श प्रवाह भारतीय चिंतन–मनन, श्रवण और लेखन में प्रवाहित होता रहा, इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए हमें अपनी भारतीय ज्ञान परंपरा पर गर्व होता है, और साथ ही यह भी भान होता है कि विदेशी ज्ञान पर हमें मुग्ध होने की आवश्यकता नहीं है। भारतीय ज्ञान परंपरा में विभिन्न शास्त्रों पर विमर्श मिलता है। विषयों का वैविध्य एवं ज्ञान–विज्ञान की विभिन्न श्रेणियों के रूप में ज्योतिष, वैद्यक, साहित्य, कामशास्त्र, नीति, खगोल, वनस्पति आदि अन्य विषयों पर भारतीय चिंतन परंपरा बराबर मौजूद दिखती है। हिंदी साहित्य के संदर्भ में देखा जाए तो हम पाते हैं कि एक तरफ जहाँ हिंदी साहित्य में भी भारतीय ज्ञान एवं चिंतन परंपरा का प्रभाव साहित्य की विविध विधाओं में देखने को मिलता है तो दूसरी तरफ ज्ञान–विज्ञान का वैविध्य भी विद्यमान है। आज का भारतीय युवा पश्चिम की वैचारिकी के प्रभाव में आकर अपने पारंपरिक भारतीय चिंतन से विमुख हो जाता है, जबकि ऐसी बहुत सारी पश्चिमी अवधारणाएँ हैं जिनके बीज–बिंदु और चिंतन भारतीय ज्ञान परंपरा में पूर्व से ही विद्यमान हैं। ज्ञान–विज्ञान की गहन जड़ें भारतीय ज्ञान एवं चिंतन परंपरा की थाती हैं। शून्य की खोज हो या प्रतीयमान अर्थ की बात हो, भारतीय चिंतन हजारों वर्षों पूर्व इन सब पर चिंतन–मनन कर चुका है। पश्चिमी विचारक जाक देरिदा की एक सैद्धांतिकी है विखंडनवाद– डी कंस्ट्रक्शन एवं सूक्ष्म अर्थ जिनको हमारे यहाँ ध्वनि सिद्धांतकार आचार्य आनंदवर्धन प्रतीयमान अर्थ के रूप में नौवीं शताब्दी में अपने ग्रंथ 'ध्वन्यालोक' में व्यापक चर्चा कर चुके हैं। ऐसे ही भारतीय ज्ञान–विज्ञान की चिंतन–सरणियों के बीच बिंदुओं से भी बहुत कुछ पश्चिमी समाज चिंतकों ने ग्रहण किया है और उसे अपने शब्दों से सिद्धांत के रूप में पुनर्व्याख्यायित कर दिया है।

ज्ञान–विज्ञान की विभिन्न श्रेणियों को लेकर पश्चिमी जगत के व्यामोह से ग्रसित होकर हम अपनी जड़ों से कटते चले जा रहे हैं। ऐसे समय में अपने पारंपरिक ज्ञान को नजरअंदाज करना घातक साबित होता है। भारत राष्ट्र की एकता रूपी माला में विविध भाषाओं और आचार्य–व्यवहार, जलवायु रूपी मोती स्वतः पिरोए हुए हैं,

आवश्यकता है एकता रूपी माला के इन सभी मोतियों की समन्वित गणना करने की। एकता रूपी सूत्रों के रूप में भाषा इन सब में सबसे महत्त्वपूर्ण होती है क्योंकि कोई भी साहित्य बिना भाषा के नहीं हो सकता। जब हम सब भारतीय ज्ञान परंपरा की बात करते हैं तो निश्चित रूप से भारतीय भाषाओं के माध्यम से संप्रेषित या संक्षिप्त संरक्षित ज्ञान की बात करते हैं। संस्कृत भाषा भारतीय ज्ञान परंपरा का प्राचीन स्रोत है। हिंदी चूँकि अधिकांश भूभाग पर बोली जाने बोली समझी जाने वाली भाषा है, इसलिए राष्ट्रभाषा, राजभाषा एवं संपर्क भाषा के रूप में हिंदी की गणना होती है। हिंदी साहित्य में प्रचलित विभिन्न साहित्यिक विधाओं के माध्यम से ज्ञान–विज्ञान की परिपाटी उद्घाटित हुई है। कविता, कथा एवं नाटक को इसमें प्रमुख रूप से गणित किया जा सकता है। इन सब साहित्यिक विधाओं के माध्यम से हिंदी साहित्य में विज्ञान लेखन के स्वरूप को अग्रसर करना उचित प्रतीत होता है। हिंदी साहित्य में विज्ञान लेखन से तात्पर्य है कि पारंपरिक रूप में मानव समाज के विभिन्न विषयों के अतिरिक्त मशीन, औद्योगिकीकरण यंत्र और आविष्कार से संबंधित तत्वों पर आधारित लेखन जो साहित्य लेखन प्रायः व्यावहारिक प्रयोग के अभाव में शामिल नहीं हो पाते।

हिंदी में विज्ञान लेखन को हम हिंदी साहित्य में तो कुछ जाँच–परखकर देख ही पाएँगे; इसके अलावा हिंदी भाषा में विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में संकलित विज्ञान लेखन से संबद्ध सामग्री भी इस कड़ी में बराबर गणित की जा सकती है। स्वाधीनता के उपरांत देश के विकास में जो अपेक्षित परिवर्तन इस स्तर पर होने चाहिए या हो रहे थे, उनका आकलन और उनके मानव जीवन की गुणवत्ता पर पड़ने वाले प्रभाव का अंकन भी इसमें प्रमुख रूप से शामिल रहा है; क्योंकि विज्ञान लेखन और साहित्य लेखन दो अलग–अलग धाराएँ हैं। विज्ञान एवं यांत्रिकी की जानकारी का संकलन–संग्रह व प्रशासन एक अलग बात है, जबकि वही जानकारी एवं तथ्य जब किसी भाषा एवं साहित्य के माध्यम से सामने आते हैं तो उसका अलग स्वरूप, अलग महत्त्व हो जाता है। साहित्यिक कलेवर में वह जानकारी अपने तथ्यात्मक रूप से बदलकर रचनात्मक रूप में दिखाई देती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में मातृभाषा में शिक्षा देने की वकालत और प्रयोग से भी, विभिन्न भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक विषयों की उपलब्ध जानकारी को एक उचित दर्जा मिलने लगा है। यदि साहित्यिक विधाओं में विज्ञान लेखन पर बात की जाए तो हम पाते हैं कि हिंदी में निबंध, कहानी, उपन्यास, कविता, नाटक, साक्षात्कार, डायरी, रिपोर्ताज, जीवनी, पत्र–पत्रिकाएँ, अनुवाद और साथ ही आलोचनात्मक ग्रंथ आदि के रूप में विविध क्षेत्र में लेखन कार्य देखने को मिलता है। इसी के साथ–साथ विभिन्न वैज्ञानिक विषयों के शब्दों एवं शब्दकोशों का भी निर्माण निरंतर हुआ है। विज्ञान लेखन को लेकर अन्य विषयों की बात की जाए तो उसमें रसायन, गणित, भौतिकी, ज्योतिष, जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, अंतरिक्ष विज्ञान, पर्यावरण, कृषि विज्ञान, कंप्यूटर विज्ञान आदि बहुत से विषयों पर लेखन कार्य देखने

को मिलता है। इन सभी विषयों को उजागर करके जब हिंदी भाषा में अपनी जानकारी और ज्ञान को साझा करते हैं तो उस समय हम अपने आप हिंदी में विज्ञान लेखन के पक्ष को मजबूत कर रहे होते हैं। हमारे आसपास जितनी वनस्पतियाँ होती हैं, हमारे लोक जीवन में उनके लिए जो नाम प्रचलित हैं, वे ही जनमन के कंठ में बसे होते हैं। जबकि उनके साइंटिफिक नामों या कहें कि अधिकांश से परिचित ही नहीं होते, ऐसे में अंतरबोध नाम मात्र का रह जाता है। बात केवल वनस्पति के परिचय की नहीं है, बल्कि इस प्रकार अन्य क्षेत्रों में जैसे चिकित्सा, विधि आदि क्षेत्रों में भी भाषा का अंतर ही आड़े आता है जिसमें अनुवाद एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हिंदी भाषा के माध्यम से जब इन क्षेत्रों का अध्ययन–अनुसंधान किया जाता है तो हिंदी में विज्ञान के प्रसार एवं लेखन को बढ़ावा मिलता है। जहाँ तक भारतीय ज्ञान परंपरा की बात करें तो भारतीय ज्ञान में भारत के प्राचीन ग्रंथ शास्त्रों में विभिन्न विषयों की व्यापक प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध है। भारत की इसी व्यापक ज्ञान परंपरा को वर्तमान में धारण करने की आवश्यकता है। हिंदी भाषा एवं साहित्य में भी पौराणिक ग्रंथों के आधार पर बहुत सारी जानकारी संप्रेषित होती है। मध्यकालीन कवि बिहारी जब ज्योतिष, वैदिक आदि विषयों पर दोहे लिखते हैं तो कहीं ना कहीं भारतीय ज्ञान को भी आगे बढ़ा रहे होते हैं। कवि देव का नायिका भेद भी इसी क्रम में गणित किया जा सकता है। विज्ञान का समय–सापेक्ष तकनीक से संबंध एक आधुनिक पहलू है जो समय–समय पर अपने स्वरूप को मानव जाति की अपेक्षित स्थितियों के अनुसार बदलता रहा है। आदिकाल से लेकर मध्यकाल और आधुनिक काल की शुरुआत से लेकर आज तक इस तरह से भी आधुनिकता के इन पहलुओं– विज्ञान एवं तकनीक ने तरक्की की है। वह अपने–अपने समय में साहित्य में भी निबद्ध होती चली गई है। बस महत्त्वपूर्ण है कि किस भाषिक स्वरूप में वह उभर कर सामने आती है। जहाँ तक हिंदी साहित्य में विज्ञान लेखन की बात करें तो हमें निराशा नहीं, बल्कि एक आश्वस्ति मिलती है। हमारे यहाँ तो यदि कृषि विज्ञान की बात करें तो भी घाघ जैसे कवियों की कविता उपलब्ध है। यह कविता भारत जैसे किसी प्रधान देश के लिए कृषि क्षेत्र की व्यापक जानकारी और कृषि अनुकूल जलवायु– वातावरण को बखूबी उद्घाटित करती है। इसी क्रम में आधुनिक काल में स्वाधीनतापूर्व विज्ञान एवं वैज्ञानिक समझ व जानकारी के प्रति यदि कहीं से जनमानस को प्रेरणा मिलती है तो वह क्षेत्र साहित्य लेखन का ही रहा है। विभिन्न साहित्यिक विधाओं के माध्यम से इसे आगे बढ़ते हुए हम देख पाते हैं। भारतेंदुयुगीन लेखक 'विटामिन' जैसे निबंध लिखकर इस दिशा में कार्य कर रहे थे। विज्ञान जैसे जटिल विषयों को रोचक एवं जनप्रिय बनाने में साहित्यकारों का विशेष महत्त्व रहा है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की समझ रखने वाले जब साहित्य की दिशा में कलम चलाते हैं तो इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य को अंजाम मिलता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने हिंदी साहित्य के इतिहास में खड़ी बोली

हिंदी गद्य के विकास की चर्चा करते हुए आगरा में पादरियों की स्कूल बुक समिति के माध्यम से विज्ञान लेखन के प्रचलन को इस प्रकार अंकित किया है– *आगरे की उक्त सोसाइटी के लिए संवत् 1897 में पंडित भट्ट ने 'भूगोल सर' और संवत 1904 में पंडित बद्रीलाल शर्मा ने 'रसायन प्रकाश' लिखा। कलकत्ते में ऐसे ही एक स्कूल बुक सोसाइटी थी जिसने 'पदार्थ विद्यासागर' (संवत 1903) आदि कई वैज्ञानिक पुस्तकें निकाली थीं*[1]

यहाँ हम पाते हैं कि हिंदी में वैज्ञानिक विषयों पर लेखन का सिलसिला तो आधुनिक हिंदी गद्य के प्रचलन के समय से ही देखने को मिलता है। हाल ही में राष्ट्रीय शिक्षा नीति के संदर्भ में विभिन्न वैज्ञानिक विषयों का हिंदी भाषा में लेखन साहित्य अनुवाद पाठ्यक्रम की दृष्टि से भी एक बड़ी मांग के रूप में सामने आ रहा है जिस पर तीव्र गति से कार्य किया जा रहा है। वैज्ञानिक विषयों को लेकर हिंदी में लेखन कार्य स्वाधीनता के पश्चात् धीरे–धीरे गति पकड़ने लगा है। ऐसे बहुत से लेखक हुए हैं जिन्होंने हिंदी भाषा के माध्यम से वैज्ञानिक विषयों में लेखन कार्य किया है। व्यक्ति और संस्थान दोनों ही स्तरों पर इस दिशा में कार्य हुआ है– *केंद्रीय मत्स्य शिक्षा संस्थान बरसोवा, मुंबई द्वारा मत्स्य विज्ञान की 16 पुस्तकों का हिंदी में प्रकाशन कर दिया गया है। निजी प्रयासों के तहत वाराणसी के चिकित्सक डॉ. प्रिय कुमार चौबे ने 46 पुस्तकें हिंदी में आयुर्विज्ञान विषय पर प्रकाशित करवा दी हैं। इन्हें अब तक कई प्रसिद्ध हिंदी संस्थाओं द्वारा सम्मानित भी किया जा चुका है। रायपुर के डॉक्टर विनोद बिहारी सक्सेना ने भी आयुर्विज्ञान की हिंदी में 13 पुस्तकें प्रकाशित कर दी हैं, परंतु इन पुस्तकों की बाबत जानकारी नहीं है। लखनऊ के डॉक्टर टी सी गोयल हिंदी में शल्य शास्त्र पर पुस्तक लिख चुके हैं। हिंदी के प्रति डॉक्टर, इंजीनियर, प्रोफेसरों में जोश है, उमंग है जिसके कारण कई पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं*[2]

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा विविध वैज्ञानिक विषयों पर अंग्रेजी–हिंदी शब्दकोश तैयार किए गए हैं जैसे रसायन मूलभूत शब्दावली, आयुर्विज्ञान मूलभूत शब्दावली आदि। हिंदी में विज्ञान लेखन के लिए जो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात हो सकती है वह यह कि विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्र में कार्यरत व्यक्ति विशेष हिंदी भाषा में लेखन कार्य करें। दूसरा उनके द्वारा लिखे गए लेखों का बेहतरीन हिंदी अनुवाद हो। तीसरा साहित्यिक आयाम के माध्यम से विज्ञान एवं तकनीकी के पक्ष को आगे बढ़ाया जाए। इस संदर्भ में हिंदी में सम्मेलन, सभाओं, पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन एवं संपादन परियोजना कार्य, हिंदी में उपलब्ध विज्ञान तकनीकी से संबंध सामग्री पर आधारित पाठ्यक्रमों का निर्माण आदि ऐसे बहुत सारे कदम उठाए जा सकते हैं और उठाए भी जा रहे हैं। हिंदी माध्यम से विज्ञान विषय पर कई सारी पत्रिकाएँ प्रकाशित होती रही हैं यथा, विज्ञान परिषद प्रयाग द्वारा प्रकाशित होने वाली विज्ञान पत्रिका, वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद द्वारा प्रकाशित विज्ञान

प्रगति पत्रिका, हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद द्वारा प्रकाशित वैज्ञानिक पत्रिका। इसी प्रकार ड्रीम 2047, विज्ञान गंगा, विज्ञान प्रकाश, विज्ञान आलोक, विज्ञान बंधु, विज्ञान परिचय, विज्ञान जगत आदि बहुत सारी पत्रिकाएँ हिंदी में वैज्ञानिक विषयों पर निकलती रही है। दूसरी ओर साहित्यिक विधाओं के स्तर पर देखें तो ऐसी सैकड़ों रचनाएँ हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं में सृजित मिलती हैं जो हिंदी में वैज्ञानिक दिशा को एक आधार प्रदान करती दिखाई देती हैं। हिंदी साहित्य के परिप्रेक्ष्य में यदि विज्ञान लेखन की बात करें तो हिंदी की साहित्यिक विधाओं में कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी आदि कई साहित्यिक विधाओं में विज्ञान एवं तकनीकी क्षेत्र की चर्चा एवं वर्णन विमर्श देखने को मिलता है। विज्ञान एवं तकनीकी क्षेत्र से जुड़े हुए लोग जब हिंदी भाषा में साहित्य सृजन करते हैं तो भाषा के स्तर पर हिंदी का विषय ज्ञान वृद्धि को प्राप्त होता है। जबकि विज्ञान एवं तकनीकी क्षेत्र के अनुभव कार्य एवं प्रणाली को हम साहित्यिक स्वर एवं कलेवर में सहायता से ग्रहण कर पाते हैं। भारत सरकार के वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा प्रकाशित ग्रंथ 'हिंदी में स्वतंत्र प्रवृत्ति, विज्ञान लेखन को विज्ञान परिषद प्रयाग के प्रधानमंत्री डॉ. शिव गोपाल मिश्र ने तैयार किया है जिसमें उन्होंने हिंदी की विविध विधाओं में विज्ञान लेखन की स्थिति को वर्णित करते हुए, विज्ञान लेखन की सूची एवं परिचय भी प्रस्तुत किया है। इसमें उन्होंने मुख्यतः श्री बृजमोहन लाल, डॉक्टर नंदलाल सिंह, श्री रामचंद्र तिवारी कृत 'विज्ञान और सभ्यता'; हरिशचंद्रगुप्त कृत 'ठोस ज्यामितिदिसंबर', प्रसाद गुप्त कृत 'कुदरत कैमरा', भानु शंकर मेहता कृत 'मंगल ग्रह में अंतरिक्ष के द्वार', रामचरण मेहरोत्रा कृत 'भौतिक रसायन', रामकृष्ण पाराशर कृत 'विज्ञान के नए चमत्कार' और बद्री कृत 'परही रामेश्वर', अशांत कृत 'फसल चक्र उन्नत सिंचाई', रमेश चंद्र कपूर कृत 'परमाणु विखंडन', चमन लाल गुप्त कृत 'विज्ञान और वैज्ञानिकी', डॉक्टर हरचरण सिंह बिश्नोई कृत 'डिमकों की संरचना और जैविकी', महाराज नारायण मेहरोत्रा कृत 'हमारा पर्यावरण', श्याम सुंदर शर्मा कृत 'चंद्रलोक की यात्रा', 'सागर की कहानी', हरीश अग्रवाल कृत 'अंतरिक्ष के चमत्कार', दयानंद पेंट कृत 'विकासवाद', रमेश वर्मा कृत 'अंतरिक्ष स्पर्श', अत्री देव विद्यालंकार कृत 'स्वास्थ्य विज्ञान', विष्णु दत्त शर्मा कृत 'विज्ञान मुक्तावली', रमेश दत्त शर्मा कृत 'विज्ञान', यतीश अग्रवाल कृत 'चिकित्सा विज्ञान की कहानी', सुधांशु कुमार जैन कृत 'वनस्पति कोश', शिवगोपाल मिश्र कृत 'दैनिक जीवन में रसायन', श्रवण कुमार तिवारी कृत 'विद्युत और चुंबकत्व', मनोहर लाल के उपन्यास 'पृथ्वी का अंत', बनाकर मूल्य कृत 'आकाश दर्शन', प्रेमानंद चंदोला कृत कविता–संग्रह 'कोशिका जयंत', विष्णु नारलीकर कृत कहानी–संग्रह 'धूमकेतु: तारों की जीवन गाथा' के साथ ही सूर्य प्रकाश, दर्शन लाल पाठक, प्रेमानंद श्रीवास्तव, श्यामलाल काकानी, व्यायाम सुंदर पुरोहित, रमेश सोमवंशी, देवनारायण पांडे, देवेंद्र मेवाड़ी, सुखदेव प्रसाद, दिनेश मणि, जयप्रकाश भारती, पृथ्वी नाथ पांडे आदि द्वारा

विज्ञान लेखन की चर्चा की गई है। इन लेखकों द्वारा लिखी गई सूची से अवगत होने पर ही हमें यह सहज आभास हो जाता है कि हिंदी में विज्ञान लेखन का काफी बड़ा फलक विद्यमान है, जिस पर कार्य एवं चर्चा बराबर होने की गुंजाइश है। इसी के साथ हम देख पाते हैं कि कथा के क्षेत्र में वीरेंद्र जैन का उपन्यास 'डूब', राजेश जैन का उपन्यास 'बंद वध', वेद प्रकाश अमिताभ का उपन्यास 'पर्यावरण की पुकार', राजेश जैन का कहानी–संग्रह 'आंधी रोशनी'; कविता के क्षेत्र में राजेश जैन एवं श्रवण कुमार उर्मलिया के कविता–संग्रह 'यंत्र सप्तक', राजेश जैन के कविता संग्रह 'रोशनी के खेतों में', राजेश जैन का निबंध–संग्रह 'ऊर्जा बिहार' आदि हिंदी नाटक के क्षेत्र में धर्मवीर भारती के 'अंधा युग' में शुरू हुए विमर्श से लेकर राजेश जैन के नाटक 'चिमनी चोगा', 'कौआ चला हंस की चाल'; राजेश जैन के एकांकी–संग्रह 'धक्का पंप' और भारतीय जन विज्ञान तथा विज्ञान प्रसार परिषद, नई दिल्ली द्वारा लिखित विज्ञान नाटक आदि अपनी रचनात्मकता से हिंदी में मौलिक विज्ञान लेखन की परंपरा को सुदृढ़ करते दिखलाई देते हैं। विचार की दृष्टि से कहा जाए तो विदेशों में भी वहाँ की मातृभाषाओं में ही चिकित्सा विधि आदि की पढ़ाई करवाई जाती है। ऐसे में हमारे भारत में भी यही अप्रोच होनी चाहिए जिसे वर्तमान में राष्ट्रीय शिक्षा नीति के माध्यम से हम प्रारंभिक स्तर पर क्रियान्वित होता देख पा रहे हैं।

समाहार रूप में कहें तो हिंदी में विज्ञान लेखन विभिन्न स्तरों पर आज आश्वस्त करता दिखलाई देता है जिसमें साहित्यिक विधाओं के रूप में, पत्र–पत्रिकाओं के रूप में, आलोचना के रूप में, अनुवाद के क्षेत्र में यह कार्य होता दिखलाई देता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के पाठ्यक्रम में भी हिंदी में विज्ञान लेखन एवं अन्य भारतीय भाषा में भी विज्ञान लेखन की संभावनाओं के द्वार खुलते दिखलाई देते हैं। आवश्यकता है विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों में हिंदी में हुए विज्ञान लेखन को अधिक से अधिक लागू करने की। इससे हिंदी में विज्ञान लेखन को प्रोत्साहन भी मिलेगा और समाज में अपनी भाषा में वैज्ञानिक विषयों का बोध भी विस्तृत होगा।

संदर्भ ग्रंथ:

1. हिंदी साहित्य का इतिहास आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ 233, संस्करण 2012, श्रुति बुक्स, गाजियाबाद
2. हिंदी में विज्ञान भावना, डॉक्टर राय अवधेश कुमार श्रीवास्तव, पृष्ठ 265 संस्करण 2003, अधिशासी निदेशक, विश्व हिंदी न्यास, न्यूयॉर्क

❑❑❑

भारतीय ज्ञान परंपरा की वैज्ञानिकताः विविध आयाम

✍ डॉ. अनुशब्द

भारतीय ज्ञान परंपरा केवल अतीत का बखान या गुणगान नहीं है, बल्कि वर्तमान और भविष्य को दिशा देने वाली वह सांस्कृतिक धारा है जिसमें चिंतन, प्रयोग और अनुभव तीनों समाहित हैं। जब हम वेदों की ऋचाओं को देखते हैं, तो केवल देव–स्तुति ही नहीं मिलती, बल्कि प्रकृति के साथ संवाद, गणनात्मक विधियाँ, ध्वनि–विज्ञान और चिकित्सा की भी सुसंगत झलक मिलती है। इसी तरह उपनिषदों में आत्मा और ब्रह्म के संवाद के माध्यम से ज्ञान को गहराई से परिभाषित किया गया है और यह ज्ञान केवल मुक्ति की बात नहीं करता बल्कि अनुभव, विवेक और वैचारिक स्वतंत्रता की भी बात करता है। आधुनिक काल में जब विज्ञान शब्द से हमारा आशय प्रयोगशालाओं, यंत्रों और आँकड़ों से होता है तब यह जानना ज़रूरी है कि क्या भारतीय परंपरा में विज्ञान का कोई ऐसा वैकल्पिक दृष्टिकोण था जो आज के संदर्भ में भी प्रासंगिक हो सकता है? उत्तर है– हाँ। भारतीय मनीषा ने विज्ञान को केवल निष्कर्ष नहीं, बल्कि प्रक्रिया माना; केवल उपकरण नहीं, बल्कि अनुभव माना; केवल प्रयोग नहीं, बल्कि पर्यवेक्षण और प्रेरणा माना। *सा विद्या या विमुक्तये*[1] अर्थात् वह विद्या, वह ज्ञान, जो बंधनों से मुक्ति दिलाए, वही सच्चा ज्ञान है। यह मुक्ति केवल आध्यात्मिक नहीं है, बल्कि अंधविश्वास, भय, संकीर्णता और मानसिक बंधनों से भी है। इस पंक्ति का संदर्भ व्यापक है। जब आर्यभट्ट सूर्यग्रहण की वैज्ञानिक व्याख्या देते हैं, तब वे एक सामाजिक बंधन तोड़ रहे होते हैं; जब चरक 'त्रिदोष सिद्धांत' के आधार पर उपचार की बात करते हैं, तो वे रोग को केवल पाप का परिणाम मानने वाले दृष्टिकोण को चुनौती दे रहे होते हैं। यह मुक्त होने की विज्ञानपरक प्रक्रिया है। इसी भावना को हितोपदेश के इस श्लोक में भी देखा जा सकता है–*विद्या ददाति विनयं, विनयाद् याति पात्रताम्।*[2] अर्थात् विद्या नम्रता देती है और विनय से पात्रता आती है। यह विज्ञान की ही चेतना है जो अहंकार नहीं, जिज्ञासा और विनय को महत्त्व देती है। यह स्पष्ट है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में विज्ञान केवल तथ्यों का संग्रह नहीं, बल्कि एक जीवंत दृष्टिकोण है जिसमें प्रकृति, मानव, और ब्रह्मांड के बीच अंतःसंवाद है। इस आलेख का उद्देश्य इस अंतःसंवाद की व्याख्या करते हुए यह दर्शाना है कि कैसे

हमारे ग्रंथों, दर्शन और परंपराओं में विज्ञान के बीज निहित हैं और उन्हें आधुनिक लेखन में किस प्रकार पुनर्पाठित किया जा सकता है।

भारतीय ज्ञान परंपरा में "विज्ञान" शब्द की व्युत्पत्ति "वि" उपसर्ग और "ज्ञा" धातु से मिलकर हुई है, जिसका अर्थ होता है विशेष रूप से जानना। यह केवल सूचनाओं का संकलन नहीं, बल्कि गहन अनुभव, विवेकपूर्ण विवेचना और व्यापक अवबोधन की प्रक्रिया है। विज्ञान हमारे यहाँ न तो केवल प्रयोगशाला की चारदीवारी तक सीमित रहा है, न ही केवल इंद्रियगम्य वस्तुओं की गणना तक। वह समस्त सृष्टि, चेतना और ब्रह्मांड के साथ संवाद का एक माध्यम रहा है। यह संवाद वैदिक मंत्रों, उपनिषदों के कथनों और दर्शनों की तर्कपद्धति के माध्यम से निरंतर चलता रहा है। ऋग्वेद के प्रारंभिक मंत्र में अग्नि को यज्ञ का पुरोहित, देवताओं का ऋत्विज और ऋचाओं का वाचक कहा गया है– *अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम* (ऋग्वेद 1.1.1)[3] यह अग्नि किसी धार्मिक प्रतीक से अधिक एक वैज्ञानिक तत्त्व है– ऊर्जा का प्रतिनिधि, जो सृष्टि की गति, प्रकाश और ताप का मूल स्रोत है। इस प्रकार ऊर्जा की अवधारणा वेदों में केवल प्रतीक नहीं, वैज्ञानिक बोध की आधारशिला है। यजुर्वेद और अथर्ववेद में हमें प्रकृति के विविध रूपों, औषधियों, ऋतुओं, ग्रहों और नक्षत्रों की सटीक व्याख्या मिलती है। अथर्ववेद में कहा गया है– *भेषजं जरसं जर्यं तन्वाना वर्धयन्ति च* (अथर्ववेद 4.9.2)[4], अर्थात् औषधियाँ वृद्धावस्था की क्षीणता को दूर कर तन को पुष्ट करती हैं। यह कथन केवल चिकित्सा संबंधी विश्वास नहीं है, बल्कि शरीर में पुनरुत्थान की क्षमता और वनस्पति विज्ञान की पारंपरिक समझ का प्रमाण है। उपनिषदों में ज्ञान का स्वरूप सुस्पष्ट है– *सर्वं खल्विदं ब्रह्म* (छांदोग्य उपनिषद् 3.14.1)[5] अर्थात् यह संपूर्ण जगत ब्रह्मस्वरूप है। यह अभिप्राय सृष्टि के कण–कण में चेतना के समावेश की वैज्ञानिक भावना को व्यक्त करता है। उपनिषदों की संवादात्मक शैली– जैसे याज्ञवल्क्य–मैत्रेयी संवाद, उद्दालक और श्वेतकेतु की वार्ता–ज्ञान को संवाद, विश्लेषण और तर्क के माध्यम से ग्रहण करने का पाठ पढ़ाती है, जो आधुनिक वैज्ञानिक विधि की आधारशिला के समान है। न्याय और वैशेषिक दर्शन विज्ञान के क्रमिक विकास की दार्शनिक आधारभूमि प्रस्तुत करते हैं। न्याय शास्त्र के चार प्रमाण– प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द। किसी भी वैज्ञानिक परीक्षण के चार मूल चरणों की तरह हैं।[6] वैशेषिक दर्शन के अणु–सिद्धांत में यह कहा गया है– *अणूनामैकत्वं दृश्यते*[7], यानी विभिन्न पदार्थों के गुण भिन्न होते हैं, किंतु उनका मूलभूत आधार एक ही अणु है। यह अवधारणा आज के Unified Field Theory की भारतीय छाया प्रतीत होती है। योगदर्शन में प्राण, चित्त और समाधि की जो अवस्थाएँ वर्णित हैं, वे न केवल आत्मिक विकास की प्रक्रिया हैं बल्कि आज की मनोवैज्ञानिक और न्यूरोलॉजिकल चिकित्सा के लिए भी गहन उपयोगी सिद्ध होती हैं। पतंजलि योगसूत्र में चित्तवृत्तियों का जो निरीक्षण है, वह आंतरिक विज्ञान की उत्कृष्टता को दर्शाता है।[8] इन समस्त

विचारों से स्पष्ट होता है कि भारतीय परंपरा में विज्ञान किसी एक आयाम तक सीमित नहीं रहा। वह केवल प्रयोगशाला की प्रयोगशीलता नहीं, बल्कि चेतना की गहराइयों तक उतरने वाली पद्धति रहा है। यहाँ ज्ञान केवल विषयवस्तु नहीं, एक साधना है। यह विज्ञान केवल उपयोगितावादी नहीं, मुक्तिदायी भी है। और यही उसकी विशिष्टता है– *सा विद्या या विमुक्तये*।

भारतीय ज्ञान परंपरा की वैज्ञानिक चेतना का एक विलक्षण पक्ष गणित, ज्योतिष और खगोल विज्ञान में उसकी अनुपम दृष्टि है। यह विज्ञान केवल तारों की गणना या अंकों के जोड़–घटाव तक सीमित नहीं था बल्कि यह उस सृजनात्मक तत्त्वदृष्टि से अनुप्राणित था, जो ब्रह्मांडीय लय को समझने का प्रयास करता था। भारत में गणना एक साधारण क्रिया नहीं, बल्कि एक आध्यात्मिक कर्म थी– गणना का प्रयोजन ब्रह्म की रचना को जानना और जीवन को उसकी लय के साथ समन्वित करना था। गणित को भारत में "गणना" नहीं, बल्कि "गणित" कहा गया– अर्थात् "गणना की पद्धति"। वैदिक युग से ही यज्ञीय गणनाओं के माध्यम से दिन, पक्ष, मास और वर्षों का मापन किया जाता था। "शुल्ब सूत्र" (8वीं–6वीं सदी ई.पू.) में यज्ञ–वेदियों के निर्माण के लिए समकोण त्रिभुज, वृत्त, वर्ग, समलंब चतुर्भुज जैसी रचनाओं का सुस्पष्ट विवरण मिलता है जो आज युक्लिडीय ज्यामिति से मेल खाता है। बौधायन शुल्ब सूत्र में पाई की मान्यता ($\sqrt{2} = 1.4142$) और पाइथागोरस प्रमेय का उल्लेख मिलता है जो भारतीय गणित को वैश्विक गणित से शताब्दियों पूर्व जोड़ता है।[9] भारत में शून्य की खोज केवल अंक नहीं, बल्कि दार्शनिक आविष्कार था। शून्य न केवल अभाव का प्रतीक था, बल्कि अनंत की उपस्थिति का गणितीय संकेत भी था। आर्यभट्ट (5वीं सदी) ने दशमलव पद्धति और स्थान मान प्रणाली को विकसित किया। उनके "आर्यभटीयम" में त्रिकोणमिति, वर्गमूल, समकोण त्रिभुजों की पहचान तथा खगोलीय गणनाओं के सिद्धांत सुस्पष्ट रूप में उपस्थित हैं।[10] वे स्पष्ट रूप से कहते हैं कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है और सूर्य स्थिर है। यह उस युग में एक क्रांतिकारी वैज्ञानिक उद्घोषणा थी। भास्कराचार्य (12वीं सदी) की "लीलावती" और "बीजगणित" जैसी रचनाएँ गणितीय सौंदर्य और जटिलता का अद्भुत संगम प्रस्तुत करती हैं। लीलावती में केवल सूत्र नहीं, बल्कि छंदबद्ध प्रश्नोत्तर शैली है– जिससे गणित का अध्ययन एक काव्यात्मक अनुभव बन जाता है। उस ग्रंथ में अनुपात, क्षेत्रफल, समास, घन, लघुतम समापवर्तक (LCM), महत्तम समापवर्तक (HCF), वक्र रेखाएँ, गति के समीकरण जैसी अवधारणाएँ इस कुशलता से प्रस्तुत की गई हैं कि आज भी वह गणित शिक्षण में संदर्भ ग्रंथ हो सकता है।[11]

ज्योतिष भारत में केवल "भाग्यविद्या" नहीं रही, वह खगोलीय निरीक्षण और कालगणना की सुव्यवस्थित विद्या थी। "ज्योतिष" का शाब्दिक अर्थ है– *ज्योति का*

विज्ञान अर्थात् प्रकाश और उसकी गति का अध्ययन। वेदों में नक्षत्रों, ऋतुओं और ग्रहों के संधान का गहरा संबंध कृषि, यज्ञ और जीवन के क्रियाकलापों से था। वेदांग ज्योतिष के रचयिता लगध ने 1350 ई.पू. में अयनांत, दिन–रात की माप, नक्षत्रों की गति, तिथियों का निर्धारण जैसी खगोलीय अवधारणाओं को वैज्ञानिक पद्धति से प्रस्तुत किया।[12] भारत के खगोलशास्त्रियों ने ग्रहीय गतियों, ग्रहणों, चंद्र–सूर्य की स्थितियों, वर्ष की लंबाई, दिन–रात्रि के अनुपात और यंत्रों के माध्यम से आकाशीय गणनाओं को इतना विकसित किया कि आधुनिक यंत्रों के अभाव में भी वे अत्यंत सटीक भविष्यवाणियाँ कर सकते थे। आर्यभट्ट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य जैसे खगोलज्ञों ने केवल भारत ही नहीं, अरब, फारस और यूरोप के खगोलशास्त्र को भी गहराई से प्रभावित किया। ब्रह्मगुप्त ने 'ब्रह्मस्फुटसिद्धांत' में ग्रहों की कक्षा, छाया की गणना और खगोलीय त्रिकोणमिति की परिकल्पनाओं को सूत्रबद्ध किया।[13] जंतर मंतर जैसी प्राचीन वेधशालाएँ इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि भारतीय खगोलशास्त्र न केवल गणनात्मक था, बल्कि वास्तु और यांत्रिक प्रयोग के स्तर पर भी सशक्त था। जयसिंह द्वारा निर्मित ये वेधशालाएँ उस युग में खगोलीय पिंडों की गति, सौर वर्ष की गणना, नक्षत्र स्थिति आदि को देखने के लिए उन्नत साधन रही हैं। इनमें सूर्यघड़ी, सम्राट यंत्र, राम यंत्र जैसे उपकरण आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणों की मूलभूत अवधारणाओं के अनुरूप काम करते थे।

इन सभी वैज्ञानिक क्षेत्रों की एक समान विशेषता यह है कि उनमें ज्ञान को केवल 'जानने' का विषय नहीं, बल्कि 'जीने' का साधन माना गया। गणना और खगोल एक 'अनुभव' बन गए– जहाँ ब्रह्मांड को देखकर गणितीय सौंदर्य की अनुभूति होती थी। भारत की गणनात्मक परंपरा केवल अंकों की विद्या नहीं थी, बल्कि वह समय, दिशा, आकाश, गति, रचना, सृष्टि और आत्मा के बीच के संबंधों की खोज थी। आधुनिक विज्ञान जिस "कॉस्मिक रिदम" की बात करता है, वह यहाँ सहस्रों वर्षों पूर्व जीवंत थी। अतः यह कहा जा सकता है कि भारत का गणित और खगोल विज्ञान केवल विज्ञान नहीं, बल्कि दर्शन, जीवन और ब्रह्मांड के सामंजस्य की वैज्ञानिक भाषा थी। यह परंपरा आज भी हमें यह सिखा सकती है कि विज्ञान केवल 'तकनीक' नहीं, बल्कि एक 'दृष्टि' है जो यदि भारतीय दृष्टिकोण से विकसित हो तो मानवता के लिए कल्याणकारी बन सकती है।

भारतीय ज्ञान परंपरा में प्रकृति के प्रति जो दृष्टि है, वह मात्र पर्यावरणीय नहीं बल्कि आध्यात्मिक है। यहाँ वृक्षों, नदियों, पर्वतों, पक्षियों, पशुओं और कृषि–भूमि को देवतुल्य माना गया है। 'धरा' केवल भूमि नहीं थी, वह 'धारयति इति धरा' अर्थात् धारण करने वाली माता थी। भारतीय संस्कृति में धरती और पर्यावरण के प्रति यह तज्ञता–भाव उसकी पारिस्थितिकी चेतना का मूल था। ऋग्वेद में 'प्रकृति' शब्द न होकर भी 'ऋत' और 'संपृक्ति' जैसे पदों में प्रकृति का समवेत अर्थ मिलता है। 'ऋत'

का अर्थ है वह नियम या अनुशासन जो सृष्टि को संतुलन में रखता है। यह विचार कि ब्रह्मांड की सारी गतिविधियाँ किसी गूढ़ व्यवस्था के अनुसार संचालित होती हैं, केवल दर्शन नहीं बल्कि प्रकृति–विज्ञान का आधार है। इसीलिए मनुष्य के आचरण को भी 'ऋत' के अनुकूल रहने की प्रेरणा दी गई जिससे वह प्रकृति के साथ संघर्ष नहीं, सहयोग में रहे।[14] भारतीय कृषि प्रणाली इसी सामंजस्य की वैज्ञानिक मिसाल रही है। पारंपरिक भारतीय किसान केवल अन्न उत्पादक नहीं था, वह मौसम, मृदा, जल, वनों और पशुओं का गहन ज्ञाता होता था। वह चंद्र मासों के अनुसार फसलें बोता था और हर ऋतु के साथ अपनी कृषि पद्धतियों में परिवर्तन करता था। उसकी कृषि प्रकृति के चक्र का अंग होती थी, न कि उस पर आक्रामक प्रयोग। जैसे–जैसे आधुनिकता के साथ रासायनिक खादों, कीटनाशकों और मोनोक्रॉपिंग का आगमन हुआ, उस प्राकृतिक संतुलन में विचलन आ गया। लोक परंपरा में पर्यावरण को लेकर गहरी वैज्ञानिक अंतर्दृष्टि निहित है। लोकगीतों, ऋतुओं के उत्सवों और जातीय परंपराओं में पर्यावरणीय संकेत स्पष्ट मिलते हैं। उदाहरणस्वरूप– भारत के विभिन्न अंचलों में मनाए जाने वाले 'वृक्षारोपण पर्व', 'गोवर्धन पूजा', 'नाग पंचमी', या 'बसंती गीत' केवल सांस्कृतिक नहीं, जलवायु–चक्र को समझने वाले वैज्ञानिक पर्व हैं। 'बरखा ऋतु' का स्वागत करते हुए गाए जाने वाले लोकगीतों में जल संचय, बीज बोने और मृदा की उर्वरता के संकेत मिलते हैं। यह भारत की 'ग्रीन साइंस' है जो संस्कृति में रच–बस गई है। भारतीय पारंपरिक विज्ञान में गोवंश का स्थान केवल धार्मिक नहीं, बल्कि कृषि और पारिस्थितिकी दृष्टि से भी वैज्ञानिक रहा है। गोबर का उपयोग न केवल खाद के रूप में, बल्कि कीट–प्रतिरोधी, ताप–नियंत्रक और जैव उर्वरक के रूप में होता रहा है। "गोबर गैस" जैसी संकल्पनाएँ आधुनिक विज्ञान से पहले भारतीय ग्राम्य जीवन में जीवंत थीं। गोमूत्र से निर्मित कीटनाशकों और रोगनिवारक औषधियों की परंपरा केवल आयुर्वेदिक नहीं, बल्कि जैविक विज्ञान का एक सशक्त रूप रही है। वनों के प्रति भारतीय दृष्टि केवल 'संसाधन' की नहीं थी, बल्कि 'संरक्षण' और 'संवाद' की थी। प्रत्येक वन चाहे वह 'दंडकारण्य' हो या 'नैमिषारण्य', केवल भौगोलिक स्थान नहीं, एक चेतन क्षेत्र था। भारत की अधिकतर संत परंपराएँ वनों में उत्पन्न हुईं, जहाँ प्रकृति के साथ साक्षात्कार को ज्ञान का आधार माना गया। वृक्षों की पूजा, वनों की सीमा को 'देवस्थान' मानना तथा पंचवटी की कल्पना इस बात का प्रमाण है कि भारतीय पर्यावरण विज्ञान आत्मा और आकाश दोनों को जोड़ता है। जल विज्ञान के संदर्भ में भारत की परंपरा अत्यंत समृद्ध है। भारत में कुएँ, तालाब, बावड़ियाँ, नदियाँ और सरोवर केवल जल स्रोत नहीं थे, वे स्थानीय पारिस्थितिकी के केंद्रीय तत्त्व थे। 'पुष्कर', 'रेणुका', 'मणि कर्णिका', 'सरोवर', 'हौज़ खास' जैसी जल प्रणालियाँ स्थानीय वर्षा, भूमि ढलान, वाष्पन और भूजल पुनर्भरण के सुसंगत वैज्ञानिक प्रबंधन की मिसालें हैं। 'चेरापूंजी' से लेकर 'जैसलमेर' तक हर भौगोलिक क्षेत्र में जल संरक्षण की स्थानीय

पद्धतियाँ विकसित हुईं जो आज की 'वाटर हार्वेस्टिंग' से कहीं अधिक सशक्त और टिकाऊ थीं।[15] भारतीय पारंपरिक चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद भी पारिस्थितिकी विज्ञान की एक समवेत धारा है। यहाँ वनस्पति, खनिज, धातु, जल और अग्नि सभी को औषधि विज्ञान का अंग माना गया। 'चरक संहिता' और 'सुश्रुत संहिता' में केवल मानव–शरीर नहीं बल्कि वनस्पति जगत और उनके पर्यावरणीय प्रभावों का भी सुस्पष्ट विवरण मिलता है। रोग का कारण केवल शरीरगत नहीं, अपितु पर्यावरणीय असंतुलन भी माना गया जो आज की 'होलिस्टिक हेल्थ' अवधारणा से मेल खाता है।[16] इस प्रकार भारतीय ज्ञान परंपरा की पारिस्थितिकी दृष्टि हमें यह सिखाती है कि विज्ञान केवल प्रयोगशाला में नहीं जन्मता, वह खेत, जंगल, नदी, तालाब और लोकगीतों में भी उपस्थित होता है। यह वह ज्ञान है जो संवेदी, संवादात्मक और समरसतापूर्ण है। भारतीय कृषि और पर्यावरणीय विज्ञान का यह पक्ष आज की जलवायु आपदा और पारिस्थितिकी संकट के समय अत्यंत प्रासंगिक हो गया है।

भारतीय ज्ञान परंपरा में चिकित्सा का अर्थ केवल शरीर को निरोग रखना नहीं, बल्कि शरीर, मन और आत्मा की समरसता को साधना है। आयुर्वेद शब्द ही इस समग्र दृष्टिकोण का संकेत देता है– 'आयुः' यानी जीवन और 'वेदः' यानी ज्ञान। यह चिकित्सा पद्धति जीवन को 'हितभुक, मितभुक, ऋतभुक' बनाने की कला है, जिसमें आहार, विहार, निद्रा, संयम, औषध और व्यवहार– सब एक इकाई बनाते हैं। आयुर्वेद की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह प्रकृति के चक्र और शरीर के चक्र के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करता है। चरक संहिता में 'त्रिदोष सिद्धांत'–वात, पित्त और कफ के संतुलन को स्वास्थ्य का मूल बताया गया है। यह दृष्टिकोण केवल शरीर की बीमारी नहीं, बल्कि उसके कारणों की गहराई तक जाता है– जैसे पर्यावरण, आचार, मानसिक प्रवृत्तियाँ और आहार–विहार।[17] चरक और सुश्रुत जैसे आचार्यों ने अपने ग्रंथों में न केवल रोगों का उल्लेख किया है, बल्कि शल्य चिकित्सा, अस्थि–संधान, प्रसूति विज्ञान और नाड़ी परीक्षण जैसी विधियों का भी विवरण दिया है। सुश्रुत संहिता में शल्य चिकित्सा के उपकरणों, चीरा लगाने की विधियों और प्लास्टिक सर्जरी तक का वर्णन मिलता है– जो आज के आधुनिक चिकित्सा विज्ञान से किसी भी दृष्टि से पीछे नहीं कहा जा सकता।[18] भारत में चिकित्सा को कभी केवल डॉक्टर और मरीज के संबंध तक सीमित नहीं किया गया। विभिन्न ऋतुओं में ऋतुचर्या, दिनचर्या, आचाररसायन, रसायनचिकित्सा, पंचकर्म– ये सब समग्र जीवन–प्रबंधन के हिस्से रहे हैं। चिकित्सा केवल तब आवश्यक नहीं मानी गई जब रोग उत्पन्न हो, बल्कि पहले ही उससे बचने की नीति बनाई गई जिसे आज की भाषा में preventive and lifestyle medicine कहा जाता है।[19] आयुर्वेद में औषध निर्माण की प्रक्रिया भी वैज्ञानिक और पर्यावरणसम्मत रही है। जड़ी–बूटियों को संग्रह करने के समय, स्थान और विधि का उल्लेख किया गया है क्योंकि उस समय उनके गुण–धर्म में अंतर आ सकता है।

आज जिस pharmacognosy और phytochemistry की बात होती है, उसका आधार तो भारतीय ज्ञान परंपरा ने पहले ही रख दिया था। यह भी उल्लेखनीय है कि भारत में नाड़ी विज्ञान, ध्वनि–चिकित्सा (मंत्रोपचार), धूप–चिकित्सा (सूर्य किरण), जल चिकित्सा और यौगिक चिकित्सा के विविध रूपों का समन्वय किया गया। यह समावेशिता और लचीलेपन की परंपरा थी जो केवल एक पद्धति तक सीमित नहीं थी– बल्कि विविधता को स्वीकार करके स्वास्थ्य की संपूर्ण दृष्टि विकसित की गई।[20] आधुनिक अनुसंधान अब यह प्रमाणित कर रहा है कि अश्वगंधा, गुडुचि, हरिद्रा, शतावरी जैसी अनेक औषधियों में anti-inflammatory, immuno-modulatory और adaptogenic गुण हैं जिन्हें आज की जैवविज्ञान प्रयोगशालाओं ने भी स्वीकार करना शुरू किया है।[21] भारतीय चिकित्सा परंपरा में केवल औषध और उपचार ही नहीं, चिकित्सक के आचरण और रोगी के मनोबल को भी महत्त्व दिया गया। चरक संहिता में चिकित्सक की अहिंसक, करुणाशील और संयमित प्रकृति को अनिवार्य कहा गया है। यह भाव चिकित्सा को केवल विद्या नहीं, बल्कि साधना बनाता है। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि आयुर्वेद केवल बीते युग की थाती नहीं, बल्कि आज भी एक जीवंत, उपयोगी और वैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति है जिसे यदि समझदारी से आधुनिक संदर्भों में पुनर्परिभाषित किया जाए, तो वह वैश्विक मानवता के लिए अमूल्य योगदान दे सकती है।

भारतीय ज्ञान परंपरा, जो वेदों, उपनिषदों, आर्ष–ग्रंथों और लोकाचार में रची–बसी थी, आधुनिक काल में वैज्ञानिक लेखन के स्वरूप में पुनः उद्घाटित हो रही है। एक समय था जब भारत की वैज्ञानिक धरोहर को उपेक्षित या पुरातन मानकर उसकी वैज्ञानिकता पर संदेह किया गया, लेकिन अब वैश्विक अनुसंधान, अकादमिक विमर्श और भारतीय शोध संस्थानों के प्रयासों से यह स्पष्ट होने लगा है कि भारत की प्राचीन विद्या परंपरा केवल सांस्कृतिक गौरव की वस्तु नहीं, बल्कि विज्ञान लेखन का मौलिक आधार है। आज के वैज्ञानिक लेखन में विशेषतः भारतीय विद्वानों द्वारा यह प्रवृत्ति तेजी से बढ़ी है कि वे वैदिक गणित, आयुर्वेद, खगोलशास्त्र, पर्यावरण–नीति, वास्तुशास्त्र, नृत्य–विज्ञान आदि विषयों पर लेखन करते हुए पारंपरिक ज्ञान को आधुनिक वैज्ञानिक भाषा में व्याख्यायित कर रहे हैं। इसका एक प्रमुख उदाहरण है– इसरो के वैज्ञानिकों द्वारा 'पुष्पक विमान', 'जलयान', 'सौर गणना' जैसे विषयों पर किए गए पांडुलिपीय अध्ययन, जिनका उल्लेख वैज्ञानिक शोध–पत्रों में आने लगा है। वैज्ञानिक लेखन में अब यह स्पष्ट होता जा रहा है कि परंपरा और आधुनिकता का विरोधाभास एक मिथ है। पंडित गोपीनाथ कविराज, मेघनाथ साहा, धनराज बख्शी, जगदीश चंद्र बसु, पी.सी.रे. ये सब वे नाम हैं जिन्होंने भारतीय परंपरा से प्रेरणा लेकर विज्ञान को लेखनी के माध्यम से जनता तक पहुँचाया। इन लेखकों की शैली में तथ्यों की वैज्ञानिकता के साथ–साथ भारतीय दृष्टि की गरिमा स्पष्ट दिखाई देती है।[22] आज की वैज्ञानिक

पत्रिकाओं जैसे इंडियन जर्नल ऑफ हिस्ट्री ऑफ साइंस, वैज्ञानिक, भारतीय विज्ञान पत्रिका, विज्ञान भारती, ऑर्गेनिक मेडिसिन इन इंडिया आदि में भारतीय चिकित्सा पद्धतियों, गणितीय परंपरा, खगोल शास्त्र और वनस्पति विज्ञान पर आधारित शोध पत्र प्रकाशित हो रहे हैं। इन लेखों में यह बात प्रमुखता से सामने आती है कि भारत की परंपरागत ज्ञान प्रणाली में जो कुछ भी था, वह अनुभवजन्य, परीक्षण आधारित और व्यवहार में उतारने योग्य था।[23] आधुनिक विज्ञान लेखन की एक और महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति है– भारतीय ग्रंथों की वैज्ञानिक पुनर्व्याख्या। उदाहरणस्वरूप, भगवद्गीता के कर्मयोग को behavioral science से जोड़कर व्याख्यायित किया जा रहा है; पातंजल योगसूत्र को psychoneuroimmunology की पृष्ठभूमि में देखा जा रहा है; रसशास्त्र को metallurgy के आधुनिक मानकों पर कसने की चेष्टा की जा रही है।[24] इसके अतिरिक्त, शिक्षा के क्षेत्र में 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' ने भारतीय ज्ञान परंपरा को पाठ्यक्रम का एक अभिन्न हिस्सा घोषित किया है और इसके तहत 'भारतीय विज्ञान और गणित का इतिहास' जैसे पाठ्यांश शामिल किए जा रहे हैं। यह न केवल विज्ञान लेखन की दृष्टि बदल रहा है, बल्कि पाठ्यलेखन, प्रश्नपत्र–निर्माण, शोध–प्रस्ताव और ग्रंथ–समीक्षा की पद्धतियों का भी भारतीयकरण कर रहा है।[25] समकालीन विज्ञान लेखन में अब यह चेतना विकसित हो रही है कि भारत की ज्ञान परंपरा को केवल पुरातत्वीय वस्तु की तरह नहीं बल्कि जीवंत प्रयोगशाला के रूप में देखा जाए। इसका स्पष्ट प्रमाण हैं– IITs, IISERs, BHU, JNU, IGNC आदि जैसे संस्थानों में हो रहे शोध, जहाँ पांडुलिपियों को डिजिटल रूप में संरक्षित कर वैज्ञानिकों के लिए सुलभ बनाया जा रहा है। लब्बोलुबाब यह कि आधुनिक विज्ञान लेखन यदि केवल अंग्रेज़ी या पश्चिमी वैज्ञानिक भाषा में सीमित न होकर भारतीय पद्धतियों, मूल शब्दावली और दार्शनिक परिप्रेक्ष्य के साथ विकसित किया जाए तो यह न केवल समृद्ध होगा बल्कि वैश्विक संदर्भ में भारत की प्रतिष्ठा को भी पुनर्स्थापित करेगा।

बहरहाल, भारतीय ज्ञान परंपरा की व्यापकता केवल धार्मिक, सांस्कृतिक या आध्यात्मिक सीमाओं तक सीमित नहीं है; वह अपने मूल स्वभाव में वैज्ञानिक, परीक्षणशील और अनुभवप्रधान रही है। ऋग्वैदिक ऋचाओं से लेकर चरक–सुश्रुत, आर्यभट्ट–भास्कराचार्य, पतंजलि–नागार्जुन तक की यात्रा में यह परंपरा सतत संवादरत रही है प्रकृति, मानव और ब्रह्मांड के मध्य। इस संवाद में विज्ञान केवल निष्कर्षों का संकलन नहीं, बल्कि चेतना का विस्तार रहा है। वेदों में जहाँ सृष्टि की उत्पत्ति, पञ्चभूत सिद्धांत, अंतरिक्ष विज्ञान और ध्वनि विज्ञान का अद्भुत विवेचन है, वहीं उपनिषदों में ज्ञान और चित्तवृत्तियों के संशोधन की ऐसी वैज्ञानिक व्याख्या मिलती है जो आधुनिक मनोविज्ञान की जड़ों को स्पर्श करती है। न्याय दर्शन में तर्कशास्त्र की वह नींव है जिस पर आज के वैज्ञानिक विमर्श टिके हुए हैं। इन सभी दृष्टांतों से यह स्पष्ट होता है कि भारत की ज्ञान परंपरा का स्वरूप मूलतः ज्ञानात्मक और

वैज्ञानिक रहा है। आयुर्वेद जैसे चिकित्सा–शास्त्र केवल औषध नहीं, जीवन–प्रबंधन की कला सिखाते हैं। सुश्रुत द्वारा शल्यक्रिया, चरक द्वारा रसायन–शास्त्र, नाड़ी–परीक्षण, त्रिदोष–सिद्धांत आदि केवल पारंपरिक चिकित्सा नहीं, बल्कि आज की समग्र स्वास्थ्य दृष्टि के अग्रदूत रहे हैं। यह भी ध्यान देने योग्य है कि भारत की वैज्ञानिक चेतना केवल नगरों या राजदरबारों तक सीमित नहीं रही। वह कुटियों, आश्रमों, लोक–जीवन और ग्राम्य परंपराओं में भी फलित होती रही। आज जब आधुनिक विज्ञान लेखन की बात की जाती है, तब यह अत्यंत आवश्यक हो जाता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा को महज़ ऐतिहासिक गौरव या संस्कृति–प्रेम के भाव से नहीं, बल्कि एक प्रामाणिक और जीवंत वैज्ञानिक स्रोत के रूप में देखा जाए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, IITs और IISERs जैसे संस्थानों में इस दिशा में प्रयास हो रहे हैं, लेकिन आवश्यकता है इस विमर्श को गहराई, निरंतरता और प्रयोगधर्मिता से जोड़ने की। ध्यातव्य है कि भारतीय ज्ञान परंपरा और आधुनिक विज्ञान लेखन के बीच कोई विरोध नहीं, बल्कि गहरा संवादात्मक संबंध है। यह संबंध तभी सार्थक हो सकता है जब आधुनिक लेखक, वैज्ञानिक और शिक्षाविद अपने लेखन में न केवल तथ्यों को संकलित करें, बल्कि उस चिंतन परंपरा को पुनर्परिभाषित करें जिसने भारतीय मनीषा को सदियों तक जीवंत रखा। इस पुनर्पाठ की प्रक्रिया में संवाद, सहिष्णुता, समावेशिता और सत्य की खोज की विनम्रता जैसे भारतीय मूल्य विज्ञान लेखन को न केवल प्रामाणिक बनाएँगे बल्कि उसमें मानवीय गरिमा और संस्कार की खुशबू भी घोलेंगे।

संदर्भ सूची:

1. विष्णुपुराण, प्रथम स्कंध, उन्नीसवाँ अध्याय, श्लोक 41, चौखंभा, वाराणसी, 2004
2. हितोपदेश, मित्रलाभ खंड– "विद्या ददाति विनयं..." (देखें हितोपदेश, संपादकः विश्वनाथ शर्मा, चौखंभा, 2003, पृ. 17
3. ऋग्वेद, 1.1.1– "अग्निमीळे पुरोहितं" (ऋग्वेद संहिता, संपा. दयानंद सरस्वती, आर्य समाज प्रकाशन, 1998, पृ. 3.
4 अथर्ववेद, 4.9.2– "भेषजं जरसं" (अथर्ववेद संहिता, संपा. श्रीधर शास्त्री, चौखंभा, 2004, पृ. 112
5. छांदोग्य उपनिषद, 3.14.1– "सर्वं खल्विदं ब्रह्म"
6. न्याय सूत्र, गौतम मुनि– प्रमाण प्रकार (न्याय दर्शन, संपा. डॉ. बी.एन. मिश्र, भारती विद्याभवन, 2005, पृ. 41
7. वैशेषिक सूत्र, कणाद– अणु की सत्ता (वैशेषिक दर्शन, टीकाः नंदलाल झा, गीता प्रेस, 2003, पृ. 73.
8. पतंजलि योगसूत्र, अध्याय 2– प्राणायाम सिद्धि (योगदर्शन, टीकाः स्वामी हरिहरानंद, अद्वैत आश्रम, 2002, पृ. 131.

9. बौधायन– शुल्ब सूत्र, संपा. टी. गणपति शास्त्री, चौखंभा, 2002, पृ. 19.
10. आर्यभट्ट, आर्यभटीयम– संपा. के. एस. शुक्ल, इंडियन प्रेस, 1976, पृ. 42-63.
11. भास्कराचार्य, लीलावती, संपा. बी.एन. नारायण, संस्कृत भारती, 1995, पृ. 27-58.
12. लगध, वेदांग ज्योतिष, संपा. रघुनाथ शास्त्री, भारत विद्या संस्थान, 1987, पृ. 14.
13. ब्रह्मगुप्त, ब्रह्मस्फुटसिद्धांत, संपा. डॉ. सुधाकर द्विवेदी, नेशनल मिशन, 1999, पृ. 89-105
14. ऋग्वेद, संपा. दया कृष्ण शास्त्री, चौखंभा विद्या भवन, 2003, पृ. 47-49.
15. भारत की पारंपरिक जल व्यवस्थाएँ, अनुपम अग्रवाल, सेंटर फॉर साइंस एंड एन्वायर्नमेंट, 2011, पृ. 33-44.
16. चरक, चरक संहिता, अनुवादक पं. किशोरनाथ शास्त्री, चौखंभा, 2004, पृ. 151-172.
17. चरक, चरक संहिता, संपा. पं. काशीनाथ शास्त्री, चौखंभा संस्कृत संस्थान, 2001, पृ. 62-79.
18. सुश्रुत, सुश्रुत संहिता, संपा. आचार्य यशवंत पंड्या, चौखंभा, 1998, पृ. 101 117.
19. आयुर्वेद का समग्र दृष्टिकोण, बी.एन. द्विवेदी, राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, 2010, पृ. 55-66.
20. आयुर्वेद और समन्वित चिकित्सा, मनोहर पांडेय, मोतीलाल बनारसीदास, 2016, पृ. 93-108.
21. Scientific Basis of Ayurvedic Therapies, Ram Harsh Singh, CRC Press, 2002, pp. 151-166
22. The Nervous Mechanism of Plants, Jagadish Chandra Bose, Longmans, 1926, pp. 12-27.
23. Indian National Science Academy, Indian Journal of History of Science, Vol. 56, No- 3, 2021, pp- 91-109.
24. Vedic Science and Modern Thought, P.D. Shukla, Bharatiya Vidya Bhavan, 2008, pp. 67-84.
25. Ministry of Education, Govt. of India, National Education Policy 2020, Government Press, 2020, pp. 31-44.

❑❑❑

भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित वैज्ञानिक उपलब्धियाँ

✍ प्रो. रवि शर्मा मधुप

भारतीय ज्ञान परंपरा का प्रारंभ पूर्व वैदिक युग से माना जा सकता है। वैदिक युग के काल–निर्धारण को लेकर अभी भी विद्वानों में मतभेद है, फिर भी स्थूल रूप से भी हम स्वीकार करें तो लगभग 4000 वर्ष पूर्व पहली बार वैदिक काल में वेद एवं उनसे संबंधित ग्रंथों का लिखित रूप में प्रणयन किया गया। वेदों में निहित ज्ञान के आधार पर स्पष्ट रूप से यह कहा जा सकता है कि यह ज्ञान सौ–दो सौ वर्षों में नहीं, अपितु सैकड़ों वर्षों में अर्जित किया गया। इस काल को पूर्व वैदिक युग कहा जाता है। इस काल में ज्ञान–विज्ञान का आदान–प्रदान श्रुति परंपरा के अनुसार अर्थात् मौखिक रूप से होता था और यह पीढ़ी–दर–पीढ़ी अग्रेषित होता चला गया। कालांतर में जब भाषा के लिखित रूप का विकास हुआ, तो इस ज्ञान को लिपिबद्ध किया गया। इस ज्ञान को सर्वप्रथम लिपिबद्ध करने का प्रयास जिस भाषा में किया गया, उसे वैदिक संस्कृत कहा गया। वैदिक संस्कृत का ही सरल रूप लौकिक संस्कृत है और उसी से उत्पन्न पालि–प्राकृत, अपभ्रंश तथा अपभ्रंश से 1000 ई. के आसपास उत्पन्न हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं का विकास माना जाता है।

भारतीय ज्ञान परंपरा उन शाश्वत जीवन मूल्यों को अपने में समाहित किए हुए है जो भारतीय संस्कृति की पहचान हैं। इसमें हम ज्ञान–विज्ञान की सभी शाखाओं को चरम उत्कर्ष पर पहुँचा हुआ पाते हैं। विवेचन की दृष्टि से भारतीय ज्ञान परंपरा के अंतर्गत लिखे गए ग्रंथों को मोटे तौर पर निम्नलिखित मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है।

वेद– विश्व में ज्ञान के आदि ग्रंथ के रूप में वेदों को मान्यता प्रदान की गई है। इनमें से 'ऋग्वेद' में 10552, 'यजुर्वेद' में 1975, 'सामवेद' में 1875 और 'अथर्ववेद' में 5977 मंत्रों सहित चारों वेदों में कुल 20379 मंत्र हैं। वेदों में जिस ज्ञान के भंडार को समाहित किया गया है, उसके वास्तविक अर्थ को समझने, यज्ञों में उस ज्ञान की प्रयोग–विधि जानने, आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति तथा उसकी सुरक्षा के लिए ऋषियों द्वारा रचित वेद संबंधी ग्रंथों के छह भाग हैं– ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक, उपनिषद्, सूत्र ग्रंथ, प्रतिशाख्य और अनुक्रमणी।

1. **6 वेदांग**– शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, छंद, कल्पसूत्र और ज्योतिष।

2. **4 उपवेद**– अर्थवेद, धनुर्वेद, गांधर्व वेद और आयुर्वेद।

3. **18 पुराण**– उपपुराण 18 और ऐतिहासिक ग्रंथ 2 (रामायण एवं महाभारत)

4. **स्मृति ग्रंथ– 250** (उल्लेख)–100 (उपलब्ध)–22 (अधिक प्रसिद्ध)

5. **3 दर्शन**– (क) वैदिक दर्शन 6– कपिल का संख्या दर्शन, पतंजलि का योग दर्शन, गौतम का न्याय दर्शन, कणाद का वैशेषिक दर्शन, जैमिनी का पूर्व मीमांसा और बादरायण का उत्तर मीमांसा या वेदांत दर्शन, (ख) बौद्ध दर्शन–त्रिपिटक, (ग) जैन दर्शन– 44 ग्रंथ।

6. **लगभग 50 निबंध ग्रंथ** – स्मृतियों के समान।

7. **आगम**– वेद से निबंध ग्रंथ तक निर्गम और इष्ट की पूजा अर्चना आदि से संबंधित ग्रंथ आगम कहलाए, वैष्णव के 13 तथा शैव और शाक्त के 64–64 प्रामाणिक आगम हैं।

अन्य विविध ग्रंथ– गुरु की वाणी – 'गुरु ग्रंथ साहब'।

भारतीय ज्ञान परंपरा का अनिवार्य अंग है। भारत के गौरवशाली अतीत में निहित वैज्ञानिक उपलब्धियाँ। सहस्र वर्षों में अर्जित भारतीय विज्ञान–सिंधु का वर्णन कुछ पृष्ठों में करना एक असंभव कार्य है। आइए, हमारे पूर्वजों की कुछ वैज्ञानिक उपलब्धियों का संक्षिप्त ज्ञान प्राप्त कर लें।

गणित के क्षेत्र में भारत की उपलब्धियों से आज संपूर्ण विश्व अवगत है। शून्य से लेकर नौ तक अंक, दशमलव पद्धति, अंकगणित, बीजगणित, रेखागणित, त्रिकोणमिति आदि विश्व को भारत की ही देन हैं। भारत के प्रमुख गणितज्ञों में बौधायन, कात्यायन, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य, आर्यभट्ट, लीलावती, श्रीधर, रामानुजाचार्य आदि शामिल हैं। बौधायन (500 ईसा पूर्व) को 'पायथागोरस प्रमेय' की खोज करने वाला भारतीय त्रिकोणमितितज्ञ कहा जाता है। वैदिक गणित का लोहा तो आज सारी दुनिया मानती है।

खगोल विज्ञान के क्षेत्र में तो भारतीय वैज्ञानिकों की उपलब्धियाँ सचमुच विस्मित करने वाली हैं। खगोल विद्या को वेद का नेत्र कहा गया है। प्राचीन काल से ही खगोल वेदांग का महत्त्वपूर्ण भाग रहा है। ऋग्वेद, शतपथ ब्राह्मण आदि ग्रंथों में विभिन्न नक्षत्रों, चांद्रमास, सौरमास, मलमास (पुरुषोत्तम मास), उत्तरायण, दक्षिणायन, भाचक्र आदि का विस्तृत वर्णन विद्यमान है। यजुर्वेद के 18वें अध्याय में यह उल्लेख मिलता है कि चंद्रमा सूर्य के प्रकाश से आलोकित होता है। भारतीय कालगणना विश्व में सर्वाधिक वैज्ञानिक एवं प्राचीन है।

संपूर्ण ब्रह्मांड को 360° के आधार पर 27 नक्षत्रों, 12 राशियों में विभाजित करना, आकाश में तारों की आकृति के आधार पर राशियों का नामकरण, नक्षत्रों के नामों के आधार पर महीनों का नामकरण, ग्रहों की विशेषताओं के आधार पर उनका नामकरण,

जैसे धीमी गति से (शनैः–शनैः) चलने के आधार पर शनि या मंद नाम रखना, सौर मंडल में सबसे बड़ा तथा मानव के लिए कल्याणकारी ग्रह होने के कारण बृहस्पति को गुरु नाम देना आदि, ग्रहों का रंग, मानव पर प्रभाव, उनके उपग्रहों की संख्या आदि का तार्किक एवं वैज्ञानिक आधार पर विवेचन, धरती से सूर्य एवं अन्य ग्रहों की दूरी का सटीक ज्ञान, मंगल ग्रह को भौम या भूमिसुत कहकर धरती से अलग हुआ अंश बताना, चंद्रमा की गति के आधार पर शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष, पूर्णिमा और अमावस्या का वर्णन; वर्ष, दशाब्द, शताब्दी, सहस्राब्दी से लेकर युग, महायुग, कल्प तक की कालगणना, आकाश में ध्रुव तारा, सप्तऋषि तारामंडल आदि का प्रामाणिक विवेचन जैसी अनेकानेक उपलब्धियाँ भारतीय खगोल विज्ञान की श्रेष्ठता का अकाट्य प्रमाण हैं।

पाँचवीं शताब्दी में आर्यभट्ट के समय में पाटलीपुत्र में खगोलीय वेधशाला थी जहाँ आर्यभट्ट, भास्कराचार्य तथा अन्य वैज्ञानिकों ने अनेक खगोलीय शोध किए। गुरुत्वाकर्षण की खोज न्यूटन से लगभग डेढ़ हजार वर्ष पूर्व भारतीय वैज्ञानिक भास्कराचार्य ने कर ली थी और 'पृथ्वी गोल है' यह भी उन्होंने सिद्ध कर दिया था। भास्कराचार्य के ग्रंथ 'सिद्धांतशिरोमणि' में गुरुत्वाकर्षण का उल्लेख मिलता है।

आचार्य कणाद परमाणु विज्ञान के जनक माने जाते हैं। उन्होंने पश्चिमी अणुशास्त्रज्ञ जॉन डाल्टन से सैकड़ों वर्ष पूर्व बताया कि 'द्रव्य के परमाणु होते हैं।' ऋषि अगस्त्य द्वारा रचित 'अगस्त्य संहिता' तथा अन्य ग्रंथों के आधार पर प्रख्यात भारतीय वैज्ञानिक राव साहब वझे ने विद्युत के विभिन्न प्रकारों का वर्णन किया एवं 'अगस्त्य संहिता' में विद्युत द्वारा इलेक्ट्रोप्लेटिंग करने का विवरण भी दिया।

धातु विज्ञान की श्रेष्ठता का प्रमाण है– दिल्ली में कुतुबमीनार के पास स्थित लौह स्तंभ– 'विष्णु स्तंभ'। 1600 से अधिक वर्ष बीत जाने पर भी इसमें जंग न लगना विश्व के धातु–वैज्ञानिकों के लिए विस्मय का कारण बना हुआ है। रामायण, महाभारत, पुराणों, श्रुति ग्रंथों में सोना, चाँदी, ताँबा, काँसा, सीसा, लोहा, टिन आदि धातुओं का वर्णन मिलता है। इतना ही नहीं, चरक, सुश्रुत, नागार्जुन आदि ने स्वर्ण, रजत, ताम्र, लोहा, अभ्रक, पारा आदि के औषधीय गुणों को पहचानकर चिकित्सा हेतु भी उनका उपयोग किया।

रसायन शब्द के मूल में रस है। प्राचीन ग्रंथों में रस का एक अर्थ पारद भी है। रसायन विज्ञान में विभिन्न खनिजों का अध्ययन किया जाता था। रसायन विज्ञान के क्षेत्र में नागार्जुन, वाग्भट्ट, गोविंदाचार्य, रामचंद्र, सोमदेव आदि अपने समय के प्रसिद्ध रसायन वैज्ञानिक माने गए हैं। नागार्जुन द्वारा रचित ग्रंथ 'रसरत्नाकर' के आठ अध्यायों में से केवल चार ही अब उपलब्ध हैं जिनमें मुख्यतः धातुओं के शोधन, मारण, शुद्ध पारद प्राप्ति तथा भस्म बनाने की विधि वर्णित है। नागार्जुन (300 ईस्वी के लगभग) ने पारे के प्रयोग से ताँबा इत्यादि धातुओं को सोने में बदलने की विधि भी

खोज ली थी, ऐसी मान्यता है। 'रसहृदयतंत्र' (श्री गोविंद भगवतपाद द्वारा रचित) के अतिरिक्त 'रसेंद्रचूड़ामणि', 'रसप्रकाशसुधाकर', 'रसार्णव', 'रससार' आदि ग्रंथ भी रसायन विज्ञान के प्रमुख ग्रंथ माने जाते हैं।

महर्षि अगस्त्य द्वारा विश्व में सर्वप्रथम बैटरी का आविष्कार किया गया। 'अगस्त्य संहिता' में इसका उल्लेख मिलता है, किंतु हम पाश्चात्य चकाचौंध के कारण विद्युत बैटरी के आविष्कार का श्रेय बेंजामिन फ्रेंकलिन को देते हैं।

समुद्र मंथन से कार्तिक त्रयोदशी को प्रकटे भगवान धन्वंतरि को आयुर्वेद का प्रादुर्भावकर्ता माना जाता है। इन्होंने ही अमृतरसपूर्ण औषधियों की खोज की थी। 'महाभारत', 'ब्रह्मवैवर्तपुराण', 'हरिवंश पुराण' तथा 'विष्णुपुराण' में धन्वंतरि का उल्लेख मिलता है। इनके वंश में उत्पन्न दिवोदास ने 'शल्य चिकित्सा' का विश्व का प्रथम विद्यालय काशी में स्थापित किया, जिसके प्रधानाचार्य सुश्रुत बनाए गए। 'सुश्रुत संहिता' के लेखक आचार्य सुश्रुत (लगभग 600 ईसा पूर्व) विश्व के प्रथम शल्य चिकित्सक थे।

आयुर्वेद को कुछ विद्वान 'ऋग्वेद' का उपवेद मानते हैं, तो कुछ अन्य विद्वान 'अथर्ववेद' का उपवेद। आयुर्वेद की तीन परंपराएँ मानी जाती हैं – भरद्वाज, धन्वंतरि और कश्यप। आयुर्वेद विज्ञान के आठ अंग हैं और 'चरक संहिता' (लगभग 500 ईसा पूर्व), 'सुश्रुत संहिता' तथा 'कश्यप संहिता' इसके प्रमुख ग्रंथ माने जाते हैं। आचार्य चरक को त्वचा चिकित्सक भी कहा जाता है। पतंजलि ऋषि द्वारा 150 ईसा पूर्व में रचित 'योगशास्त्र' में कर्करोग (कैंसर) जैसी घातक बीमारी का उपचार बताया गया है।

विज्ञान की अन्य अनेक शाखाओं में समृद्ध ज्ञान की सहस्रों वर्ष की सुदीर्घ परंपरा है। उसका विस्तृत वर्णन इस लेख में संभव नहीं है। अतः आगे उनका संक्षेप में नामोल्लेख ही किया जा रहा है। महाभारत काल में अंतरिक्ष जगत के विशेषज्ञ गर्ग मुनि को नक्षत्रों की खोज और गणना का श्रेय दिया जाता है। पाँचवीं सदी के प्रसिद्ध खगोलशास्त्री वराहमिहिर को ग्रहों के सूक्ष्म अध्ययन, फलित ज्योतिष विज्ञान का जनक माना जाता है। ऋषि भरद्वाज ने राइट बंधुओं से भी 2500 वर्ष पूर्व ही वायुयान की खोज कर ली थी। ऐसी मान्यता है कि 'विमानशास्त्र' नामक ग्रंथ में उलिखित अनेक विमानों का तो आधुनिक विमानशास्त्री अभी तक निर्माण भी नहीं कर पाए हैं।

चार पुरुषार्थों में से एक 'काम' को भी भारतीय मेधा ने अपनी प्रतिभा से आलोकित किया। सर्वप्रथम नंदी ने एक हजार अध्यायों का 'कामशास्त्र' नामक ग्रंथ लिखा। बाभ्रव्य नामक विद्वान ने इसका संक्षिप्त रूप 150 अध्यायों में लिखा। कामशास्त्र पर आधारित ऋषि वात्स्यायन द्वारा रचित 'कामसूत्र' सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रंथ माना जाता है। इसमें 36 अध्याय हैं। 64 कलाओं का सरस वर्णन इस ग्रंथ की अन्यतम विशेषता है। कोक्क पंडित द्वारा रचित 'रतिरहस्य' या 'कोकशास्त्र' भी काफी चर्चित है।

प्राचीन काल में संपूर्ण जीवन शासन, राजनीति आदि धर्मशास्त्र पर आधारित होता था। भारत के अनेक ऋषियों जैसे अत्रि, कण्व, कश्यप, गर्ग, च्यवन, बृहस्पति, भरद्वाज आदि ने धर्म को चार पुरुषार्थों में से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानते हुए उसे जीवन के चारों आश्रमों से संबद्ध माना और धर्म के स्वरूप, लक्षणों, विविध सिद्धांतों आदि का विस्तृत विवेचन किया। 'मनु स्मृति', 'याज्ञवल्क्य स्मृति', 'पराशर स्मृति', 'नारद स्मृति', 'बृहस्पति स्मृति' आदि स्मृति ग्रंथों में लोकनीति, राजनीति, अर्थनीति आदि का धार्मिक दृष्टिकोण से विवेचन एवं स्पष्टीकरण किया गया है।

हिंदू धर्म के अंतर्गत सभी रीति–रिवाज, पर्व–त्योहार, सोलह संस्कार, व्रत–उपवास आदि वैज्ञानिक आधार पर ही निर्धारित किए गए। 1000 वर्ष के अंधकार युग के कारण विज्ञान और तर्क का स्थान अज्ञान और अंधविश्वास ने ले लिया। हिंदू धर्म में प्रचलित मान्यताओं जैसे सिंदूर लगाना, शिखा (चोटी) रखना, जनेऊ धारण करना, तिलक लगाना, कलावा या मौली बाँधना, रुद्राक्ष या तुलसी की माला फेरना, शंख या मंदिर की घंटी बजाना, कुश के आसन पर बैठकर पूजा–पाठ या तपस्या करना, स्वास्तिक एवं ऊँ का महत्त्व, सगोत्र विवाह निषेध, ग्रहण काल में भोजन निषेध, यज्ञ का महत्त्व, दक्षिणायन में मृत्यु श्रेयस्कर क्यों नहीं, दक्षिण की ओर पाँव करके क्यों नहीं सोना, नित्य स्नान, सूर्य नमस्कार, पितरों का श्राद्ध, सोलह संस्कार क्यों आदि अनेक मान्यताओं एवं जीवन जीने के नियमों के पीछे भी विज्ञान का आधार है, जिसे आज हम भूल गए हैं। (डॉ. सच्चिदानंद शुक्ल 2013)

अर्थशास्त्र का सर्वाधिक चर्चित ग्रंथ है– कौटिल्य द्वारा रचित 'अर्थशास्त्र'। मगध के अहंकारी राजा महानंद की राजसभा में अपमानित होने वाले आचार्य चाणक्य (जिनका मूल नाम विष्णुगुप्त था और चनक प्रदेश में जन्म लेने के कारण चाणक्य और दुष्टों और शत्रुओं के प्रति कुटिल नीति अपनाने के कारण कौटिल्य नाम से विख्यात हुए) ने चंद्रगुप्त की प्रतिभा को पहचानकर उसे एक योग्य योद्धा और कुशल प्रशासक के रूप में शिक्षित किया। शक्तिशाली नंद वंश को उखाड़कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी की और स्वयं एक तपस्वी का जीवन बिताते हुए अपने योग्य शिष्य चंद्रगुप्त मौर्य को राजपद पर अभिषिक्त किया।

ऐसे प्रातिभ आचार्य चाणक्य द्वारा रचित 'अर्थशास्त्र' में धर्म, अर्थ, राजनीति, कूटनीति, दंडनीति, राजस्वनीति, युद्धनीति आदि का वर्णन किया गया है। इसे 15 अध्यायों या अधिकरणों में विभाजित किया गया है। इसमें कौटिल्य द्वारा वेदांग, इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, ज्योतिष आदि विद्याओं के साथ अनेक प्राचीन अर्थशास्त्रियों के मतों को प्रतिपादित किया गया है। इसके अतिरिक्त अर्थशास्त्र पर अन्य उल्लेखनीय ग्रंथ हैं– 'कामंदकीय', 'नीतिसार', 'नीतिवाक्यामृत', 'लघुअर्थनीति' आदि। (तिलकराज कटारिया 2013)

और अंत में, प्राचीन भारत का वैज्ञानिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक गौरव–गान जिस भाषा में किया गया, उस देवभाषा संस्कृत और उसकी लिपि देवनागरी की वैज्ञानिकता की चर्चा किए बिना यह शोधालेख अधूरा ही रहेगा। विश्व की सर्वाधिक वैज्ञानिक भाषा संस्कृत में चाहे स्वरों और व्यंजनों का वर्गीकरण हो, संधि और समास हो, धातुओं से शब्द–निर्माण प्रक्रिया हो या उपसर्ग–प्रत्यय का प्रयोग हो, प्रत्येक चरण विज्ञान पर आधारित है। स्वर और व्यंजनों का ऐसा वैज्ञानिक वर्गीकरण और उच्चारण स्थान के आधार पर तार्किक विभाजन संभवतः विश्व की किसी भी भाषा में उपलब्ध नहीं है। संस्कृत वर्णमाला में प्रत्येक इकाई ध्वनि के लिए एक अक्षर निश्चित है और प्रत्येक अक्षर केवल एक विशेष ध्वनि के लिए ही प्रयुक्त होता है। इसीलिए संस्कृत में जैसा बोला जाता है, वैसा ही लिखा जाता है। यह इस भाषा और इसकी लिपि की सर्वाधिक उल्लेखनीय विशेषता है।

आज सारा विश्व भारत की ओर आशाजनक नजरों से देख रहा है। निश्चित ही इक्कीसवीं सदी भारत की होगी तथा सभी भारतवासियों की प्रतिभा और संकल्पशक्ति के परिणामस्वरूप भारत पुनः 'सोने की चिड़िया' एवं 'विश्वगुरु' के गौरवशाली पद को प्राप्त कर लेगा। इसके लिए हमें समस्त देशवासियों को भारतीय ज्ञान परंपरा से जोड़ना होगा, उसके प्रति गौरव का भाव जगाना होगा और हम ऐसा करने में अवश्य सफल होंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. रामचंद्र वर्मा, संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर, काशी, उत्तर प्रदेश, नागरी प्रचारिणी सभा 2007
2. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत–हिंदी कोश, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, चौखंबा विद्याभवन 1987
3. जुगल किशोर शर्मा, पुण्यभूमि भारत, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली 2008
4. आचार्य चतुरसेन, वयं रक्षामः, राजपाल एंड संस, दिल्ली, 2016
5. S.A KRISHANAN, Stories from Hindu Mythology, Chapter 1. Emperor Bharat chooses his successor. (Blog/rgennext.blogspot.com. 2016, June
6. डॉ. हरिश्चंद्र बर्थवाल, भारत परिचय, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली 1999
7. भारत (वार्षिक संदर्भ ग्रंथ), प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, 2004
8. तिलकराज कटारिया, जयतु भारतं, विश्व हिंदी साहित्य परिषद्, दिल्ली 2013

❑❑❑

प्राचीन भारतीय ग्रंथों में तकनीकी एवं वैज्ञानिक विकास का स्वरूप

✍ राज बहादुर गुप्ता

भारतीय ज्ञान परंपरा एक प्राचीन समृद्ध प्रणाली है जिसमें ज्ञान, विज्ञान और जीवन दर्शन का समावेश है। इसका विज्ञान के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है जिसमें चिकित्सा, गणित, खगोल विज्ञान और रसायन विज्ञान शामिल हैं। यह परंपरा हजारों वर्षों से चली आ रही है और इसमें वैज्ञानिक खोजों का एक लंबा इतिहास रहा है। प्राचीन काल की भारतीय ज्ञान परंपराएँ और संस्कृति मानवता को प्रोत्साहित करती रही हैं। पुराणों में ज्ञान को अप्रतिम माना गया है। भारत में तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला, वल्लभी, उज्जयिनी, काशी आदि शिक्षा एवं शोध के विश्वप्रसिद्ध केंद्र थे। यहाँ कई देशों के शिक्षार्थी ज्ञान अर्जन के के लिए आते थे। प्राचीन भारतीय ज्ञान विज्ञान की गौरवमयी परंपरा समस्त जगत को आलोकित करने वाली है। संस्कृत भाषा में ज्ञान विज्ञान की महती शृंखला है जो वर्तमान वैज्ञानिक जगत के लिए कुतुहल का विषय रही है। आज जहाँ एक ओर आधुनिक विज्ञान समुन्नत अवस्थिति में दिखाई दे रहा है, वहीं दूसरी ओर इसके दोष एवं नकारात्मक प्रभाव भी दिखाई दे रहे हैं। ज्ञान परंपरा और विज्ञान लेखन को वास्तव में अलग–अलग करके कभी भी नहीं देखा जा सकता है या हम कह सकते हैं कि ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। विज्ञान की प्रगति हर युग की आवश्यकता है किंतु इसमें दूरदर्शिता और मानव कल्याण का भाव सर्वोपरि होना चाहिए। स्वदेशी विज्ञान आंदोलन के माध्यम से आधुनिक विज्ञान को प्राचीन भारतीय ज्ञान–वैभव से जोड़ने का अनवरत प्रयास किया जा रहा है। भारतीय ज्ञान परंपरा जो वैदिक एवं उपनिषद् काल में थी, वह बौद्ध और जैन काल में भी रही। विभिन्न विश्वविद्यालयों की स्थापना और शिक्षा व्यवस्था से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है। इसका लोप विगत 200 से 300 वर्षों में हुआ है। यह सर्वविदित है कि भारत में ज्ञान की परंपरा बहुत ही प्राचीन है और इसका आरंभ वेदों से माना जाता है। भारतीय ज्ञान विज्ञान परंपरा एक समृद्ध और विविधतापूर्ण इतिहास रखती है क्योंकि यह परंपरा हजारों सालों से चली आ रही है जो सदियों से मानव सभ्यता को आकार देती रही है। यह परंपरा सिर्फ भारत की सीमाओं तक ही सीमित नहीं रही है, बल्कि विश्व के विभिन्न हिस्सों में भी इसका

गहरा प्रभाव पड़ा है।

हमारी भारतीय संस्कृति और सभ्यता ने सदियों से विज्ञान, गणित, खगोल, चिकित्सा, आयुर्वेद और दर्शन जैसे अनेक क्षेत्रों में अद्वितीय योगदान दिया है। भारतीय मनीषियों ने अपने गहन चिंतन और अनुसंधान से न केवल अपने देश में बल्कि वैश्विक स्तर पर भी विज्ञान और ज्ञान के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान हासिल किया। भारतीय ज्ञान सदियों से चला आ रहा है जिसमें वेदों का बड़ा योगदान रहा है। वेद भारतीय ज्ञान परंपरा के सबसे पुराने एवं वैज्ञानिक परिदृश्य के ग्रंथ हैं जिनमें ज्ञान के कई आयामों का वर्णन मिलता है। 'ऋग्वेद', 'यजुर्वेद', 'सामवेद' और 'अथर्ववेद' में प्राकृतिक विज्ञान, चिकित्सा और गणित के सिद्धांतों का वर्णन मिलता है। उपनिषद, जो वेदों के हिस्से हैं, भारतीय दर्शन का केंद्रबिंदु माने जाते हैं।

ज्ञान की परिभाषा

कहा जाए तो ज्ञान की परिभाषा देना भी ज्ञान ही है। ज्ञान वह सूचना, तथ्य, समझ और अनुभव है जिसे व्यक्ति द्वारा सीखा या समझा जाता है। यह किसी विशेष विषय या वस्तु के बारे में गहन जानकारी और समझ का परिणाम होता है। ज्ञान केवल जानकारी तक सीमित नहीं होता बल्कि व्यक्ति की अनुभवजनित समझ, तर्क और विश्लेषणात्मक क्षमता को भी शामिल करता है। इसका उद्देश्य व्यक्ति को सटीक निर्णय लेने और समस्याओं का समाधान करने में सक्षम बनाना है।

विज्ञान की परिभाषा

विज्ञान की परिभाषा यह है कि विज्ञान एक प्रणालीबद्ध अध्ययन है जो प्राकृतिक और भौतिक दुनिया के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए निरीक्षण, प्रयोग, विश्लेषण और परीक्षण का उपयोग करता है। यह ज्ञान की वह शाखा है जो तथ्यों, सिद्धांतों और नियमों के आधार पर ब्रह्मांड के विभिन्न पहलुओं की व्याख्या करती है। विज्ञान तर्कसंगत सबूतों और अनुभवजन्य अनुसंधान पर आधारित होता है और इसका उद्देश्य प्रकृति और उसकी कार्यप्रणाली को समझना और उपयोगी आविष्कार करना होता है।

प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा और इतिहास

प्राचीन काल से ही भारत देश मानवीय मूल्यों एवं विशिष्ट वैज्ञानिक परंपराओं का देश रहा है। भारत की संस्कृति रही है कि उसने दुनिया को अलग–अलग देश के रूप में नहीं गिना। *अयं निजः परो वेति गणना लघु चेतसाम्, उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुंबकम्।* उपनिषद् के इस सिद्धांत के आधार पर भारत दुनिया को एक परिवार मानता है। यह अलग बात है कि पाश्चात्य सभ्यता की आपाधापी में हम भी यह गलती से समझने लगे कि यह सभ्यता भौतिकवाद पर टिकी है, न कि ज्ञान और अध्यात्म पर। इस सदी के उत्तरार्ध से पश्चिमी सभ्यता वाले देश भारतीय संस्कृति और सभ्यता

को अपनाने और जानने पर जोर देने लगे हैं। वेदों, उपनिषदों, स्मृतियों और यहाँ की जीवन–शैली को जानने के लिए अपने यहाँ कई विभाग और शोध–संस्थाओं की स्थापना करने लगे हैं। भारत की परंपराओं के आज विश्व भी अपना रहा है। हमें और हमारी भावी पीढ़ियों को भी भारत के प्राचीन मूल्यों को यथोचित महत्त्व देना होगा। इसके लिए आंतरिक ज्ञान, गुण, शक्ति एवं आदर्शों को ठीक रूप से पहचानना एवं सही दिशा प्रदान करना आवश्यक है।

यह ज्ञान परंपरा अनादिकाल से चली आ रही है। देवता, सुर, असुर सभी तरसते हैं इस भूमि पर जन्म लेने के लिए क्योंकि यहाँ से स्वर्ग और मोक्ष का मार्ग प्रशस्त होता है। निस्संदेह भारत में अक्षय ज्ञान परंपरा विद्यमान है, इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। भारतीय ज्ञान परंपरा एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर महान वैज्ञानिक अलबर्ट आइंसटीन ने कहा था, हम भारतीयों के बहुत ऋणी हैं जिन्होंने हमें गिनना सिखाया, जिसके बिना कोई सार्थक वैज्ञानिक खोज नहीं हो सकती थी। इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय प्राचीन ज्ञान का योगदान सदैव से ही अमूल्य रहा है।

भारतीय विज्ञान का इतिहासः– भारतीय प्राचीन ज्ञान के साथ–साथ विज्ञान का इतिहास भी बेहद समृद्ध रहा है। हम इन दोनों को अलग–अलग करके नहीं देख सकते हैं। इसमें खगोल, गणित और चिकित्सा विज्ञान की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। भारत की ज्ञान और विज्ञान परंपरा का वैश्विक प्रभाव भी गहरा रहा है। कई प्राचीन भारतीय विचार और सिद्धांत पश्चिमी विज्ञान और दर्शन पर भी प्रभाव डाल चुके हैं। यहाँ पर विज्ञान लेखन का बारंबार उपयोग किया गया है। विज्ञान लेखन का अभिप्राय हिंदी में वैज्ञानिक विचारों को प्रस्तुत करने के तरीके, शब्दावली और साहित्य का अध्ययन करना है। तो आइए, जानते हैं कि किस तरह से प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा और विज्ञान का हमारी जिंदगी पर प्रभाव पड़ता है।

• प्राचीन भारत में शिक्षा का माध्यम गुरुकुल प्रणाली थी जहाँ छात्र अपने गुरु के सान्निध्य में ज्ञान प्राप्त करते थे। यह प्रणाली संपूर्ण और समग्र शिक्षा प्रदान करती थी।

• भारत में योग और आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति की परंपरा भी अत्यंत समृद्ध रही है जो शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य का संतुलन स्थापित करती है।

• भारत में धर्म और दर्शन का विज्ञान से अद्भुत समन्वय रहा है। यहाँ के धार्मिक और दार्शनिक ग्रंथों में विज्ञान के सिद्धांतों का गहन विवरण मिलता है, जो अद्वितीय है।

• आर्यभट्ट और वराहमिहिर ने गणित और खगोल विज्ञान में जो योगदान दिया है, वह आज भी वैज्ञानिक समाज द्वारा मान्यता–प्राप्त है। आर्यभट्ट ने शून्य की

खोज की और ग्रहों की गति का अध्ययन किया।

• रामानुजन ने गणित के क्षेत्र में अद्वितीय योगदान दिया। उनके सिद्धांतों ने आधुनिक गणित को नयी दिशा दी।

• मध्यकालीन और आधुनिक भारत में विज्ञान के क्षेत्र में कई महत्त्वपूर्ण खोजें हुईं। सी.वी. रमन, ए.पी.जे. अब्दुल कलाम और विक्रम साराभाई जैसे वैज्ञानिकों ने भारतीय विज्ञान को वैश्विक मंच पर पहुँचाया।

भारतीय ज्ञान परंपरा– तकनीकी एवं वैज्ञानिक विकास

भारतीय संस्कृति, जो हजारों वर्षों की ज्ञान परंपरा को समेटे हुए है, में रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों का अति महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये महाकाव्य न केवल धार्मिक और आध्यात्मिक महत्त्व रखते हैं, बल्कि इनमें विज्ञान और प्रौद्योगिकी के अनेक अद्भुत उदाहरण भी देखने को मिलते हैं। 'रामायण' और 'महाभारत' में वर्णित तकनीकी और वैज्ञानिक विकास हमें यह बताते हैं कि प्राचीन भारतीय समाज में विज्ञान का सामर्थ्य और तकनीकी नवीनता कितनी प्रगति कर चुकी थी।

1. रामायण में विज्ञान और प्रौद्योगिकी

रामायण में कई तकनीकी और वैज्ञानिक आविष्कारों का उल्लेख मिलता है। सबसे प्रमुख है गर्गसंहिता जो समुद्र की गहराई, ग्रहों की स्थिति और अन्य ज्योतिषीय गणनाओं के आधार पर युद्ध के समय के निर्णयों में मदद करती थी। इसके अलावा रामायण में उड़नयान (विमान) का उल्लेख भी देखने को मिलता है।

1.1 विमान निर्माण एवं उड़ानः–

रामायण में पुष्पक विमान का वर्णन मिलता है, जो भगवान राम और उनके अनुयायियों के लिए उड़ने वाला एक अद्भुत यान था। इसे रावण ने अपने पास रखा था और वह स्वर्ण से निर्मित था। यह केवल एक कल्पना नहीं है बल्कि इसकी अनेक तकनीकी विशेषताएँ भी थीं; जैसे यह यान तेजी से उड़ सकता था और पूरे देश में यात्रा करने की क्षमता रखता था।

1.2 रसायन विज्ञान और औषधीय प्रयोग

रामायण में हनुमान जी द्वारा लाई गई संजीवनी बूटी का भी उल्लेख है जो उनकी औषधीय क्षमता को दर्शाता है। यह न केवल अस्पतालों के लिए महत्त्व रखता था, बल्कि प्राचीन समय में यह औषधि विज्ञान की एक बुनियाद भी था।

2. महाभारत में वैज्ञानिक दृष्टिकोण

महाभारत में भी तकनीकी और वैज्ञानिक विकास के अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं। इससे एक बात तो यह सिद्ध होती है कि वैज्ञानिक एवं तकनीकी स्तर पर प्रारूप में प्राचीन ज्ञान परंपरा एक अतिविकसित रूप में उपस्थित थी।

2.1. अस्त्र–शस्त्र और युद्ध–विज्ञान

महाभारत में विभिन्न प्रकार के अस्त्रों–शस्त्रों का उल्लेख मिलता है। इनमें ब्रह्मास्त्र, पाशुपतास्त्र जैसे शक्तिशाली अस्त्रों का वर्णन है जो न केवल विनाशकारी होते थे बल्कि इनका प्रयोग करने की एक विशेष शैली भी होती थी। यह इस बात का प्रमाण है कि उस समय युद्ध और सुरक्षा के लिए कितनी तरकीबों और तकनीकों का विकास किया गया था।

2.2. गणित और भूगोल

महाभारत में गणित और भूगोल से संबंधित अवधारणाओं का भी उल्लेख है। जैसे कि, "रूलिंग" और "ज्योतिष" के माध्यम से युद्ध के समय की गणना करना। 'महाभारत' के युद्ध का आयोजन वैज्ञानिक रूप से तर्कसंगत ढंग से किया गया था, जिसमें सैनिकों की संख्या, उनके स्थान और अस्त्रों की स्थिति सभी का ध्यान रखा गया था।

3. भारतीय ज्ञान परंपरा में विज्ञान का स्थान

भारतीय ज्ञान परंपरा में विज्ञान और प्रौद्योगिकी का समृद्ध इतिहास हमें यह सिखाता है कि सामान्य ज्ञान और अनुभव के आधार पर कई नवीन आविष्कार किए गए हैं। हमारा वर्तमान मिसाइल कार्यक्रम इसका एक ज्वलंत उदाहरण है। प्राचीन भारतीय ऋषि और मुनियों ने अपने समय में जिस विज्ञान और प्रौद्योगिकी को विकसित किया, वह आज भी हमारे लिए प्रेरणा का स्रोत बना हुआ है।

4. भारतीय ज्ञान परंपरा में वैज्ञानिक अवधारणाएँ

रामायण और महाभारत जैसे प्राचीन ग्रंथों में कई वैज्ञानिक प्रश्नों और अवधारणाओं को उठाया गया है जो आज के संदर्भ में भी प्रासंगिक हैं। इनमें से कुछ निम्न प्रकार से हैं:–

भौतिकी और यांत्रिकी– इन ग्रंथों में किए गए अनेक युद्धों और उनमें प्रयुक्त तकनीकों का अध्ययन करते समय भौतिकी के सिद्धांतों का अवलोकन किया जा सकता है। जैसे महाभारत में अर्जुन ने जो बाण चलाए, वे बल गति और प्रक्षिप्त विज्ञान (Projectile motion) के सिद्धांत को स्पष्ट करते हैं।

जैविकी और चिकित्सा– रामायण में हनुमान द्वारा संजीवनी बूटी लाने का प्रसंग चिकित्सा विज्ञान के प्राचीन ज्ञान को दर्शाता है। इसमें जड़ी–बूटियों और उनके औषधीय गुणों का उल्लेख है, जो आज भी महत्त्वपूर्ण है।

पारिस्थितिकी– महाभारत और रामायण में प्रकृति, पर्यावरण और पारिस्थितिकी के प्रति जागरूकता देखी जाती है। उदाहरण के लिए, वनवास के दौरान वन्य–जीवन, पेड़–पौधों और पारिस्थितिकी तंत्र का संरक्षण महत्त्वपूर्ण रूप से प्रकाश में आता है।

गणित और ज्यामिति– इन दोनों महाकाव्यों में विभिन्न प्रकार की गणितीय अवधारणाओं और प्रमाणों का उपयोग किया गया है, जैसे गणितीय तर्क, ज्यामिति आदि।

काल गणना और खगोल विज्ञान–

महाभारत में वर्णित ग्रहों, नक्षत्रों और उनकी गति का अध्ययन खगोल विज्ञान के प्रति प्राचीन भारतीयों की समझ को दर्शाता है। इसमें ग्रहण, तारे और उनकी स्थिति के बारे में कई जानकारियाँ मिलती हैं।

सामान्य विज्ञान

दोनों महाकाव्यों में राजनीति, समाजशास्त्र, धर्म और न्याय का महत्त्व बताया गया है। साथ ही समाज की संरचना और शासन व्यवस्था के बारे में सिद्धांत और नैतिकता की बातें की गई हैं जो आज भी प्रासंगिक हैं।

इन पहलुओं से यह स्पष्ट है कि भारतीय ज्ञान परंपरा के दो प्राचीन ग्रंथों (रामायण एवं महाभारत) में उठाए गए वैज्ञानिक प्रश्नों और विचारों ने मानवता के विकास को दिशा दी है और आज के वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी ये महत्त्वपूर्ण हैं।

रामायण और महाभारत जैसे भारतीय भाषा में लिखे गए प्राचीन ग्रंथों में अनेक चिकित्सा उपायों और औषधियों का उल्लेख मिलता है। इनमें से कुछ उपायों और औषधियों का वर्तमान चिकित्सा विज्ञान में आधार मिलता है, जबकि कुछ ने चिकित्सा पद्धति के आधुनिकीकरण के लिए एक अच्छा मार्ग भी प्रशस्त किया है।

1. **औषधियुक्त वनस्पतियाँ:** रामायण और महाभारत में कई औषधीय पौधों का उल्लेख है, जैसे तुलसी, अदरक, हल्दी आदि। इन पौधों का उपयोग आज के चिकित्सा विज्ञान में भी किया जाता है और इनके औषधीय गुणों की पुष्टि भी हुई है।

2. **रूप चिकित्सा:** जड़ी–बूटियों और घरेलू उपायों का उल्लेख इन ग्रंथों में मिलता है, जो आज होम्योपैथी और आयुर्वेद जैसी प्रणालियों के साथ जुड़ते हैं। कई आधुनिक अध्ययनों ने इस पारंपरिक ज्ञान की प्रभावशीलता को प्रमाणित किया है।

3. **प्राकृतिक उपचार:** शारीरिक बीमारियों के उपचार के लिए प्राकृतिक उपायों का वर्णन मिलता है; जैसे स्नान, ध्यान और योग जो अब व्यापक रूप से वर्तमान चिकित्सा में स्वीकृत हैं।

समग्र रूप से, भारतीय ज्ञान परंपरा के तहत प्राचीन समय के चिकित्सा ज्ञान और आधुनिक विज्ञान के बीच एक पुल का निर्माण किया जा सकता है, बहुत हद तक ऐसा ही हो भी रहा है। आज विश्व के ज्यादातर देश भारतीय ज्ञान परंपरा में रम रहे हैं, अनुसंधान कर रहे हैं तथा भारतीय प्राचीन विज्ञान लेखों तथा ग्रंथों के तहत अनुसंधान कर रहे हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा में रामायण और महाभारत तकनीकी तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से एक अद्भुत धरोहर के रूप में उपस्थित हैं। ये महाकाव्य न केवल नैतिक और धार्मिक शिक्षा देते हैं बल्कि जनमानस को इस बात का भी ज्ञान कराते हैं कि प्राचीन भारतीय समाज में विज्ञान और तकनीकी नवाचार का कितना बड़ा योगदान था। आज हम जब अपनी सांस्कृतिक जड़ों को खोजते हैं, तब हमें इन

महाकाव्यों में छिपे अद्भुत विज्ञान और तकनीकी विकास पर गर्व महसूस होता है। यह हमारी आने वाली पीढ़ियों के लिए भी एक प्रेरणास्रोत रहेगा जो उन्हें आगे बढ़ने और नवाचार करने के लिए प्रेरित करेगा।

आधुनिक संदर्भ में भारतीय ज्ञान परंपरा की भूमिका

यह भारत भूमि महान है। इस भूमि की ज्ञान की अविरल धारा ने संपूर्ण जगत को सींचा है। भारतीय ज्ञान परंपरा पुरातन युग से बहुत समृद्ध रही है। आधुनिक युग में प्रचलित भारतीय ज्ञान और विदेशों से आ रही तथाकथित नवीन खोजें जो हमारे ग्रंथों में उल्लिखित हैं, भारतीय ज्ञान परंपरा के समृद्धशाली होने का प्रमाण है।

सहस्र वर्षों से अधिक की दासता में हमारी सैकड़ों पीढ़ियों ने पीड़ा को झेलते हुए इस ज्ञान को संजोए रखा। परंतु समय के साथ इसकी उपादेयता क्षीण होती रही। इसलिए समय है भारत के ज्ञानवृक्ष की छाया में पोषित हो रहे इस विषय को बताने का कि भारत का गुरुत्व अभी भी कायम है। भारत की ज्ञान परंपरा गंगा जल के समान है जो निर्मल और अविराम है। मैकाले के मानसपुत्र प्रश्न उठाते हैं कि भारत ने विश्व को क्या दिया और यह बोध कराते हैं कि पाश्चात्य देशों ने ही भारत को सब कुछ दिया है। भारत ने विश्व को ज्ञान प्रणाली दी, विज्ञान के अनेक आयाम दिए। यह भारतीय ज्ञान प्रणाली के बारे में चिंता और चिंतन करने का समय है। इसकी उपादेयता को जनमानस तक पहुँचाने के लिए पुरुषार्थ की आवश्यकता है क्योंकि यह बात मात्र पुरातन ज्ञान के बारे में नहीं है बल्कि यह बुद्धि, आंतरिक सुरक्षा और राष्ट्रीय गौरव के बारे में भी है। साथ ही यह बात भी विस्मृत न हो कि भारतीय ज्ञान परंपरा सत्य का अनुमोदन करती है।

अब यह हम सबका कर्तव्य बनता है कि भारतवर्ष की अनमोल धरोहर को संदर्भित करके रखें जिससे कि विश्व का कल्याण हो सके एवं भारत की आने वाली पीढ़ी भारत को हीन दृष्टि से न देखकर गौरवपूर्ण दृष्टि से देखे।

निष्कर्ष— भारतीय ज्ञान परंपरा ने दर्शन, ध्वन्यात्मक अनुष्ठान, व्याकरण, खगोल विज्ञान, अर्थशास्त्र, सांख्य सिद्धांत, तर्क, जीवन विज्ञान, आयुर्वेद, ज्योतिष एवं संगीत जैसे विभिन्न मानव कल्याणकारी क्षेत्रों में कीर्तिमान की स्थापना करके मानव जाति की उन्नति में अत्यधिक योगदान दिया है। प्राचीन भारतीयों द्वारा आविष्कृत विचारों और तकनीकियों का आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी की मूलधार को दृढ़ करने में अद्भुत योगदान रहा है। इस अभिनव योगदान में से वर्तमान में कुछ को अपनाया जा रहा है, कुछ अभी भी अज्ञान के निविड़ में लुप्त हैं।

इस प्रकार भारतवर्ष ने विश्व को अनेक प्रकार से योगदान देकर लाभान्वित किया है। भारत ने ही विश्व को बौद्ध, जैन और सिक्ख पंथ दिए। भारतीय ज्ञान परंपरा ने विश्व को गुरु शिष्य परंपरा दी जिसके माध्यम से वर्षों तक अर्जित ज्ञान

को आत्मसात और विश्लेषित कर नये ज्ञान को संश्लेषित किया गया। निष्कर्षतः भारतीय ज्ञान परंपरा आज के परिदृश्य में भी विद्यमान है। यह ज्ञान का एक विशाल भंडार प्रदान करती है जिसका उपयोग लोगों, समुदायों और मानवता को आगे बढ़ाने के लिए किया जा सकता है। भारतीय ज्ञान परंपरा ज्ञान, विज्ञान, और भारतीय संस्कृति के बीच एक पुल बनाने में मदद करती है जो शिक्षा, अनुसंधान और सामाजिक विकास के लिए उपयोगी है।

अतः विश्व धरोहर के लिए समृद्ध विरासतों को न केवल भावी पीढ़ी के लिए पोषित और संरक्षित किया जाना चाहिए बल्कि हमारी शिक्षा प्रणाली के जरिए बढ़ाना भी चाहिए, साथ ही इन्हें नये उपयोग में भी लाना चाहिए। उत्तम ज्ञान ही एक स्वस्थ समाज को उसके शीर्ष तक पहुँचाने में योगदान देता है। सभी योनियों में मनुष्य को श्रेष्ठ कहा गया है। अतः श्रेष्ठों का कार्य भी उत्तम और कल्याणप्रद होना आवश्यक है।

❑❑❑

नवीनता काव्य का प्राथमिक उपादान है
और पिष्टपेषन उसका अंतिम अभिशाप।

✍ आचार्य नंद दुलारे बाजपेयी

भारतीय ज्ञान परंपरा में विज्ञानसम्मत सिद्धांतों का विवेचन

✍ डॉ. राजीव रंजन

विश्व के इतिहास में जब हम विज्ञान की विकास यात्रा का अवलोकन करते हैं तो भारतीय मनीषा की प्रखर बुद्धिमत्ता चकाचौंध कर देने वाली प्रतीत होती है। यहाँ की ज्ञान परंपरा ने केवल सिद्धांतों का प्रतिपादन ही नहीं किया, वरन् उन्हें जीवन के व्यावहारिक उपयोग में भी ढाला है। वेदों की ऋचाओं से लेकर आधुनिक प्रयोगशालाओं तक भारत का वैज्ञानिक चिंतन एक अविच्छिन्न धारा के समान प्रवाहित होता रहा है। विश्व के इतिहास में भारतीय ज्ञान परंपरा एक विशिष्ट स्थान रखती है। यहाँ विज्ञान कभी भी जीवन से पृथक् नहीं रहा, वरन् उसके अभिन्न अंग के रूप में विकसित हुआ। वैदिक ऋषियों से लेकर आधुनिक वैज्ञानिकों तक की यह यात्रा मानव बुद्धि के विलक्षण प्रकाशन का जीवंत दस्तावेज है। जब पश्चिम में विज्ञान और दर्शन को पृथक् माना जाता था, तब भारत में चरक और सुश्रुत जैसे मनीषियों ने आयुर्वेद के माध्यम से शरीर, मन और आत्मा के समन्वय का मार्ग प्रशस्त किया। भारतीय ज्ञान परंपरा में विज्ञान और दर्शन का अद्वितीय समन्वय देखने को मिलता है। भारतीय ज्ञान परंपरा की यह वैज्ञानिक धारा कोई संयोग नहीं, वरन् सतत साधना का परिणाम है। जब हम आर्यभट्ट के खगोल सिद्धांतों और सुश्रुत के शल्य विज्ञान को आधुनिक संदर्भ में देखते हैं तो एक गौरवशाली विरासत का बोध होता है। यही विरासत आज चंद्रयान और मंगलयान के रूप में अंतरिक्ष में भारत का परचम लहरा रही है। वस्तुतः भारतीय विज्ञान परंपरा ने केवल अतीत को ही गौरवान्वित नहीं किया है, वरन् वह भविष्य के लिए एक दिशा–दर्शक भी है।

भारतीय ज्ञान परंपरा विश्व की उन महान सांस्कृतिक परंपराओं में से एक है जिसने मानवता को न केवल दर्शन और अध्यात्म का गूढ़ विवेचन दिया है, बल्कि गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद, रसायन, वास्तुशास्त्र और खगोल जैसे क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक योगदान भी किया है। आधुनिक विज्ञान लेखन की जड़ें भी भारत की इस समृद्ध परंपरा में निहित हैं जहाँ 'ऋषि' शब्द केवल आध्यात्मिक गुरु नहीं बल्कि 'ज्ञान के अन्वेषक' के रूप में भी प्रतिष्ठित रहा है। भारतीय ज्ञान परंपरा ने विश्व विज्ञान के विकास में अग्रणी भूमिका निभाई है। वैदिक काल से लेकर आधुनिक युग तक,

भारतीय विद्वानों ने गणित, खगोल विज्ञान, चिकित्सा, धातु विज्ञान और भौतिकी में मौलिक योगदान दिया है। भारतीय ज्ञान परंपरा विश्व की सबसे पुरानी सतत बौद्धिक विरासतों में से एक है। पश्चिमी विद्वान अक्सर यूनानी विज्ञान को प्राचीन विज्ञान का आधार मानते हैं, लेकिन भारतीय स्रोतों में पाए जाने वाले गहन वैज्ञानिक सिद्धांत इस धारणा को चुनौती देते हैं। वैदिक गणित से लेकर आयुर्वेदिक चिकित्सा तक भारत ने न केवल सैद्धांतिक खोजें कीं बल्कि उन्हें व्यावहारिक अनुप्रयोगों में भी ढाला है। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में ब्रह्मांड की उत्पत्ति का जो वैज्ञानिक विवरण मिलता है, वह आधुनिक 'बिग बैंग सिद्धांत' से अद्भुत साम्य रखता है— *नासदासीन नो सदासीत तदानीं...* अर्थात् आदि में न सत् था, न असत्। यजुर्वेद में गणितीय सूत्रों का संकलन और अथर्ववेद में रोग निदान की विधियाँ आज भी शोधकर्ताओं को चमत्कृत करती हैं। शुल्ब सूत्रों में वर्णित पाइथागोरस प्रमेय से सैकड़ों वर्ष पूर्व का यह कथन— *दीर्घचतुरश्रस्याक्ष्णया रज्जुः* भारतीय गणित की प्राचीनता का ज्वलंत प्रमाण है।

गुप्तकालीन भारत ने विज्ञान के क्षेत्र में अद्वितीय प्रतिभाओं को जन्म दिया। आर्यभट्ट की कालजयी रचना 'आर्यभटीय' ने खगोल विज्ञान में क्रांति ला दी। पृथ्वी की गोलाकार आकृति और अपनी धुरी पर घूर्णन का उनका सिद्धांत *अनुलोमगतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत* (अर्थात् 'जैसे नाव में बैठा व्यक्ति स्थिर वस्तुओं को विपरीत दिशा में जाते देखता है') उल्लेखनीय हैं। भास्कराचार्य ने 'लीलावती' ग्रंथ में जिस गणितीय सूक्ष्मता का परिचय दिया, वह आज भी विद्वानों के लिए आश्चर्य का विषय है। उनका यह श्लोक कलन शास्त्र (कैलकुलस) का आधार बना है। ''अनंत अंशों का योग'' सुश्रुत संहिता में वर्णित शल्य चिकित्सा के सिद्धांत आज भी चिकित्सा जगत के लिए प्रेरणास्रोत हैं। नेत्र शल्य चिकित्सा (मोतियाबिंद प्रचालन) का यह विवरण *सूक्ष्मशस्त्रेण नेत्रस्य पटलं छिद्य सम्यक्* अर्थात् सूक्ष्म शस्त्र से नेत्र के पटल को चीरना आधुनिक ऑप्थल्मोलॉजी के मूल में निहित है।

केरल के माधवाचार्य ने जब पाई (π) के मान की गणना के लिए अनंत श्रेणी की खोज की, तो यूरोप में कैलकुलस का जन्म भी नहीं हुआ था। उनका यह सूत्र गणित इतिहास का स्वर्णिम अध्याय हैः *व्यासे वारिधिनिहते*।

जगदीश चंद्र बोस ने पादपों में चेतना का प्रमाण दिया तो सी.वी. रमन ने प्रकाश के नये गुण की खोज कर नोबेल पुरस्कार प्राप्त किया। डॉ. होमी भाभा ने भारत को परमाणु शक्तिसंपन्न राष्ट्र बनाने की नींव रखी।

भारतीय ज्ञान परंपरा में विज्ञान की अवधारणा

भारतीय ज्ञान परंपरा में विज्ञान की अवधारणा एक सुव्यवस्थित और बहुआयामी पद्धति पर आधारित रही है जिसमें अनुभव (प्रत्यक्ष), तर्क (अनुमान) और प्रामाणिक ग्रंथों (आगम) को ज्ञान के प्रमुख स्रोत माना गया। न्याय और वैशेषिक दर्शन में पदार्थों

के अणु–परमाणु सिद्धांत का विस्तृत विवेचन मिलता है जो आधुनिक भौतिकी के साथ आश्चर्यजनक समानता रखता है। गणित और खगोल विज्ञान के क्षेत्र में भारतीय विद्वानों ने अद्वितीय योगदान दिया जिसमें शून्य और दशमलव प्रणाली की खोज, आर्यभट्ट द्वारा पृथ्वी की गोलाकारता का प्रतिपादन तथा 'सूर्यसिद्धांत' एवं 'सिद्धांत शिरोमणि' जैसे ग्रंथों में खगोलीय घटनाओं की सटीक गणना शामिल है। चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में आयुर्वेद ने पंचतत्व सिद्धांत पर आधारित एक समग्र उपचार पद्धति विकसित की जिसमें चरक और सुश्रुत ने शारीरिक संरचना, शल्य चिकित्सा तथा औषधि विज्ञान में अग्रणी कार्य किए। 'योग और मनोविज्ञान' के क्षेत्र में पतंजलि के योगसूत्र ने मन–शरीर संबंधों का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया जिसमें ध्यान और प्राणायाम के माध्यम से तनाव प्रबंधन तथा संज्ञानात्मक क्षमता वृद्धि के सिद्धांत समाहित हैं। प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्राचीन भारत ने धातुविज्ञान और वास्तुशास्त्र में उल्लेखनीय प्रगति की जिसके प्रमाण विभिन्न ऐतिहासिक स्थलों और ग्रंथों में देखे जा सकते हैं। 'नालंदा और तक्षशिला' जैसे प्राचीन विश्वविद्यालयों में प्रायोगिक शिक्षा पर बल दिया गया जो आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति के समानांतर है। भारतीय ज्ञान परंपरा की यह वैज्ञानिक विरासत न केवल ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है बल्कि आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधानों के लिए भी प्रासंगिक बनी हुई है।

भारतीय ज्ञान परंपरा में विज्ञान की अवधारणा

भारतीय संस्कृति में ज्ञान और विज्ञान को अलग–अलग इकाइयाँ नहीं, बल्कि एक समग्र दृष्टिकोण के रूप में देखा गया है। प्राचीन भारतीय ग्रंथों में विज्ञान को 'शास्त्र' या 'विद्या' के रूप में परिभाषित किया गया है। 'आयुर्वेद चरक' और 'सुश्रुत संहिता' में चिकित्सा विज्ञान के सिद्धांत आधुनिक चिकित्सा पद्धति से कहीं आगे थे। आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य ने शून्य, दशमलव प्रणाली और ग्रहों की गति के सिद्धांत दिए। पतंजलि के योगसूत्र में मनोविज्ञान और शारीरिक स्वास्थ्य का वैज्ञानिक विवेचन मिलता है। वास्तुशास्त्र एवं रसायन विज्ञान द्वारा प्राचीन मंदिरों की संरचना और धातु विज्ञान में उन्नत तकनीकों का प्रयोग हुआ है।

1. वैज्ञानिक सिद्धांतों का साहित्यिक रूप में प्रस्तुतीकरण

सा विद्या या विमुक्तये। (कठोपनिषद् 1.2.9) अर्थात् वह ज्ञान ही सच्चा है जो मुक्ति की ओर ले जाए। भारतीय ज्ञान परंपरा की मूलभूत विशेषता समग्र दृष्टिकोण (Holistic Approach) में है जहाँ विज्ञान, दर्शन और आध्यात्मिकता में भेद नहीं किया गया है। अनुभवसिद्ध ज्ञान प्रयोग और निरीक्षण पर आधारित ज्ञान को मान्यता है। ज्ञान का वाचिक और व्यावहारिक संप्रेषण गुरु–शिष्य परंपरा का मूल है। प्राचीन भारतीय विज्ञान लेखन ने जटिल वैज्ञानिक अवधारणाओं को सूत्रों, श्लोकों और काव्यात्मक भाषा में प्रस्तुत किया। 'आर्यभटीयम्', 'सुश्रुत संहिता' जैसे ग्रंथों में संक्षिप्त

सूत्र शैली में गहन वैज्ञानिक ज्ञान समाहित किया गया। 'चरक संहिता और सुश्रुत' संहिता में शल्य चिकित्सा के उपकरणों व प्रक्रियाओं का सूक्ष्म वर्णन मिलता है। भारतीय विज्ञान लेखन ने शून्य, रेखागणित, त्रिकोणमिति आदि के लिए सटीक संस्कृत शब्दावली विकसित की है। गणितीय सिद्धांतों को समझाने के लिए युक्तियों (रेखाचित्र) और सरणियों का प्रयोग किया गया। न्याय दर्शन में प्रत्यक्ष (अनुभव), अनुमान (तर्क) और आगम (प्रामाणिक स्रोत) को ज्ञान के आधार के रूप में स्वीकार किया गया। खगोल विज्ञान, गणित और ज्योतिष को एक दूसरे से जोड़कर देखने की परंपरा रही है। सभी वैज्ञानिक सिद्धांतों का कृषि, चिकित्सा, निर्माण कार्य आदि में उपयोग स्पष्ट किया गया। गुरु–शिष्य परंपरा के अनुरूप ज्ञान को क्रमिक रूप से सरल से जटिल की ओर प्रस्तुत करने की पद्धति का उपयोग किया गया है। स्थानीय भाषाओं में ज्ञान का प्रचार–प्रसार करने के लिए संस्कृत के साथ–साथ प्राकृत व अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में भी विज्ञान लेखन हुआ है। आयुर्वेद, ज्योतिष, गणित और धातुविज्ञान जैसे विषयों को एक दूसरे से जुड़े हुए रूप में प्रस्तुत किया गया। मौखिक और लिखित दोनों परंपराओं में जटिल सिद्धांतों को सरल कथाओं और उदाहरणों के माध्यम से समझाने की विधि को समाहित किया गया है। प्रकृति–आधारित अवलोकन के द्वारा पशु–पक्षियों के व्यवहार, वनस्पतियों और खगोलीय घटनाओं के सूक्ष्म अवलोकन पर आधारित निष्कर्ष तथा स्थानीय संदर्भों का समावेश, क्षेत्र विशेष की भौगोलिक और सांस्कृतिक विशेषताओं को वैज्ञानिक विवेचन में शामिल किया गया है। वैज्ञानिक ज्ञान को नैतिक मूल्यों और सामाजिक हित के साथ जोड़कर बुनियादी अवधारणाओं से शुरू करके क्रमिक रूप से उन्नत सिद्धांतों तक पहुँचने की पद्धति अपनाई गई है। विद्वानों और सामान्यजन दोनों के लिए उपयुक्त लोक भाषाशैली और तकनीकी भाषा में तारतम्य को विशेष बढ़ावा दिया गया है। प्रयोगों और परिणामों के विस्तृत विवरण के आधार पर चिकित्सा प्रयोगों और खगोलीय गणनाओं के परिणामों को स्पष्टता से दर्ज किया गया। ज्ञान के संरक्षण और संवर्धन में पीढ़ी–दर–पीढ़ी ज्ञान को सुरक्षित रखने के क्रम में स्मृति और लेखन दोनों विधियों का उपयोग किया जाता है।

2. प्राचीन भारत में वैज्ञानिक चिंतन :

प्राचीन भारत में वैज्ञानिक चिंतन की नींव वैदिक साहित्य और संस्कृत ग्रंथों में दिखाई देती है जहाँ प्रकृति और ब्रह्मांड के नियमों को समझने का प्रयास किया गया था। आर्यभट्ट, भास्कराचार्य और ब्रह्मगुप्त जैसे खगोलविदों ने ग्रहों की गति, ग्रहणों और ज्योतिषीय घटनाओं का गणितीय विश्लेषण प्रस्तुत किया। 'चरक संहिता और सुश्रुत संहिता' में शरीर रचना विज्ञान, शल्य चिकित्सा और औषधि विज्ञान के विस्तृत सिद्धांत मिलते हैं। भारतीय दार्शनिकों ने परमाणु सिद्धांत (अणुवाद) का प्रतिपादन

किया जो आधुनिक भौतिकी के साथ आश्चर्यजनक समानता रखता है। शून्य की अवधारणा और दशमलव प्रणाली का आविष्कार भारतीय गणितज्ञों की महान देन थी जिसने विश्व गणित को नई दिशा दी। योग विज्ञान में मन–शरीर संबंधों का वैज्ञानिक अध्ययन किया गया जिसमें प्राणायाम और ध्यान के माध्यम से स्वास्थ्य लाभ पर बल दिया गया। वास्तुशास्त्र और शिल्प शास्त्र में भौतिकी के सिद्धांतों का प्रयोग करके मंदिरों और भवनों का निर्माण किया गया। धातु विज्ञान के क्षेत्र में प्राचीन भारत ने लोहे और इस्पात की उन्नत तकनीक विकसित की जिसका प्रमाण दिल्ली का लौह स्तंभ है। जल प्रबंधन और कृषि विज्ञान में सिंचाई के उन्नत तरीके और मौसम विज्ञान का ज्ञान प्राचीन ग्रंथों में वर्णित है। नालंदा और तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालयों में विज्ञान की विभिन्न शाखाओं का व्यवस्थित अध्ययन होता था जो भारत के वैज्ञानिक चिंतन की उन्नत अवस्था को दर्शाता है।

(क) गणित और ज्योतिष

स्वर्मण्डलं ब्रह्मणा कल्पितं यथा चक्रं प्रतिष्ठितं तेन स्थाणुं न विचाल्यते अर्थात सौरमंडल में ग्रह एक केंद्र के चारों ओर चक्रवत् घूमते हैं। (सूर्यमती, 7वीं शताब्दी) बौधायन, आपस्तंब, आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त जैसे गणितज्ञों ने शून्य, पाई, बीजगणित, त्रिकोणमिति और ज्योतिष पर शोध किया। आर्यभट्ट ने कहा है कि पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती है और यह सूर्य के चारों ओर परिभ्रमण करती है।

(ख) आयुर्वेद और चिकित्सा

धर्मार्थकाममोक्षाणां आरोग्यं मूलं उत्तमम्। अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष– इन चार पुरुषार्थों का मूल आरोग्य है। 'चरक संहिता' और 'सुश्रुत संहिता' जैसे ग्रंथों में शल्य चिकित्सा, शरीर रचना और औषधि विज्ञान का प्राचीन विवरण मिलता है। सुश्रुत को 'शल्यचिकित्सा का जनक' कहा जाता है। वे 125 से अधिक औजारों का प्रयोग करते थे।

(ग) रसायन और धातु विज्ञान

रसायन (Alchemy) का प्रयोग औषधि निर्माण और धातु शोधन में होता था। दिल्ली का लौह स्तंभ (4वीं शताब्दी) आज तक बिना जंग लगे खड़ा है, यह उन्नत धातु विज्ञान का प्रमाण है।

3. विज्ञान लेखन की भारतीय शैली

तत् कार्यं स्यात् कारणभावात्। अर्थात् कार्य (परिणाम) का अस्तित्व कारण के अस्तित्व पर निर्भर है। (वैशेषिक सूत्र 1.1.5)

भारतीय विज्ञान लेखन की भारतीय शैली में काव्यात्मक श्लोकों के माध्यम से जटिल वैज्ञानिक अवधारणाओं को व्यक्त करने की परंपरा रही है। सूत्र शैली इसकी प्रमुख विशेषता रही है जिसमें संक्षिप्त वाक्यों में गहन वैज्ञानिक सिद्धांत समाहित किए

जाते थे। प्राचीन भारतीय विज्ञान ग्रंथों में तकनीकी शब्दावली के साथ–साथ लौकिक उदाहरणों का सहज प्रयोग मिलता है। भारतीय शैली में वैज्ञानिक विषयों को कथा–आख्यान के रूप में प्रस्तुत करने की विशेष परंपरा रही है। गणितीय सिद्धांतों को समझाने के लिए युक्तियों (रेखाचित्रों) और सारणियों का प्रयोग भारतीय विशिष्टता है। आयुर्वेदिक ग्रंथों में रोग निदान और उपचार विधियों का विस्तृत वर्णन मिलता है।

भारतीय विज्ञान लेखन में सैद्धांतिक और व्यावहारिक पक्षों का सुंदर समन्वय देखने को मिलता है। ज्योतिष शास्त्र के ग्रंथों में खगोलीय गणनाओं को स्पष्ट करने के लिए विशेष प्रकार की गणितीय शैली अपनाई गई। भारतीय परंपरा में विज्ञान को नीति और नैतिकता से जोड़कर प्रस्तुत किया जाता था। शिक्षाप्रद कथाओं और दृष्टांतों के माध्यम से वैज्ञानिक सिद्धांतों को समझाना भारतीय शैली की विशेषता रही। संस्कृत के साथ–साथ प्राकृत और अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में भी वैज्ञानिक विषयों पर लेखन हुआ है। भारतीय विज्ञान लेखन में प्रकृति के सूक्ष्म अवलोकन पर आधारित निष्कर्षों को महत्त्व दिया गया है। गुरु–शिष्य संवाद के रूप में वैज्ञानिक ज्ञान का प्रसार भारतीय शैली की अनूठी विशेषता है। वैज्ञानिक विषयों को समझाने के लिए उपमाओं और रूपकों का सहज प्रयोग किया गया है। भारतीय शैली में वैज्ञानिक तथ्यों को सरल से जटिल की ओर क्रमिक रूप से प्रस्तुत किया जाता था। प्राचीन भारतीय विज्ञान ग्रंथों में प्रयोगों और परिणामों का विस्तृत विवरण मिलता है। भारतीय विज्ञान लेखन में मानव कल्याण को केंद्र में रखकर ज्ञान प्रस्तुत किया जाता था। विभिन्न विज्ञान शाखाओं के बीच अंतर्संबंध स्थापित करना भारतीय शैली की विशेषता रही। भारतीय परंपरा में वैज्ञानिक ज्ञान को सामाजिक उपयोगिता के साथ जोड़कर देखा गया। आधुनिक समय में भी भारतीय शैली के अनुरूप स्थानीय भाषाओं में विज्ञान लेखन को बढ़ावा दिया जा रहा है।

4. मध्यकालीन भारत में विज्ञान का प्रवाह

मध्यकालीन भारत में विज्ञान का प्रवाह संस्कृत और फारसी ग्रंथों के माध्यम से निरंतर बना रहा जिसमें हिंदू और इस्लामी विद्वानों ने साझा योगदान दिया। भास्कराचार्य, माधवाचार्य, नीलकंठ सोमयाजी जैसे वैज्ञानिकों ने खगोल, गणित और समय विज्ञान में योगदान दिया है। केरल स्कूल ऑफ गणित में 'इन्फिनिट सीरीज़' पर कार्य हुआ जिसे बाद में न्यूटन–लीबनिज़ ने भी उपयोग किया। इस काल में खगोल विज्ञान के क्षेत्र में राजा जय सिंह द्वितीय द्वारा 'जंतर–मंतर' जैसी वेधशालाओं का निर्माण हुआ जो खगोलीय गणनाओं के लिए प्रसिद्ध हैं। आयुर्वेद और यूनानी चिकित्सा पद्धति का समन्वय हुआ जिससे दवाओं और उपचार के नए तरीके विकसित हुए। गणित में केरल के माधवाचार्य ने अनंत श्रेणी और कलन (कैलकुलस)

के प्रारंभिक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। धातु विज्ञान और शिल्पकला में उन्नति हुई जिसका प्रमाण मध्यकालीन भारत की तलवारें, कवच और धातु की कलाकृतियाँ हैं। फारसी और संस्कृत भाषाओं में अनुवाद के माध्यम से यूनानी, अरबी और भारतीय विज्ञान का आदान–प्रदान हुआ। सिंचाई और जल प्रबंधन में नहरों, बावड़ियों और जल संचयन की नयी तकनीकें विकसित की गईं। वास्तुकला में गोल गुंबद, मेहराब और वैज्ञानिक हवादार इमारतों का निर्माण हुआ, जैसे कुतुबमीनार और गोल गुंबज। रसायन विज्ञान (अल्केमी) में धातुओं के शोधन और रंगों के निर्माण पर प्रयोग किए गए। इस युग में विज्ञान की शिक्षा मदरसों और पाठशालाओं में दी जाती थी जहाँ गणित, खगोल और चिकित्सा विज्ञान पढ़ाया जाता था। मध्यकालीन भारत में कागज निर्माण और पुस्तकालय संस्कृति का विकास हुआ जिससे वैज्ञानिक ज्ञान का संरक्षण और प्रसार संभव हुआ। सम्राट अकबर के दरबार में संगीत के वैज्ञानिक अध्ययन को प्रोत्साहन मिला जिसमें स्वरों और तालों का गणितीय विश्लेषण किया गया। नौवहन तकनीक में सुधार हुआ और जहाज निर्माण कला विकसित हुई, जिससे समुद्री व्यापार को बढ़ावा मिला। इस काल में यंत्र निर्माण कला विशेष रूप से विकसित हुई जिसमें जल घड़ियों और खगोलीय यंत्रों का निर्माण हुआ। कृषि विज्ञान में नयी फसलों और सिंचाई तकनीकों का प्रयोग शुरू हुआ जिससे कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई।

मध्यकालीन चिकित्सकों ने महामारियों से निपटने के लिए सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था पर जोर दिया और संगरोध (क्वारंटाइन) की अवधारणा विकसित की। धातुकर्म में इस्पात निर्माण की विशेष तकनीकें विकसित हुईं जिनमें 'वूट्ज स्टील' विश्वप्रसिद्ध हुआ। वैज्ञानिक चिंतन को बढ़ावा देने के लिए इस युग में विभिन्न धर्मों और संस्कृतियों के विद्वानों के बीच वाद–विवाद और संवाद की परंपरा विकसित हुई। मौसम विज्ञान के क्षेत्र में मानसून पैटर्न और कृषि कैलेंडर का वैज्ञानिक अध्ययन किया गया। इस काल में भारतीय वैज्ञानिकों ने यांत्रिक उपकरणों के निर्माण में महारत हासिल की जिसमें स्वचालित यंत्र और जल उठाव यंत्र (वाटर लिफ्टिंग डिवाइसेस) शामिल थे।

5. आधुनिक काल में भारतीय विज्ञान का पुनरुत्थान

19वीं–20वीं सदी में भारत के आधुनिक वैज्ञानिक जैसे सी.वी. रमन, जे.सी. बोस, मेघनाद साहा, होमी भाभा ने विज्ञान को वैश्विक स्तर पर पहुँचाया। आधुनिक हिंदी विज्ञान लेखन में विज्ञान पत्रिकाओं, लोक विज्ञान आंदोलनों एवं राष्ट्रीय विज्ञान दिवस की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। 19वीं सदी के उत्तरार्ध में भारत में आधुनिक वैज्ञानिक शिक्षा की नींव रखी गई जिसमें कलकत्ता, बंबई और मद्रास विश्वविद्यालयों की स्थापना एक महत्त्वपूर्ण कदम थी। सर जगदीश चंद्र बोस ने 'पादप विज्ञान और बायोफिजिक्स' में अग्रणी शोध किए जिसमें उन्होंने पौधों में जीवन प्रक्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन

किया। सी.वी. रमन ने सन् 1930 में 'रमन प्रभाव' की खोज की जिसके लिए उन्हें भौतिकी का नोबेल पुरस्कार मिला और भारतीय विज्ञान को वैश्विक मान्यता दिलाई। होमी जहांगीर भाभा ने भारत के परमाणु कार्यक्रम की नींव रखी और टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च (TIFR) की स्थापना की। विक्रम साराभाई को भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम का जनक माना जाता है जिन्होंने ISRO की स्थापना में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। सन् 1975 में भारत ने अपना पहला उपग्रह 'आर्यभट्ट' लॉन्च किया जिसने अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी में देश की क्षमताओं का परिचय दिया। डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने मिसाइल प्रौद्योगिकी में अहम योगदान दिया और 'मिसाइल मैन' के रूप में प्रसिद्ध हुए। सन् 1983 में 'इंसैट' (INSAT) श्रृंखला के उपग्रहों ने दूरसंचार और मौसम विज्ञान में क्रांति ला दी। सन् 1991 के आर्थिक सुधारों के बाद भारत में वैज्ञानिक शोध और तकनीकी विकास को नयी गति मिली। सन् 1998 में पोखरण–2 परमाणु परीक्षण ने भारत को परमाणु शक्तिसंपन्न राष्ट्र बना दिया। सन् 2008 में चंद्रयान–1 मिशन के साथ भारत ने चंद्रमा की खोज में महत्त्वपूर्ण उपलब्धि हासिल की। सन् 2013 में मंगलयान (MOM) मिशन की सफलता ने भारत को मंगल ग्रह तक पहुँचने वाला पहला एशियाई देश बना दिया। डॉ. हरगोविंद खुराना को सन् 1968 में चिकित्सा का नोबेल पुरस्कार मिला जिन्होंने 'जीन कोड' की व्याख्या में योगदान दिया। भारत ने सुपर कंप्यूटर 'परम' श्रृंखला विकसित की जिसने वैज्ञानिक गणनाओं में नयी क्षमताएँ प्रदान कीं। आयुष्मान भारत जैसी स्वास्थ्य योजनाओं ने आधुनिक चिकित्सा विज्ञान को जन–जन तक पहुँचाया। भारतीय वैज्ञानिकों ने कोविड–19 महामारी के दौरान वैक्सीन विकसित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। 'स्टार्टअप संस्कृति' और 'मेक इन इंडिया' पहल ने तकनीकी नवाचार को बढ़ावा दिया। भारत ने नैनो टेक्नोलॉजी, क्वांटम कंप्यूटिंग और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस जैसे क्षेत्रों में तेजी से प्रगति की है। 'गगनयान' मिशन के तहत भारत सन् 2025 तक मानव को अंतरिक्ष में भेजने की तैयारी कर रहा है। सौर ऊर्जा और हरित प्रौद्योगिकियों में भारत ने वैश्विक नेतृत्व किया है। डिजिटल इंडिया पहल ने विज्ञान और प्रौद्योगिकी को आम जनता से जोड़ा है। भारतीय वैज्ञानिक अब अंतरराष्ट्रीय सहयोग से CERN और LIGO जैसी परियोजनाओं में योगदान दे रहे हैं। भारत ने सेमीकंडक्टर और इलेक्ट्रॉनिक्स उत्पादन में आत्मनिर्भरता की दिशा में कदम बढ़ाए हैं। युवा वैज्ञानिकों और शोधार्थियों को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार ने 'इनोवेट इंडिया' और 'अटल इनोवेशन मिशन' जैसी योजनाएँ शुरू की हैं। इस प्रकार, आधुनिक काल में भारतीय विज्ञान न केवल पुनर्जीवित हुआ है, बल्कि वैश्विक मंच पर एक नये सशक्त रूप में उभरा है।

6. भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन की समसामयिक स्थिति

भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन की वर्तमान स्थिति एक विरोधाभासी चित्र

प्रस्तुत करती है। एक ओर जहाँ डिजिटल युग और सरकारी पहलों के कारण नये अवसर पैदा हुए हैं, वहीं दूसरी ओर अंग्रेज़ी के वर्चस्व, पारंपरिक प्रकाशनों के संकट और वैज्ञानिक शब्दावली के अभाव जैसी चुनौतियाँ भी मौजूद हैं। डिजिटल माध्यमों, यूट्यूब, पॉडकास्ट और ब्लॉग्स के माध्यम से हिंदी, तमिल, बांग्ला, मराठी आदि भाषाओं में विज्ञान संचार बढ़ा है। विज्ञानम, शंखनाद साइंस और बायोलॉजी जैसे चैनल लाखों दर्शकों तक पहुँच रहे हैं। हिंदी में 'विज्ञान प्रगति', 'संदेश विज्ञान', विज्ञान चेतना जैसी पत्रिकाओं ने वैज्ञानिक सोच के प्रसार में योगदान किया। NCERT, CSIR, ISRO और Vigyan Prasar जैसी संस्थाओं ने हिंदी में विज्ञान संप्रेषण हेतु संसाधन विकसित किए हैं। विज्ञान प्रसार (भारत सरकार) द्वारा हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में विज्ञान पत्रिकाएँ (जैसे 'साइंस रिपोर्टर') प्रकाशित की जाती हैं। 'राष्ट्रीय विज्ञान संचार परिषद' ने भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक लेखन को प्रोत्साहित किया है। सोशल मीडिया जैसे ट्विटर, फेसबुक और इंस्टाग्राम पर #ScienceInHindi जैसे हैशटैग के तहत वैज्ञानिक चर्चाएँ हो रही हैं। उच्च शिक्षा और शोध पत्रों की भाषा अंग्रेज़ी ही बनी हुई है जिससे भारतीय भाषाओं में गुणवत्तापूर्ण विज्ञान सामग्री का अभाव है। कई भाषाओं में आधुनिक विज्ञान की अवधारणाओं (जैसे Quantum Mechanics, Nanotechnology) के लिए मानक शब्द नहीं हैं जो वैज्ञानिक शब्दावली का संकट दर्शाता है। प्रकाशन उद्योग और प्रकाशक अंग्रेजी को प्राथमिकता देते हैं क्योंकि उन्हें हिंदी/क्षेत्रीय भाषाओं में पाठकों की कमी का डर है। पारिश्रमिक की कमी के कारण पेशेवर विज्ञान लेखक भारतीय भाषाओं में कम सक्रिय हैं। गुणवत्ता और शोधपरक सामग्री के अभाव में अक्सर अनुवाद या सरलीकरण के कारण वैज्ञानिक सामग्री की गहराई खो जाती है। यदि भाषाई बाधाओं को दूर करने के साथ–साथ गुणवत्तापूर्ण सामग्री के निर्माण पर ध्यान दिया जाए तो विज्ञान को 'जन–जन तक' पहुँचाने का स्वप्न साकार हो सकता है।

भारतीय ज्ञान परंपरा में विज्ञान लेखन और NEP 2020

नई शिक्षा नीति 2020 में भारतीय ज्ञान परंपरा को विद्यालय और विश्वविद्यालय स्तर पर पुनर्स्थापित करने की पहल की गई है। IKS डिवीजन (AICTE) इस दिशा में शोध और नवाचार को बढ़ावा दे रहा है। NEP 2020 भारतीय ज्ञान परंपरा और आधुनिक विज्ञान के समन्वय पर विशेष बल देता है। नई शिक्षा नीति में मातृभाषा/स्थानीय भाषाओं में विज्ञान शिक्षा को प्रोत्साहन दिया गया है। नीति में भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक शब्दावली विकसित करने की आवश्यकता स्वीकार की गई है। NEP 2020 डिजिटल माध्यमों के जरिये स्थानीय भाषाओं में विज्ञान संचार को प्रोत्साहित करता है। प्राचीन भारतीय गणित और खगोल विज्ञान के योगदान को पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाएगा। नीति में भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन हेतु विशेष अनुवाद

परियोजनाओं का प्रस्ताव है। NEP भारतीय ज्ञान प्रणालियों और आधुनिक विज्ञान के बीच सेतु निर्माण पर जोर देता है। NEP के तहत स्कूल स्तर पर ही बच्चों को भारतीय वैज्ञानिक विरासत से परिचित कराया जाएगा। यह नीति भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक लेखन के माध्यम से ज्ञान के पारंपरिक और आधुनिक स्वरूपों के समन्वय का मार्ग प्रशस्त करती है।

भारतीय ज्ञान परंपरा में जीवन के सभी पहलुओं (भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक) को एक साथ समझने का प्रयास किया गया है। यह परंपरा प्रत्यक्ष अनुभव और प्रयोगों पर आधारित रही है, न कि केवल सैद्धांतिक विवेचन पर। विभिन्न विचारधाराओं और पद्धतियों को साथ लेकर चलने की क्षमता इसकी विशेषता रही है। समस्त ज्ञान का अंतिम लक्ष्य मानव कल्याण और सामाजिक उन्नति रहा है। विचार–विमर्श और तार्किक चर्चा के माध्यम से ज्ञान को परिष्कृत करने की प्रथा रही है। सैद्धांतिक ज्ञान को व्यावहारिक जीवन में उतारने पर विशेष बल दिया गया तथा सभी प्रकार के ज्ञान को नैतिक मूल्यों से जोड़कर देखा गया है। 'आयुर्वेद चरक' और 'सुश्रुत संहिता' में चिकित्सा विज्ञान के सिद्धांत आधुनिक चिकित्सा पद्धति से कहीं आगे थे। आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य ने शून्य, दशमलव प्रणाली और ग्रहों की गति के सिद्धांत दिए। योग विज्ञान, पतंजलि के योगसूत्र में मनोविज्ञान और शारीरिक स्वास्थ्य का वैज्ञानिक विवेचन मिलता है। प्राचीन मंदिरों की संरचना और धातु विज्ञान में उन्नत तकनीकों का प्रयोग हुआ है। 'मीनाक्षी मंदिर' की मूर्तियों का सुव्यवस्थित डिज़ाइन 'स्वर्ण अनुपात' (Golden Ratio–1.618) और सुसंगत (Coherent) है अर्थात् वे तार्किक और सौंदर्यपूर्ण रूप से व्यवस्थित हैं। सभी मूर्तियों की सतह उत्तल (Convex) हैं, जिससे ध्वनि का उचित प्रसार (Diffusion) होता है। समानांतर दीवारें (Parallel Walls) समानांतरता स्थिर तरंगें (Standing Waves) उत्पन्न करती हैं, जो गूँज (Echoes) का निर्माण करती हैं। स्तंभों पर मूर्तियों को यादृच्छिक रूप (Random Distribution) में स्थापित किया गया है ताकि समानता (Symmetry) और समानांतरता (Parallelism) को रोका जा सके।

भारतीय ज्ञान परंपरा की यह वैज्ञानिक यात्रा हमें सिखाती है कि प्राचीन और आधुनिक के बीच कोई विरोधाभास नहीं है। जब हम आर्यभट्ट के खगोल सिद्धांतों को जेम्स वेब टेलीस्कोप के नवीनतम अवलोकनों के साथ जोड़कर देखते हैं तो एक अद्भुत सामंजस्य दिखाई देता है। भारतीय ज्ञान परंपरा केवल अतीत की धरोहर नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए प्रेरणा–स्रोत है। वेदों, उपनिषदों, पुराणों, ज्योतिष शास्त्र, आयुर्वेद, योग और गणितीय सिद्धांतों में निहित वैज्ञानिक चिंतन ने न केवल भारतीय समाज को प्रभावित किया, बल्कि विश्व को नवीन दिशा भी दी है। आधुनिक

युग में जहाँ विज्ञान और प्रौद्योगिकी का वर्चस्व है, वहीं भारतीय ज्ञान परंपरा के वैज्ञानिक आयामों को पुनर्परिभाषित करने की आवश्यकता है। आज आवश्यकता है कि हम अपनी परंपरा को समझकर वैज्ञानिक दृष्टि को पुनर्स्थापित करें और भारतीय भाषाओं में गुणवत्तापूर्ण विज्ञान लेखन को प्रोत्साहित करें।

संदर्भ सूची

1. विद्यानिवास भट्टाचार्य, भारतीय ज्ञान परंपरा, किताबघर प्रकाशन, 2010
2. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, 1956
3. हजारीप्रसाद द्विवेदी, भारतीय, साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, 2006
4. वासुदेव अग्रवाल, पाणिनि का व्याकरण और कंप्यूटर विज्ञान, ग्रंथ अकादमी, 2005.
5. बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन और आधुनिक विज्ञान मनोज पब्लिकेशन्स, 2008.
6. Bibhutibhushan Datta, and Avadhesh Narayan Singh, History of Hindu Mathematics. Asia Publishing House, 1962.
7. G. Jan Meulenbeld, A History of Indian Medical Literature. Brill, 1999.
8. Amartya Sen, The Argumentative Indian: Writings on Indian History, Culture and Identity, Penguin Books, 2005-

Journal Articles

9. Debiprasad Chattopadhyay, "Science and Society in Ancient India." Social Scientist, vol. 8, no. 7, 1980, pp. 3.20.
10. B. V. Subbarayappa, "The Roots of Ancient Indian Science." Indian Journal of History of Science, vol. 34, no. 1, 1999, pp. 1.20.

Online Resources

11. भारतीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी का इतिहास– डी. चट्टोपाध्याय
12. Indian National Science Academy (INSA) Digital Library.
13. IKS Portal. https://iksindia.org.
14. Ministry of Education, Government of India. Indian Knowledge Systems in the NEP 2020, 2020, www.education.gov.in/iks-nep. Ac cessed 12 Nov. 2023

❑❑❑

भारतीय ज्ञान परंपरा और जैन ग्रंथों की विज्ञान–विशिष्ट धारणाएँ

✍ डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

विज्ञान मनुष्य के अपने परिवेशजन्य अनुभवों के भंडार का पर्याय होता है। भाषा की तरह ही ज्ञान लिखित (ग्रंथमय), मौखिक (श्रुत स्वरूप) और सांकेतिक रूप में होता है। ज्ञान ही शास्त्ररूप में निबद्ध होता है और हर शास्त्र में पूर्ववर्ती मतों का यत्किंचित उल्लेख होता है। कभी शास्त्रकार यह प्रतिज्ञा करता था कि वह अपने शास्त्र की रचना में पूर्वाचार्यों के बनाए ग्रंथों और मतों को भी ग्रहण कर रहा है– *पूर्वाचार्यग्रंथा नोत्सृष्टाः कुर्वता मया शास्त्रम्।* और यह भी कहता था कि उसके शास्त्र को प्रयत्नपूर्वक देखकर जैसा अच्छा लगे, उसको ग्रहण करना चाहिए– *तानवलोक्येदं च प्रयतध्वं कामतः सुजनाः।* (बृहत्संहिता 106, 2) जिस आचार्य वराहमिहिर ने यह बात कही, उसने अपने जीवनकाल में पूर्ववर्ती ग्रंथों के सार को अनेकत्र उद्धृत किया है। संयोग से यवनादि विचारों सहित वह जैन विद्वानों और प्राकृतभाषायी ग्रंथों की मान्यताओं को भी देता है। विभिन्न शास्त्रों की रूपरेखाएँ और विशद् वर्णन हमें प्राकृत भाषायी ग्रंथों में उपलब्ध होता है और यह इतिहास तथा पुरातत्त्व के अध्ययन के लिए प्रमाण की तरह उपयोगी सिद्ध होता है। यहाँ कुछ संक्षेप में विमर्श किया जा रहा है।

इतिहास और अन्य शास्त्र

प्रचलित मान्यताओं में नाट्यशास्त्र को पाँचवाँ वेद कहा गया है जबकि जैन शास्त्रों में इतिहास को पाँचवाँ वेद बताया गया है– इतिहासपंचमाणं। (कल्पसूत्र 9) इसके अतिरिक्त षडंग, षष्ठितंत्र, सांख्य, गणित, आचारशास्त्र, व्याकरण, छंद, व्युत्पत्तिशास्त्र, ज्योतिषचक्र, अन्य अनेक ब्राह्मण संबंधी एवं परिव्राजकशास्त्र भारतीय ज्ञान परंपरा के आद्य स्वरूप को रेखांकित करते हैं। (कल्पसूत्र)

स्वप्नशास्त्र

धर्मों की मान्यता के मूल में स्वप्नों की बड़ी भूमिका रही है। इस विद्या पर आधारित स्वप्नशास्त्र के सूत्र हमें कल्पसूत्र से प्राप्त होते हैं। कुल 14 स्वप्नों की मान्यता है– 1. हस्ती, 2. वृषभ, 3. सिंह, 4. लक्ष्मीदेवी का अभिषेक, 5. पुष्पमाला, 6. चंद्रमा, 7. सूर्य, 8. ध्वजा, 9. कुंभ, 10. पद्मसरोवर, 11. सागर, 12. देव विमान अथवा

भवन, 13. रत्नराशि और 14. निर्धूम अग्नि–

गय वसह सीह अभिसेय दाम ससि दिणयरं झयं कुंभं।
पउमसर सागर विमाण भवण रयणुच्चय सिहिं च।। (कल्पसूत्र 5)

सपनों के फलाफल के विषय में जैसी मान्यताओं का विकास हुआ, उनके आधार पर संहिता विषयक ग्रंथों में हमें स्वप्नाध्याय मिलते हैं– विशेषकर यात्राग्रंथों में। वराहमिहिर के तीनों यात्रा ग्रंथों– लघुयात्रा, योगयात्रा और बृहद्यात्रा में स्वप्नाध्याय अथवा स्वप्न विषयक श्लोक मिलते हैं। सपनों की सूचियाँ और उनके फलाफल कथन हमें लगभग 100 मुहूर्त विषयक ग्रंथों और भविष्यादि पुराण में मिल जाते हैं। यदि नृशास्त्रियों की मान्यताओं पर विश्वास किया जाए तो वे सपनों को धार्मिक विश्वासों के आधार के रूप में भी रेखांकित करते हैं। जगदेव का स्वप्न शास्त्र भी उपलब्ध है। स्वप्न कमलाकर नामक ग्रंथ और उस पर मेघविजय की व्याख्या उपलब्ध है जिसमें चार प्रकार के स्वप्न बताए गए हैं– दैविक कार्य सूचक, शुभ और अशुभ स्वप्न तथा मिश्र स्वप्न। इसमें आयुर्वेद के अनुसार होने वाले सपनों पर विचार इसको वैज्ञानिक रीति का प्रतिपादक सिद्ध करता है– *स्वप्नं चतुर्विधं प्रोक्तं दैविकं कार्यसूचकम। द्वितीयं तु शुभस्वप्नं तृतीयमशुभं तथा।। मिश्रं तुरीयमाख्यातं मुनिपुंगव कोटिभिः। यस्य चित्तं स्थिरीभूतं समधातुश्च यो नरः। तत्प्रार्थितं च बहुशः स्वप्ने कार्यं प्रश्यते।।* (स्वप्न कमलाकर 1, 3–4; 2, 2)

पूर्वभव शास्त्र

विश्व की सभी संस्कृतियों में पूर्वजन्म और पुनर्जन्म की मान्यताएँ विविध रूपों में रही हैं। ये मान्यताएँ मिस्र में अपनी तरह से रहीं तो यूनान, मेसोपोटामिया की अपनी धारणाएँ थीं। भारत में पूर्वजन्म और पुनर्जन्म की धारणाएँ आचरण के साथ–साथ जुड़ी होने से धार्मिक विश्वास कही जाती हैं। जैन और बौद्ध ही नहीं, हिंदू मत में भी जन्म–जन्मान्तर को लेकर विश्वास ही नहीं रहे बल्कि शरीर पर विद्यमान लांछन से पूर्वजन्म का अनुमान करने और जीवनचर्या के आधार पर पुनर्जन्म पर विचार करने की मान्यताएँ भी रही हैं। इनके सूत्र हमें संस्कृति के उषःकाल में ही देखने को मिलते हैं। इसी कारण ये धर्मों में उच्चस्तरीय चिंतन की प्राचीनता को इंगित करते हैं। सामुद्रिक शास्त्र जिसके अनेक सोपान जैन शास्त्रों में मिलते हैं, कहता है–

पूर्वभवान्तरजनितं शुभमशुभमिहापि लक्ष्यते येन।
पुरुषस्त्रीणां सद्भिर्निगद्यते लक्षणं तदिह।। (सामुद्रिकतिलक 1, 15)

अर्थात्– जिनसे जन्म–जन्मांतरों में अर्जित शुभ–अशुभत्व का बोध होता है, उनको विद्वानों ने स्त्री–पुरुष के लक्षण माना है। ये लक्षण दो प्रकार के होते हैं– 1. बाह्यलक्षण और 2. आभ्यंतर लक्षण। इनमें से वर्ण एवं स्वर को बाह्य तथा प्रकृति एवं सत्त्व आदि को आंतरिक लक्षण माना जाता है। जैन मत में विद्यमान पूर्वभव और परभव की धारणाओं के आधार पर हम ज्ञान परंपरा की प्राचीनता पर विचार कर सकते हैं।

अन्तगड़दशासुत्त में *अणेगभवसयसहस्यसंचियं कम्मं* वचन से जन्म–जन्मांतर में संचित कर्मों का उल्लेख बताता है कि ऐसी मान्यताओं का अपना लौकिक शास्त्र रहा है जो यह प्रेरणा देता है कि कैसे उन कर्मों की संपूर्ण निर्जरा हो सकती है। (अन्तगड़दशा. 3, 8, 21) यह वैज्ञानिकों को भी इस दिशा में चिंतन और शोध करने की प्रेरणा देता है। यह विचारणीय है–

– *कडाण कम्माण ण मोक्ख अत्थि*– किए गए कर्मों को भोगे बिना मोक्ष संभव नहीं है।

– जीव अपने द्वारा किए कर्मानुसार ही सुख–दुःख को भोगता है, परकृत या उभयकृत नहीं– *जीवा सयं कडं दुक्खं वेदेइ, नो परकडं, नो तदुभयं कडं, दुक्खं वेदेइ।* (भगवती सूत्र)

– भव या जन्म एकाधिक होते हैं– मरीचि का जीव छब्बीसवें भव में कैसे वर्धमान हुआ? यह ज्ञान किस शास्त्रीय आधार पर संभव होता है? यह विचारणीय है। (कल्पसूत्र 2) इसी प्रकार आवश्यक निर्युक्ति, आवश्यक चूर्णि, त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र, महावीर चरियं और कल्पसूत्र की टीकाओं में 27 पूर्वभवों और गुणभद्र रचित 'उत्तरपुराण' में 33 भवों का निरूपण मिलता है।

– पूर्ववर्ती जन्म के लक्षण देह पर होते हैं अथवा शारीरिक लक्षणों के आधार पर पूर्वजन्म का अनुमान किया जाता है, यह विचित्र किंतु शास्त्रीय स्वीकारोक्ति लिए है।

सामुद्रिक शास्त्र

इसी प्रकार सामुद्रिक शास्त्र का नाम लिया जा सकता है जिसका प्रारंभिक विकास हमें जैन मान्यताओं पर आधारित प्रतीत होता है। 'हस्तसंजीवन', 'हस्तकाण्ड' और कर लक्खन में हस्तरेखाओं का विवरण ज्योतिषसम्मत रूप से विवेचित है तो विवेक विलास आदि में सामुद्रिकशास्त्र की मान्यताएँ विस्तार से आई हैं।

हस्तकाण्ड श्रीचंद्राचार्य के शिष्य पार्श्वचंद्रसूरि द्वारा विरचित है जिसको केवली भगवान का कहा बताया गया है और उससे सभी प्राणियों के विषय में जाना जा सकता है– *वर्धमानं जिनं नत्वा ज्ञानं केवलिभाषितम। सुबोधं सर्वजन्तूनां सद्यः प्रत्ययकारकम।।* (हस्तकाण्ड 1) इसमें लाभ–अलाभ, सुख, दुःख, जीवन–मरण, जय–पराजय, राज्यपतन, वर्ण–धर्म, दशाभेद, दिनादि काल निर्णय, अर्घकाण्ड, स्त्रीगर्भ, गमनागमन, वृष्टि, शल्योद्धार तथा वय विषयक प्रश्नों पर विचार किया गया है– *लाभालाभं सुखं दुखं जीवितं मरणं तथा। जयं पराजयं चैव भूभङ्गमथ चिंतितम्।। वर्णधर्मदशाभेदा दिनादिकालनिर्णयम्। अर्घकाण्डं तथा स्त्रीणां गर्भापत्यस्य लक्षणम्।। गमनागमनं वृष्टिं शल्योद्धारं तथैव च। प्रश्ना वयोऽन्ते मध्यस्थाः स्वानुभूताश्च नान्यथा।।* (उपर्युक्त 3–5)

इसी प्रकार 'अर्हच्चूडामणिसार' ग्रंथ भद्रबाहुस्वामी विरचित माना गया है। इसको ज्ञानदीप भी कहा गया है– *नमिऊण जिणं सुरगण चूडामणि किरणसोहि पयजुगलं।*

इय चूडामणिसारं कहिय मह्य जाणदीवक्खं।। (अर्हच्चूडामणि. 1) इसमें प्रथम, तृतीय, सप्तम और नवम ये चार स्वर तथा वर्गों के अनुसार प्रत्येक वर्ग का पहला व तीसरा वर्ण आलिंगित, सुभग, उत्तर तथा संकट बताया गया है। द्वितीय, चतुर्थ, अष्टम तथा दशम ये चार स्वर और वर्गों के अनुसार अभिधूमित, मध्य, अधर तथा विकट नाम बताए गए हैं। पाँचवाँ, छठा, ग्यारहवाँ तथा बारहवाँ ये स्वर तथा वर्गों के अनुसार पाँचवाँ वर्ण दग्ध, विकट, संकट, अधराधर तथा अशुभ बताया गया है। इसी आधार पर प्रश्नों के उत्तर देने की विधियों का निर्धारण किया गया है। यह ग्रंथ कुल 73 गाथाओं में निबद्ध है।

केवलीभाषित जयचर्या

यह ग्रंथ 'नरपति जयचर्या' के नाम से भी प्रसिद्ध है। इसको राजाओं के हित में रणप्रयाण तथा विजय प्राप्ति के उद्देश्य से लिखा गया है। इसमें स्वर, भूमि, वर्णादि के लक्षणों के आधार पर जयाजय पर विचार हुआ है। लगभग 1230 ई. के आसपास हुए भुवनदेवाचार्य कृत 'अपराजितपृच्छा' नामक ग्रंथ में इसका उल्लेख होने से यह पर्याप्त प्राचीन ज्ञात होता है।

स्वरोदय शास्त्र

इसको स्वरशास्त्र भी कहा गया है। इसे निमित्त शास्त्र की तृतीय शाखा के अंतर्गत माना गया है। लोकभाषा में इसको सरोदो भी कहा जाता है। इसमें नासिका में संचालित श्वासोश्वास की परीक्षा करके लाभालाभ, जयाजय आदि पर विचार किया गया है। विवेकविलास में इसका विस्तार से वर्णन हुआ है। यह 'गरुड़पुराण' में पवन विजय स्वरोदय के नाम से मिलता है और अन्यत्र शिव स्वरोदय के नाम से ज्ञेय है। जैन मुनियों ने इसका अनुभवरूप में विकास किया है।

शकुन शास्त्र

शकुन या निमित्त शास्त्र की सुदीर्घ परंपरा रही है। वराहमिहिर (587 ई.) ने कहा है कि शक्र, शुक्र, बृहस्पति–वागीश, कपिष्ठल, गरुड़, ऋषभ, भागुरि, देवल, भरद्वाज और अवन्ति के राजा श्रीद्रव्यवर्धन ने शकुन शास्त्र का प्रणयन किया है। शकुन विचार संस्कृत ही नहीं, प्राकृत भाषा में भी निबद्ध है। (बृहत्संहिता 86, 1–4) इस विद्या पर वसंतराज नामक ग्रंथ और उस पर गणि भानुचंद्रकृत टीका मिलती है, जिसकी रचना 1585 ई. के आसपास राजस्थान के सिरोही जिले के सारणेश्वरतीर्थ में हुई– *अर्बुदाद्रिसमीपस्थं सारणेश्वरशोभितम्। सीरोहीनगरं तत्र तिलकं नगरीषु यत्।।* (वसंतराज. टीका 1, 12) ज्योतिर्विद श्रीधर जटाशंकर ने इसका ब्रजभाषानुवाद सहित संपादन किया है और खेमराज श्रीकृष्णदास, मुंबई से इसका प्रकाशन करवाया है।

इसमें कुल 20 वर्ग या प्रकरण हैं। यथा– 1. शकुन की श्लाघा व उपदेश, 2. शास्त्रसंग्रह और वर्गानुक्रम, 3. अभ्यर्चन नामक पूजन, 4. मिश्रित वर्ग में अनेक शकुन भेद, 5. शुभाशुभ नामक वर्ग, 6. मनुष्य के शकुन, 7. पोदकी के शकुन, 8. पक्षी विचार,

9. चाष नामक नीलकंठ के शकुन, 10. खंजन शकुन, 11. मल्लारी के शकुन, 12. कौआ के शकुन, 13. पिंगलिका के शकुन, 14. चार पावन के जीवन के शकुन, 15. भ्रमरादिक शकुन, 16. लाल–काली कीड़ी के शकुन, 17. पल्ली या छिपकली के शकुन, 18. श्वान के शकुन, 19. शिवा शृगाली के शकुन, 20. शास्त्र के प्रभाव का वर्णन। जैन ग्रंथों में शकुन मान्यताओं का प्रभाव देखने को मिलता है। न केवल तीर्थंकरों के चरित अपितु शाहों के चरित में भी शकुन विचार मिलते हैं।

गंधयुक्ति शास्त्र

यह सुगंधविधि के रूप में भी ज्ञेय है। यह ईश्वर नामक किसी प्राकृत भाषा के कवि की रचना रही है। वराहमिहिर के टीकाकार उत्पल भट्ट ने इस ग्रंथ का उदाहरण दिया है और कहा है कि धूपादि के लिए द्रव्यों का मिश्रण किया जाना चाहिए। इसमें कहा गया है कि सुगंध के लिए आर्द्र वस्तु में यदि आर्द्र वस्तु को मिलाया जाए तो उसका नाम वेध और चूर्ण में चूर्ण मिलाया जाए तो उसको बोध कहा जाता है–

ओल्लंमि ओल्लओ जो दिज्जइ वेह इति सो भणिओ।
वोहो उण जो चुण्णो चुण्णविणि अच्छगन्धो सो।। (बृहत्संहिता 74, 11)

अंग विद्या

'अंगविद्या' अथवा 'अंगविज्जा' नामक एक प्राकृत भाषा का ग्रंथ प्राप्त है जो कुषाण और गुप्तयुग के संधिकाल का ज्ञात होता है। इस ग्रंथ से ज्ञात होता है कि शरीर के लक्षणों से अथवा अन्य प्रकार के निमित्त या चिह्नों से किसी के लिए शुभाशुभ फल–कथन इस विद्या का विषय था। इस विद्या के सूत्र हमें पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' में भी मिलते हैं। ऋगयनादि गण में अंगविद्या, उत्पात, संवत्सर, मुहूर्त, निमित्त आदि विषयों पर लिखे जाने वाले व्याख्यान ग्रंथों का उल्लेख मिलता है। (गण. 4, 3, 73)

बौद्धग्रंथ 'दीघनिकाय' में भिक्षुओं के लिए जिन विषयों का अध्ययन वर्जित कहा गया है, उनमें निमित्त, उप्पाद और अंगविज्जा के नाम आए हैं। (ब्रह्मजाल सुत्त) इस विद्या को बताने वाला एकमात्र प्राचीन ग्रंथ जैन साहित्य में 'अंगविज्जा' के नाम से बच गया है जिसकी गणना आगम साहित्य के प्रकीर्णक ग्रंथों में की जाती है, हालाँकि जैन कल्पसूत्र में शुभलक्षण, शुभ व्यंजन और शुभ गुणों का उल्लेख इसी ओर संकेत लगता है। (कल्पसूत्र 8 व अन्य) 'अंगविज्जा' में यह संकेत है कि दृष्टिवाद संज्ञक 12वें अंग में अर्हत् वर्धमान महावीर ने निमित्त ज्ञान बताने वाले विषय का उपदेश किया था– *"चउव्वीसेण अरहया वद्धमाणेण देसियं। णवण्हं गणजेणं बारसंगे सुउत्तमो।। तत्थ बारसमे अंगे दिवाए जिणेण उ। सुयोदधिम्मि पण्णत्तं णिमित्तण्णाणमेव उ।।"* (अंगविज्जा 1, 9–10)

अंगविज्जा में निमित्तों के आठ प्रकार बताए गए हैं– 1. अंग, 2. स्वर, 3. लक्षण, 4. व्यंजन (तिल, मशकादि लांछन), 5. स्वप्न, 6. छिन्न (छींक), 7. भौम (पृथ्वी संबंधी निमित्त) और 8. अंतरिक्ष (आकाश संबंधी निमित्त)– *अणादिणिधनं णाणं सव्वण्णूहिं*

पवेदियं। णिमित्तसंगहे उक्कं अ–धा उ विभज्जए।। अंगं सरो लक्खणं च वंजणं सुविणो तहा। छिण्ण भोम्मंऽतलिक्खाए एमेए अ– आहिया।। एए महानिमित्ता उ अट्ठ– संपरिकित्तिया। एएहिं भावा णज्जंति तीताऽणागय संपया।। एएसिं पवरं णेयं णिमित्तं अंगमेव तु। सव्वसुत्तऽत्थविण्णाणे एवं संपरिकित्तियं।। रूवाणं जधा सव्वेसिं रवी सिद्धो पगासणे। एवं अंग निमित्ताणं सव्वेसिं तु पगासणे।। स्पष्ट है कि इन्हीं महानिमित्तों से अतीत और अनागत के भावों को जानने का प्रयास किया जाता था। इनमें भी अंगविद्या सब निमित्तों की अपेक्षा श्रेष्ठ समझी जाती थी। यह कहा गया है कि जैसे उदित हुआ सूर्य सब रूपों को स्पष्ट दिखा सकता है, वैसे ही अंगविद्या से अन्य समस्त निमित्तों के विषय में बताया जा सकता है। (उपर्युक्त 1, 1–5; तुलनीयः कल्पसूत्र पूर्वानुसार)

इस ग्रंथ में तत्कालीन जनजीवन के अनेक क्षेत्रों से संबंधित लंबी–लंबी शब्द सूचियाँ प्राप्त होती हैं। ये सूचियाँ बौद्ध ग्रंथ महाव्युत्पत्ति की सूचियों की तरह ही अत्यधिक महत्त्व की हैं। डॉ. मोतीचंद ने इन दोनों ग्रंथों का तुलनात्मक दृष्टि से सांस्कृतिक अध्ययन आवश्यक बताया है। 'अंगविज्जा' ग्रंथ में कुल 60 अध्याय हैं। कहीं–कहीं लंबे अध्यायों में पटल नामक अवांतर विभाग हैं। जैसे आठवें अध्याय में विविध विषयक 30 पटल और नौवें अध्याय में 1868 कारिकाएँ हैं और 270 विविध विषयों का निरूपण है। (उपर्युक्त, भूमिका पृष्ठ 46) इसका 37वाँ अध्याय लक्षण संज्ञक है जिसमें बारह प्रकार के लक्षण बताए गए हैं– 1. वर्ण (वण्णो), 2. स्वर (सरो), 3. गति, 4. संस्थान (संठाणं), 5. संघयण (संघतणं, निर्माण), 6. मान या लंबाई (माणं), 7. उम्माण या तोल, 8. सत्त्व (सत्तं), 9. आणुकं (मुखाकृति), 10. पगति (प्रकृति), 11. छाया और 12. सार (सारो)। इनमें से अधिकांश नाम पूर्व में विवेचित किए जा चुके हैं। (अध्याय 37, 1)

अध्याय के अंत में उक्त लक्षणों के फल बताए गए हैं– *तत्थ वण्णसंपन्नस्स फलं ण्हाणा ऽणुलेवणभागी मल्लालंकारभागी सुभगो सुहभागी भवति, वण्णहीणे तेसिं विपत्ति। सरसंपण्णे इस्सरियं इस्सरियसमाणं कित्ति– जससंपण्णं च गहियवक्कं विज्जाभागी य सरसंपण्णे भवति, सरहीणे एतेसिं विवत्ति। गतिसंपण्णे महाजणपरिवारो गणपकड्ढको महापक्खजणसमित्तो य भवति, अगतिसंपण्णे तेसिं विपत्ति। संठाणसम्पण्णे चक्खुरमणतं महाजणपियत्तणं च छायामणोरधसंपत्ती संठाणे भवंति, असंठाणजुत्ते तेसिं विवत्ति।* (अध्याय 37) इसके बाद 38वें अध्याय में शरीर के व्यंजन या तिल, मस्सा आदि चिह्नों के आधार पर शुभाशुभ को बताया गया है। इसमें स्पष्टतः दक्षिणी भाग से पुरुष एवं वामभाग से स्त्रियों के उक्त लांछनों को देखने व फलकथन करने का निर्देश है– *तत्थ दक्खिणतो पुरिसस्स पसत्थं, वामतो इत्थीय। तत्थ दक्खिणेसु पस्सेसु दक्खिणगत्ते वंजणं ति बूया, वामेसु गत्तेसु वामपस्से वंजणं ति बूया।* यही नहीं, कंधे, ग्रीवा, बाहु, उर, आँख, जंघा, कुक्षी आदि पर बने लांछनों के लाभ भी बताए गए हैं– *उद्धं गीवाय रज्जलाभाय, बाहूसु सव्वाधिकरणलाभाय, उरे रायपरिसलंभाय, अक्खिसु णायकलंभाय, थणंतरे धणलंभाय, सामेसु आभरणलंभाय, बज्झेसु जंघासु वा पवासाय, चलेसु जाणलंभाय,*

थीणामेसु थीलंभाय, पुण्णामेसु मणुस्सलंभाय, अंगु– कणेकायं थण हितय कुक्खि पोरिससमामासे सव्वबज्झेसु य अपच्चलंभाय बूया। (उपर्युक्त अध्याय 38)

39वें अध्याय का नाम कण्णावासण है जिसमें कन्या के विवाह एवं उसके जन्म के फलाफल एवं कर्मगति पर विचार है कि वह शुभ होगी या दुष्ट लक्षणों वाली होगी– *सुद्देज्जेसु सुद्दस्स विज्जिस्सति त्ति बूया। महव्वयेसु महव्वयस्य, मज्झिमवयेसु मज्झिमवयस्स, जोव्वणत्थेसु जोव्वणत्थस्स, बालेज्जेसु बालस्स विज्जिस्सति त्ति बूया। अंतेसु विद्धिकरस्स, चलेसु कारुकस्स, कारुकोपकरणेसु य दढेसु वाणियकस्स, इस्सरिएसु इस्सरोपकरणेसु य इस्सरस्स विज्जिस्सति त्ति बूया।* (उपर्युक्त अध्याय 39)

इस प्रकार अंगविज्जा में स्त्री–पुरुष के शरीर के लक्षणों के आधार पर शुभाशुभ फलों का कथन किया गया है। 'कल्पसूत्र' में सुकुमारता, पंचेंद्रियता, गुण सहित मान, उन्मान और प्रमाण से परिपूर्णता को बताया गया है– *सुकुमालपाणिपायं अहीणपडिपुन्नपंचिंदियसरीरं लक्खण वंजण, गुणोववेयं माणुम्माणपमाणपडिपुण्णं सुजायसव्वंगसुंदरंगससिसोमाकारं कंतं पियदसणं सुरूवं देवकुमारोवमं दारयं पयाहिसि।* (कल्पसूत्र 8) यह समस्त विवरण इस दृष्टि से बड़े महत्त्व का है कि पूर्वकाल में अंगविद्या के अंतर्गत निमित्तों के अनुसार पूर्व और उत्तर फलों पर विचार किया जाता था और इस आशय की विद्या बहुत विकसित रूप में समाज के अंतर्गत व्यवहार में थी। इसी का विकास आगे भी निरंतर रहा।

वास्तुविषयक विद्या

वास्तु या शिल्प स्थापत्य विषयक विद्या बहुत पुरानी है। जैनमतानुसार वास्तुविद्या के बीज हमें यति वृषभाचार्य कृत 'तिलोयपण्णत्ती' जैसे ग्रंथ में मिलते हैं। इनमें अकृत्रिम जिनमंदिर, उनके द्वार, बाल जिनेद्र के जन्माभिषेक संबंधी पाण्डुकादि शिला, समवसरण भूमि, उनकी वीथियाँ या मार्ग, सोपान, जिनेन्द्रकूट आदि की लंबाई, चौड़ाई और ऊँचाई आदि का विस्तृत विवरण उल्लेखनीय है– इनका कुछ विशेष कारण भी हो सकता है। यह कारण सर्व पदार्थ यथास्थल और यथाप्रमाण ही होने चाहिए। तिलोयपण्णत्ती के प्रथमाधिकार में मान प्रमाण अनेक ग्रंथों के लिए उपजीव्य रहा है। यथा–

कर्मभूमि के 8 बाल = 1 लीख
8 लीख = 1 जूँ
8 जूँ = एक यव,
8 यव = 1 अंगुल।

इसी प्रकार छह अंगुल का एक पाद होता है। दो पादों की एक वितस्ति, दो वितस्तियों का एक हाथ, दो हाथों का एक रिक्कू, दो रिक्कुओं का एक दंड अर्थात् 4 हाथ अर्थात् 1 धनुष होता है और 2000 दंड या धनुष का एक कोस प्रमाण और चार कोस का एक योजन होता है। (तिलोय. 1, 103–116)

इसी प्रकार 'त्रिलोकसार' में इंद्र भवन, देवसदन, गणिका महत्तरियों के भवनादि का विवरण मिलता है— *पुव्वत्तर दक्खिणदिस तद्दारा अ—वास सोलुदया। मज्झे हरि सिंहासण मडदेवीणासणं पुरदो।।* (त्रिलोक. 516)

इसी प्रकार श्रीचंद्रांगज ठक्कर फेरू का 'वास्तुसार' प्रकरण इस विद्या का प्रतिनिधि प्राकृत ग्रंथ है जो इस विषय की अनेक प्राचीन परंपराओं का समुचित संग्रह है। 'वास्तुसार प्रकरण' के अंतर्गत तीन प्रकरण हैं। गृहलक्षण नामक पहले प्रकरण में 115, बिंबपरीक्षा नामक द्वितीय प्रकरण में 30 और तृतीय प्रासाद प्रकरण में 60 गाथाएँ हैं। कुल मिलाकर तीन प्रकरणों में 205 गाथाएँ लिखी गई हैं—

गेहे पनरहिय सयं, बिंबपरिक्खस्स गाह तीसाइं।
पासाइ सड़्ढि भणियं, पणहिय सय दुन्नि सव्वेव।। (1, 2)

विशुद्धमती माताजी ने इस ग्रंथ पर अपनी विशेष टिप्पणियाँ देकर धरियावद से प्रकाशित करवाया है जबकि प्रस्तुत लेखक ने समीक्षात्मक संस्करण भी तैयार किया है। इसी प्रकार जयसेन स्वामी के 'प्रतिष्ठापाठ', 'प्रतिष्ठासार', आचार दिनकर, 'हीरकलश मुनि', 'श्रावकाचार', नरेंद्रसेन कृत 'प्रतिष्ठादीपक' आदि ग्रंथों में भी वास्तुविद्या का विमर्श मिलता है। यह विद्या मानवीय समाज के लिए हितकारी है और सभी मतादि से अलग लेकिन सबके लिए उपयोगी होने से लोकप्रिय रही है।

अंगविज्जा में वत्थुपाढक (वास्तुपाठक, वास्तुशास्त्र का अभ्यासी), वत्थु वापतिक (वास्तु व्यापृतक, वास्तुकर्म करने वाला), तित्थवापत (घाट आदि बनाने वाला), आरामवावट (बाग—बगीचे का काम करने वाला), कोक (कोठार), अंगण (आंगन या अजिर), अरंजरमूल (जलगृह), गर्भगृह (आभ्यंतरगृह या अंतःपुर), भत्तगिह (भोजनशाला), वच्चगिह (वर्चकुटी या मार्जन गृह), णकूड (नगकूट या क्रीड़ापर्वत), उदकगृह, अग्निगृह, भूमिगृह (भोंहरा), विमान, चत्वर, सन्धि, समर (कामगृह), कडिक तोरण (चटाई या फूँस से बनाया गया अस्थायी तोरण), प्राकार, चरिका (प्राकार के पीछे नगर की ओर की सड़क), वेती (संभवतः वेदिका), गयवारी (गुवाड़ी या गजशाला), संकम (संक्रम या परिखा के ऊपर बनाया गया पुल), वलभी (मंडपिका), रासी (कूड़ी), पंसु (पांशु, धूल), णिद्धमण (पानी का निकास या मोरी), णिकूड (निष्कुट या गृहोद्यान), फलिखा (परिखा), पावीर (संभवतः प्राचीर), पेढिका (पेढ़ी या गद्दी), मोहणगिह (मदनगृह, स्मरशाला), ओसर (अपसरक, कमरे के सामने का दालान, ओसरी या ओसारा), संकड (निश्छिद्र अल्प अवकाश वाला स्थान), ओसधिगिह (औषधशाला), अभ्यंतर परिचरण (पाठांतर परिवरण, परकोटा), बहिरि द्वारशाला, गृहद्वारा बाहा (गृहद्वार का पार्श्वभाग), उवाण जालगिह (उपस्थानशाला जहाँ गवाक्ष जाल बने हुए हों), अच्छणक (आसनगृह या विश्रामस्थल), शिल्पगृह, कर्मगृह, रजतगृह, ओधिगिह (शिकार स्थान का गृह, ओदी, पाठांतर उपगृह), उप्पलगृह (कमलगृह), हिमगिह

आदंस (शीशमहल), तलगिह (तलगृह), आगमगिह (संभवतः आस्थायिका या आस्थानशाला), चतुक्कगिह (चौक), रच्छागिह (रक्षागृह), दंतगिह (हाथीदांत से मंडित कक्ष), कंसगिह (कांसे से मंडित कमरा), पडिकम्मगिह (प्रतिकर्म या धार्मिक कृत्य करने का कक्ष), कंकसाला (विशेष प्रकार का लोहा, उससे बना कमरा), आतपगिह, पणियगिह (पण्यगृह), आसणगिह (आस्थान शाला), भोजनगृह, रसोतीगिह (रसवतीगृह, रसोई), हयगृह, रथगृह, गजगृह, पुष्पगृह, द्यूतगिह, पातवगिह (पादपगृह), खलिणगिह (जहाँ वाहनों की सज्जा का साजसामान संगृहीत हो), बंधनगिह (कारागार), जाणगिह (यानगृह) आदि। (अध्याय 11 आदि)

'अंगविज्जा' में वास्तुविषयक कुछ और शब्द मिलते हैं जो बहुत पुराने हैं और लोक में पर्याप्त प्राचीन काल से व्यवहार में लाए जाते रहे हैं। यथा– भग्गगिह (लिपा पुता, देशीनाममाला 6, 99), सिंघाडक (शृंगाटक, सार्वजनिक चतुष्पथ), रायपथ (राजपथ), द्वार, क्षेत्र, अट्टालक, उदकपथ, वय (व्रज), वप्प (वप्र), फलिहा (परिघ या अर्गला), पउली (प्रतोली, नगर द्वार), अस्समोहणक (अश्वशाला), मंचिका (प्राकार के साथ बने हुए ऊँचे बैठने के स्थान), सोपान, खंभ, अभ्यंतर द्वार, बाहरी द्वार, द्वारशाला, चतुरस्सक (चतुष्क), महाणसगिह (महानसगृह), जलगिह, रयणगिह (रत्नगृह), भांडगिह (भण्डार), ओसहिगिह (औषधिगृह), लतागिह, दगकोक (उदक कोष्ठक), कोसगिह (कोषागार), पाणगिह (पानगृह), वत्थगिह (वस्त्रगृह), जूतशाला (द्यूतशाला), पाणवगिह (पण्य या व्यवहारशाला), लेवण (आलेपन या सुगन्धशाला), उज्जाणगिह (उद्यानगृह), आएसणगिह (आदेशनगृह), मण्डव (मंडप), वेसगिह (वेशगृह, शृंगार स्थान), कोगार (कोठार), पवा (प्रपाशाला), सेतुकंम (सेतुकर्म), जणक (संभवतः जाणक या यानक), ण्हाणगिह (स्नानगृह), आतुरगिह, संसरणगिह (स्मृतिगृह), संकशाला (शुल्कशाला), करणशाला (अधिष्ठान या राजकीय कार्यालय) और परोहड (घर का पिछवाड़ा)। (उपर्युक्त) यह अध्याय इस अर्थ में महत्त्वपूर्ण है कि उसमें लोक से गृहभेद की जानकारी लेने का निर्देश किया गया है और यह इस विद्या का पर्याप्त प्राचीन ग्रंथ सिद्ध करता है।

चित्रशास्त्र:

चित्र जैसी कला पर आधारित शास्त्र जिसमें प्राणीमात्र के चित्रों की लिखने की कला हो, चित्रशास्त्र कहा जाता है। इसका विकास हमें यशोधर द्वारा कामसूत्र की टीका में मिलता है जिसमें षडंग या छह अंगों की सूचनाएँ मिलती हैं। इससे संबंधित पेशों की सूचनाएँ हमें अंगविज्जा में मिलती हैं। यथा: अलित्तकार (आलता बनाने वाला), रत्तरज्जक (लाल रंग की रंगाई का विशेषज्ञ), चित्तकार (चित्रकार), चित्तवाजी (चित्र वाद्य जानने वाला)। (अध्याय 28) चित्तगिह या चित्रशाला जहाँ चित्रों की रचना होती हैं।

मुद्राशास्त्र

मानव ने जबसे वस्तुओं का लेन–देन आरंभ किया, तबसे लेने के बदले में देने का चलन हुआ होगा। बहुत बाद में वस्तु विनिमय और फिर मुद्राओं और सिक्कों का उपयोग आरंभ हुआ होगा। इनको नाणा भी कहा जाता है। ये मुद्राएँ मृण्मय, धात्वंश और रत्नांश के रूप में रही होंगी। चाणक्य ने रूपसंदर्श के नाम से मुद्रा की पहचान ही नहीं, निर्माण और परीक्षण का मत दिया है। हमें यह ज्ञात रहना चाहिए कि जैन ग्रंथों में मुद्राविषयक शास्त्र का सम्यक् संकेत मिलता है। 'अंगविज्जा' में अनेक मुद्राओं के नाम आए हैं जो पुरातात्विक प्रमाणों की पहचान के लिए बहुत उपयोगी हैं। यही नहीं, उन नामों की तुलना 'मनुस्मृति', 'अर्थशास्त्र', 'बृहस्पति स्मृति', 'हरिवंश' आदि से की जा सकती है।

'अंगविज्जा' में कोई 22 प्रकार की मुद्राओं का वर्णन मिलता है। ये गुप्तकाल तक विद्यमान रही हैं। ये उत्तम, मध्यम और जघन्य तीनों रूपों में प्रचलन में रही हैं और जैनागमों में पुरातन व्यापार प्रसंगों की स्मृति को स्पष्ट करती हैं। यथा– सुवण्ण मासक (सुवर्ण माषक), रयय मासक (रजत माषक), दीणार मासक (दीनार माषक), णाण मासक (नाणक माषक), काहापण (कार्षापण), खत्तपक (क्षत्रपक), पुराण, सतेरक (एक ग्रीक मुद्रा स्टेटर जिसका भारत में प्रचलन था), सुवण्ण काकणी, मासक काकणी, सुवण्ण गुंज, दीणारि, आदिमूल काहावण जिसे पुराण भी कहा जाता है, उत्तम काहावण, मज्झिम काहावण, जहण्ण काहावण, बाल काहावण, णाणक, मासक, अद्धमासक, काकणि और आदि। जैसा कि कहा गया है–

सुवण्णमासको व त्ति तहा रयय मासओ।
दीणारमासको व त्ति तधो णाणं च मासको।।
कहापणो खत्तपको पुराणो त्ति व जो वदे।
सतेरको त्ति तं सव्वं पुण्णामसममादिसे।।
सुवण्णकाकणी व त्ति तधा मासककाकणी।
तधा सुवण्णगुंज त्ति दीणारि त्ति व जो वदे।। (अंग. 9, 185–186 व 366)

हमें उक्त ग्रंथ और गुप्तकालीन मुद्राओं तथा अभिलेखों से ज्ञात से होता है कि तब रत्ती के तौल से इन मुद्राओं का निर्माण किया जाता था। तब टकसालें कैसी होती थीं, यह विचारणीय है और यह अनुमान किया जा सकता है कि यह परंपरा मध्यकाल तक अधिक बदली नहीं होगी। इनमें से काहापण या कार्षापण बहुत प्राचीन काल में प्रचलन में था, जैसा कि पाणिनि ने भी संकेत दिया है। इसमें तांबे का प्रयोग होता था। पंचमार्क सिक्कों को माषक के रूप में पहचाना गया है। इसी आधार पर ठक्कर फेरू ने नवीन ग्रंथ का प्रणयन किया है जिसमें चाशनी के आधार पर सिक्कों की शुद्धता और इस आधार पर राज्य की अर्थव्यवस्था के स्तर को पहचाना जाता था। रुद्रदामन का 'रुद्रदामकादि' सिक्का दाम के नामकरण का परिचायक हो सकता है। बौद्ध ग्रंथों

में भी इन सिक्कों के ये ही नाम मिलते हैं– समन्तपासादिका, सुत्तविभंग, विनयपिटक आदि के संदर्भ इस दृष्टि से ज्ञेय हैं। दीनार मुद्रा रोमन देनरिअस का पर्याय है जो 269–268 ई. पू. में प्रचलन में रही जिसका वास्तविक भार 70 जीआरएस था। नाणक को बृहत्कल्पसूत्र भाष्य में तांबे की मुद्रा कहा गया है। (बृहत्कल्प. कारिका 2, 1969)

तिर्यग्योनिशास्त्र

इस कोटि का शास्त्र हमें चौपायों, पक्षियों, जलचर, परिसर्प, स्थलचर परिसर्प आदि प्राणियों के विषय में जानकारी देता है। अंगविद्या में इस शास्त्र के पुरुष, स्त्री एवं नपुंसक भेदों पर चर्चा है। निश्चित ही यह एक विशद शास्त्र रहा है और इसमें मत्स्यशास्त्र और सर्पशास्त्र की सूचनाएँ भी मिलती हैं– ये वर्तमान में अध्ययन के योग्य अनुशासन के रूप में स्थापित हैं जबकि इन पर विशेष अनुसंधान की आवश्यकता है। ऐसा लगता है कि कुषाणकाल में इस विद्या पर विशेष चर्चा शुरू हो गई थी, जैन सूत्र इसकी पुष्टि करते हैं। पशु–पक्षियों पर गहन अध्ययन और उनको लिपिबद्ध करने का प्रयास मध्यकाल में हुआ जबकि हंसमुनि ने 'मृगपक्षिशास्त्र' का प्रणयन किया। इसमें आखेट को अमानवीय बताकर प्राणीमात्र को जीवनदान का मत प्रतिपादित किया गया है। यह जैन ग्रंथ की एक विशेषता है।

मृगपक्षिशास्त्र का संस्कृत भाषाधारित पाठ हमें मिल चुका है और उसके अनुवाद का कार्य शेष है। इसका अंग्रेजी और मराठी अनुवाद हो चुका है। इसका आरंभ इस प्रकार हुआ है– जिनशासनम। हंसदेवविरचितं मृगपक्षिशास्त्रम। भरतखंडस्य नानाविध मृगपक्षि जातिस्वरूप निर्णयात्मकम। मूलम। तत्र प्रथमो भागः नानाविधः मृगजाति स्वरूपादि वर्णनात्मकः। कवे पूर्वपीठिका। *इसकी समापन पुष्पिका है– इति मण्डकग्रामवासिना श्रीहंसदेवेन विरचिते मृगपक्षिशास्त्रे नानाविधपक्षिजाति स्वरूपादि वर्णनं नाम द्वितीयो भागः।।*

गुल्मवृक्षविद्या

अर्थशास्त्र में वृक्षगुल्मायुर्वेद का उल्लेख मिलता है और उसका एक अध्यायरूप 'बृहत्संहिता' में उपलब्ध होता है। इस विद्या में गुल्म, झाड़ी, झाड़, लता, वृक्षादि वनस्पतियों, उनके अंगों, उपयोग, उनके वात, पित्त, कफादि होने पर उपचार आदि के विषय में विवेचन मिलता है। सस्यवेद में यही वर्णन आया है। इसके अतिरिक्त जल, उत्तम वृष्टि और सस्यसंपत्ति के विषय में सूचनाएँ मिलती हैं। 'अंगविज्जा' में पद्म, उत्पल, पुष्प, फल, कंदमूल, तैल, घृतादि, वृष्टि, स्तनित, मेघगर्जित, विद्युत आदि का विवरण मिलता है।

वृष्टिविषयक विद्या

इसमें बरसात, बादल और उनके वर्ण, आकाशीय गतिविधियों का वर्णन मिलता है। यही आगे चलकर जल विषयक विद्या की बुनियाद डालते हैं। प्राकृत में डंक–भाडली नामक मेघशास्त्री के वचन मिलते हैं। 'वर्षप्रबोध' जैसे जैन ग्रंथ में इस

विद्या का विकसित रूप मिलता है।

भोजन शास्त्र

इसे पाकशास्त्र भी कहा जाता है। हमें नलकृत पाकशास्त्र और सूपशास्त्र मिलते हैं। इनमें भोजन और आपान निर्माण तथा उनके उपयोग की जानकारियाँ मिलती हैं। भूलोकमल्ल सोमेश्वर ने मानसोल्लास में भोजन के अंतर्गत आमिष, निरामिष दोनों ही प्रकार के भोजनों का विशेष विवरण दिया है। जैन शास्त्रों, विशेषकर व्रतादि संग्रहों में ग्रहणयोग्य भोज्य–सामग्री का वर्णन मिलता है।

परिधान शास्त्र

'नाट्यशास्त्र' में जिस तरह विभिन्न परिधानों का उल्लेख है, वैसे ही 'अंगविज्जा' में अनेक प्रकार के वस्त्रों का विवरण मिलता है। यथा– पटशाटक, क्षौम, दुकूल, चीनांशुक, चीनपट्ट, प्रावार, शाटक, श्वेत शाट, कौशेय और अनेक प्रकार के कंबलों का प्रकार आदि। पहनने योग्य वस्त्रों में उत्तरीय, उष्णीष, कंचुक, वारबाण, सन्नाह पट्ट, विताणक और पच्छत सहित मल्लसाडक के नाम मिलते हैं। पच्छत संभवतः पीछौरी या पछेवड़ा था जो पीठ पर डालकर सामने की ओर छाती पर गठिया दी जाती थी।

अलंकरण शास्त्र

यह शास्त्र स्त्री–पुरुष के गहनों की जानकारी देता था। गहनों के भेद हमें नाट्यशास्त्र, मानसोल्लास, उज्ज्वलनीलमणि आदि में भी मिलते हैं। अंगविज्जा में अनेक गहनों के नाम मिलते हैं। यथा– किरीट और मुकुट, सिंहभंडक, गरुडक, मगरक या मकरिका, सीमंत मकरिका, वृषभक, चक्रकमिथुनक, खडुवे, णिडालमासक, तिलक, मुहफलक, विशेषक, कुण्डल, तालपत्र, कर्णापीड, कर्णफूल, कान की कील, कर्णलोढक, केयूर, तलव, आमेढक़, पारिहार्य, वलय, हस्तकलापक, हार, अर्धहार, फलहार, वैकक्षक, ग्रैवेयक, सूत्रक, स्वर्णसूत्र, स्वस्तिक, श्रीवत्स, अष्टमंगल, पाएढक, पादकलापक, पादमासक, पादजाल या पायल, बाहुजालक, उरुजालक, सरजालक आदि प्रमुख है। इनका अलग–अलग परिचय ग्रंथांतरों में देखा जा सकता है। अलंकरण भूमि, भित्ति और देहादि के होते हैं।

शय्यासन विद्या

इस विद्या में चारपाई, पर्यंक–पलंग जैसे शयन और सिंहासनादि आसनों का वर्णन मिलता है। अंगविज्जा से विदित होता है कि अपाश्रय विद्या के अंतर्गत ऐसी वस्तुओं की गणना की जाती थी जिसका अर्थ आश्रय या आधारस्वरूप वस्तुओं से है। लागत और मूल्य के अनुसार आसन कई प्रकार के होते हैं– सस्ते (समग्घ), महँगे (महग्घ), सामान्य मूल्य वाले (तुल्लग्घ) ही नहीं, एक स्थान पर रखे जाने वाले (एकान), इधर–उधर रखे जाने योग्य (चलित), दुर्बल और बली। वराहमिहिर ने भी शय्यासनों का वर्णन किया है। 'विश्वकर्मशास्त्र' या 'विश्वकर्माप्रकाश' में भी यह विवरण मिलता

है। इनका मुख्य स्रोत अंगविज्जा ग्रंथ है जिसमें आसनों के भेद गिनाते हुए बताया गया है– पर्यंक, फलक, काष्ठ, पीढिक़ा या पिढिय़ा, आसंदक या कुर्सी, फलकी, भिसी या बृसी अर्थात् चटाई, चिंफलक या वस्त्र विशेष द्वारा तैयार आसन, मंचक या मांचा, मसूरक अर्थात् कपड़े या चमड़े से तैयार चपटा गोल आसन, भद्रासन या पायेदार चौकी जिसमें पीठ भी लगी होती है, पीढग या पीढ़ा, काष्ठ खोड़ या लकड़ी का बना हुआ पेटीनुमा आसन आदि। पुष्प, फल, बीज, शाखा, भूमि, तृण, लोहा, हाथीदांत आदि के बने आसनों का वर्णन भी इस शास्त्र में मिलता है।

कभी पद्मासन भी बनता था जिसको उत्पल कहा जाता था। नहिका नामक आसन गेंडे या हाथी आदि के नख से तैयार किया जाता था। इसके अतिरिक्त आस्तरक अथवा चादर, प्रवेणी अथवा बिछावन, कंबल, खट्वा, फलकी, डिप्फर, खेडुखंड, समंथणी आदि के नाम भी मिलते हैं। विश्वकर्मा ने इनके लिए काष्ठ, धातु का विवरण दिया है। अंगविज्जा में यान, कुड्य, द्वार, खंभ, वृक्षादि अपाश्रयों का वर्णन भी आया है इनको प्राचीन शिल्प प्रमाणों में खोजा जा सकता है।

इष्टिका निर्माण कला

जैन शास्त्र हमें ईंटों के निर्माण के विषय में अच्छे सूत्र प्रदान करते हैं। ईंट वास्तुविषयक कार्यों के अंतर्गत उपयोगी रही है। यज्ञ, यूप ही नहीं, चैत्यादि के लिए ईंटों का उपयोग होता रहा है। अंतगडदशासुत्तं (वर्ग 3, अध्ययन 8) से ज्ञात होता है–

– पूर्वकाल से ही ईंटों का निर्माण कर उनके ढेर लगाने की परंपरा रही है। ऐसे ढेर राजमार्गों पर मिलते थे।

– द्वारका नगरी आदि के आसपास ईंटों का निर्माण विशद् पैमाने पर होता था।

– ईंटों को गृहोपयोगी माना जाता था। उनको गृह में ले जाकर रखा जाता था ताकि यथासमय उनका उपयोग निश्चित हो।

ठक्कुर फेरू के सात ग्रंथ

खिलजिया शासनकाल में हुए ठक्कुर चंद्रांगज फेरू के ग्रंथ वैज्ञानिक दृष्टिकोण से लिखे गए हैं और सभी ग्रंथ लोकोपयोगी कहे गए हैं। यथा– 1. वास्तुसार प्रकरण, 2. रत्नपरीक्षा, 3. गणितसार, 4. ज्योतिषसार, 5. धातुविज्ञान, 6. रसशास्त्र और 7. द्रव्यपरीक्षा। इनकी रचना 1315–16 ई. के बीच हुई है लेकिन सभी ग्रंथ पूर्ववर्ती मतों पर आधारित होने से बहुत प्रामाणिक कहे गए हैं। रत्नपरीक्षा या रयण परिक्खा में 134 गाथाएँ हैं जिनमें पद्मराग, मुक्ता, विद्रुम, मरकत, हीरा, इंद्रनील, गोमेद, वैदूर्य, लहसुनिया, स्फटिक, कर्कतन, भीसम, अकीक, फीरोजी तथा लाल–इन सोलह रत्नों का वर्णन है। ये सारे ही ग्रंथ प्राकृत भाषा में हैं। यथा– *सयलगुणाणनिवासं नमिउं सव्वन्नं तिहुयणपयासं। संखेवि परप्पहियं रयणपरिक्खा भणामि अहं।।* (रत्न. 1)

आरंभ सिद्धि और अन्य ग्रंथ

यह ज्योतिष विषयक ग्रंथ है। इसमें मुहूर्त आदि विषयों पर विस्तार से वर्णन

किया गया है। इसके अतिरिक्त वाहनशास्त्र, रथशास्त्र, वादित्रशास्त्र, खनिजशास्त्र आदि का विवरण हमें स्वतंत्र या किसी ग्रंथस्थ मान्यता पर विचार की प्रेरणा देते हैं।

कहना न होगा कि जैनशास्त्रों में अनेक विषयों का वर्णन मिलता है और ये विषय आगे चलकर स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में विकसित हुए। प्राकृत में लोकोपकारक और वैज्ञानिक विषयों वाले ग्रंथों का मिलना प्राचीन अनुभवसिद्ध ज्ञान का जीता जागता निरूपण है। जैन विद्वानों ने हर सीमा से ऊपर उठकर भारतीय ज्ञान विरासत को अक्षुण्ण रखने के लिए जो परिश्रम किया, उसके परिणामस्वरूप अनेक ग्रंथ मिलते हैं। हमें वैज्ञानिक विषयों वाले ग्रंथों को सामने लाने का प्रयास करना चाहिए– यह प्राकृत के पठन–पाठन और पुनर्जीवन के लिए युगसापेक्ष प्रयास कहा जाएगा।

❑❑❑

पीपल के पत्तों पर फिसल रही चाँदनी
नालियों के भीगे हुए पेट पर, पास ही
जम रही, घुल रही, पिघल रही चाँदनी

पिछवाड़े बोतल के टुकड़ों पर
चमक रही, दमक रही, मचल रही चाँदनी
दूर उधर, बुर्जी पर उछल रही चाँदनी

आँगन में, दूबों पर गिर पड़ी
अब मगर किस कदर सँभल रही चाँदनी
पिछवाड़े बोतल के टुकड़ों पर
नाच रही, कूद रही, उछल रही चाँदनी
पीपल के पत्तों पर फिसल रही चाँदनी।

✍ नागार्जुन

चरक संहिता की भाषा एवं शैली का वैशिष्ट्य

✍ प्रो. अनूप कुमार गक्खड़

चरक संहिता आयुर्वेद का वह महान ग्रंथ है जिसकी भाषा और शैली ने इसे केवल एक चिकित्सकीय संहिता न रखकर जीवन–दर्शन, संस्कृति, नैतिकता और दर्शन का भी अद्भुत ग्रंथ बना दिया है। इसकी रचना और परिष्कार की ऐतिहासिक यात्रा बताती है कि यह ज्ञान केवल व्यक्तिगत नहीं था बल्कि ऋषियों की सामूहिक तपस्या और करुणा का परिणाम था। जब सृष्टि की उत्पत्ति हुई, तब मानव कल्याण के लिए आयुर्वेद का ज्ञान भी प्रकट हुआ। यह ज्ञान ब्रह्मा से दक्ष प्रजापति को, प्रजापति से अश्विनीकुमारों को और फिर इंद्र को प्राप्त हुआ। जब ऋषि रोगों से पीड़ित होने लगे और उनकी तपस्या तथा अनुष्ठान बाधित होने लगे तब उन्होंने सामूहिक रूप से निर्णय लिया कि रोग–निवारण हेतु औषधियों और चिकित्सा–पद्धतियों की खोज ही आवश्यक है। तब भरद्वाज को इंद्र से यह ज्ञान प्राप्त करने के लिए भेजा गया और उन्होंने पुनर्वसु आत्रेय से इसे आगे बढ़ाया। आत्रेय के छह प्रमुख शिष्यों में से अग्निवेश ने इसे ग्रंथ रूप दिया जिसे चरक ने संशोधित और व्यवस्थित किया और अंततः कृढबल ने इसमें इकतालीस नये अध्याय जोड़कर आठ स्थान व बारह हजार श्लोक की एक पूर्ण संहिता बना दिया। इस क्रम से स्पष्ट होता है कि यह ग्रंथ सामूहिक विमर्श, परंपरागत प्रामाणिकता और वैज्ञानिक दृष्टि का संगम है।

चरक संहिता के अध्याय–विन्यास में उसकी अभिव्यक्ति और प्रस्तुति की विशेष झलक दिखाई देती है। यह केवल एक साधारण विषय–सूची या अध्यायों का क्रम नहीं है बल्कि ज्ञान को व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करने की एक अद्भुत और अद्वितीय पद्धति है। कुल आठ स्थानों में से सूत्र स्थान, चिकित्सा स्थान में तीस–तीस अध्याय, निदान स्थान, विमान स्थान, शरीर स्थान में आठ–आठ व इंद्रिय स्थान, कल्प स्थान व सिद्धि स्थान में बारह–बारह अध्याय हैं। सूत्र स्थान के तीस अध्यायों में से अट्ठाईस अध्यायों को सात चतुष्कों में विभाजित किया गया है। यह चतुष्क पद्धति भारतीय शास्त्रों में ज्ञान–संरचना का अत्यंत अनूठा उदाहरण है क्योंकि इसमें विषयों को चार–चार अध्यायों के समूहों में बाँटकर उनके बीच संबंध, संगति और निरंतरता बनाए रखी गई है। प्रत्येक चतुष्क का केंद्र एक विशेष विषय है और उसकी भाषा तथा शैली उसी विषय की आवश्यकता के अनुसार रची गई है। इससे ग्रंथ केवल संग्रह

मात्र नहीं रह जाता बल्कि एक शिक्षण—शास्त्र बन जाता है जिसमें क्रमबद्धता और तार्किकता दोनों का अद्भुत संगम मिलता है।

चिकित्सकीय और प्रयोगात्मक रूप में संहिता का विवेचन करते हुए यह स्पष्ट होता है कि औषधियों के नाम, उनके गुण, वर्गीकरण और उनके प्रयोग इस तरह सुव्यवस्थित ढंग से बताए गए हैं कि पाठक इन्हें सरलता से समझ सकें। इसलिए भाषा के स्वर में सहज—स्पष्टता और तथ्यपरकता है जिससे यह बताया जाता है कि संहिता का उद्देश्य केवल सिद्धांत प्रस्तुत करना नहीं अपितु औषधियों के व्यावहारिक उपयोग को सुलभ बनाना भी है। स्वस्थ चतुष्क में स्वास्थ्य रक्षण के विभिन्न उपक्रमों जैसे दिनचर्या, ऋतुचर्या, आचार—विहार आदि का वर्णन किया गया है जिससे यह संकेत मिलता है कि संहिता का दृष्टिकोण केवल उपचारात्मक नहीं बल्कि निवारक भी है। निर्देश चतुष्क में वैद्य, औषध, परिचारक और रोगी के गुणों का वर्णन है जो बताते हैं कि चिकित्सा में सफल होने के लिए इन चारों की उत्कृष्टता व सामजंस्य आवश्यक है। कल्पना चतुष्क में स्नेहन, स्वेदन, शोधन और पंचकर्म की चर्चा है जो चिकित्सकों को विभिन्न परिस्थितियों में उचित उपाय की जानकारी देती है। रोग चतुष्क में रोगों का वर्गीकरण और उनके कारणों का विस्तार से उल्लेख किया गया है जिससे इसमें विश्लेषण और वैज्ञानिकता का उद्देश्य पूर्ण होता है। रोगयोजना में उपचार की योजना बनाने का मार्गदर्शन है जिसमें स्नेहन, स्वेदन और बृंहण आदि का उल्लेख किया गया है। यह चिकित्सकों को उचित निर्णय लेने की प्रेरणा देता हैं। अन्नपान में आहार—विहार का विवेचन किया गया है जो केवल चिकित्सा का अंग नहीं बल्कि जीवन—शैली का विषय है। इस प्रकार संहिता का पूर्ण विवेचन एक ऐसा प्रस्ताव देता है जो चिकित्सा का आवश्यक ज्ञान देते हुए जीवन—मार्ग का भी निर्देश देता है। अंतिम दो अध्याय संग्रहद्वय कहलाते हैं। इनमें योग्य और अयोग्य चिकित्सक की पहचान के साथ हृदय का वर्णन और संपूर्ण संहिता का समाहार प्रस्तुत किया गया है। यहाँ भाषा उपसंहारात्मक है और इसकी शैली संपूर्ण ग्रंथ के सार को समेटने वाली है। इसमें वैद्य को यह चेतावनी दी गई है कि यदि वह योग्य नहीं है तो उसका उपचार रोगी के लिए हानिकारक हो सकता है। इस प्रकार इन अध्यायों में भाषा का स्वर सावधानकारी और नीतिपरक दोनों है।

समग्रतः देखा जाए तो चरक संहिता का अध्याय—विन्यास केवल विषय—विभाजन नहीं है बल्कि ज्ञान की एक सुव्यवस्थित और तार्किक संरचना है। प्रत्येक चतुष्क और प्रत्येक अध्याय में शब्द—विन्यास और विन्यास का स्वर उस विषय की आवश्यकता के अनुसार बदलता है। यही कारण है कि संहिता नीरस न होकर अत्यंत जीवंत प्रतीत होती है। इसकी संरचना भाषा को क्रमबद्धता, संगठन और निरंतरता प्रदान करती है और यह ग्रंथ आज भी चिकित्सा—विज्ञान का आदर्श उदाहरण माना जाता है।

संहिता की भाषा का सबसे बड़ा वैशिष्ट्य इसकी सूत्रात्मकता है। सूत्र का गुण है संक्षिप्तता और गहनता, और चरक ने इसे उत्कृष्ट रूप से निभाया है। न्यूनतम शब्दों में अधिकतम अर्थ प्रकट करना, प्रत्येक वाक्य को ज्ञान का बीज बनाना और उसमें व्यावहारिक उपयोगिता रखना चरक की भाषा की विशेषता है। उदाहरण के लिए *सुखं दुःखं आयुः तस्य हिताहितं* में आयुर्वेद की परिभाषा मात्र एक वाक्य में प्रस्तुत हो जाती है। यह संक्षिप्तता केवल शब्दों की कमी नहीं बल्कि विचारों की गहराई है।

चरक संहिता में सूत्रात्मकता के साथ उपमा और दृष्टांतों का प्रयोग इसकी भाषा और शैली की सबसे विशिष्ट विशेषताओं में से एक है। सूत्रात्मक भाषा संक्षिप्त और गहन होती है, किंतु कभी–कभी उसकी गहराई साधारण पाठक या शिष्य के लिए कठिन हो जाती है। ऐसे अवसरों पर चरक ने उपमा और दृष्टांत का सहारा लिया। उपमा का गुण यह है कि वह किसी जटिल और दार्शनिक विचार को सामान्य जीवन के उदाहरणों से जोड़ देती है। जब किसी पाठक को किसी गूढ़ चिकित्सा–विषय की समझ नहीं आती, तब एक दृष्टांत उस विषय को तुरंत स्पष्ट कर देता है। यही कारण है कि चरक संहिता में उपमा और दृष्टांत का प्रयोग केवल साहित्यिक अलंकरण मात्र नहीं है बल्कि एक सशक्त शिक्षण पद्धति है।

उदाहरणस्वरूप, जब जीर्ण ज्वर में घृत के प्रयोग की चर्चा की जाती है तो चरक इसकी तुलना जलते हुए घर पर पानी डालने से करते हैं। यह उपमा केवल उपचार का महत्त्व ही नहीं बताती, बल्कि यह भी दर्शाती है कि किस प्रकार घृत शरीर की ज्वलनशीलता को शांत कर सकता है। जलते घर की छवि पाठक के मन में तुरंत बैठ जाती है और वह यह समझ जाता है कि घृत की शीतल और संतुलनकारी प्रवृत्ति किस प्रकार ज्वर को शांत कर सकती है। इसी तरह जब बृंहण या शरीर की पुष्टता का वर्णन करना होता है तो चरक वृक्ष की जड़ों में जल और पोषण डालने का उदाहरण देते हैं। यह दृष्टांत अत्यंत सजीव और व्यावहारिक है। जैसे वृक्ष की जड़ें पोषण पाकर संपूर्ण वृक्ष को पुष्ट कर देती हैं, वैसे ही बृंहण चिकित्सा से संपूर्ण शरीर को पोषण मिलता है। कफज रोगों की चिकित्सा में भी एक सरल उदाहरण दिया गया है। चरक कहते हैं कि जैसे क्यारी में पानी रोककर रखने से पौधे सूख जाते हैं, वैसे ही वमन कराने से कफज रोग नष्ट होते हैं। इस प्रकार उपमाएँ न केवल चिकित्सक के लिए स्मरणीय होती हैं बल्कि सामान्य जनमानस के लिए भी बोधगम्य बन जाती हैं।

चरक संहिता में आहार–विहार से जुड़े नियमों को भी दृष्टांत द्वारा स्पष्ट किया गया है। जैसे यज्ञ की अग्नि की भाँति कोई पुरुष अपनी जठराग्नि में पथ्य आहार अर्पित करता है, उसके पास रोग नहीं ठहरते और भविष्य में भी रोग दूर ही रहते हैं। इसलिए जब आहार–विहार के नियम उसी दृष्टांत से समझाए गए तो उनका महत्त्व और अधिक स्पष्ट हो गया। सूत्रात्मक भाषा जहाँ कभी–कभी नीरस लग सकती है, वहीं दृष्टांत और उपमाएँ उसमें रस और सौंदर्य का संचार करते हैं। भाषा केवल

आदेश या नियम का रूप न लेकर जीवंत और आकर्षक बन जाती है। यही कारण है कि चरक संहिता आज भी पठनीय और स्मरणीय है। उपमाओं का यह प्रयोग इसे एक ऐसा ग्रंथ बना देता है जो केवल चिकित्सकों के लिए नहीं बल्कि सामान्य पाठकों के लिए भी उपयोगी और बोधगम्य है। चरक की यह शैली इस तथ्य का प्रमाण है कि वे केवल चिकित्सक ही नहीं, अपितु महान शिक्षक और साहित्यकार भी थे जिन्होंने गंभीरतम विषयों को भी सरल एवं सुगम बना दिया।

संहिता की एक और विशेषता संवाद शैली है। अधिकांश अध्याय शिष्यों के प्रश्नों से आरंभ होते हैं और गुरु उनके उत्तर देते हैं। यह पद्धति न केवल ज्ञान को रोचक बनाती है बल्कि उसमें तार्किक प्रवाह भी बनाए रखती है। सूत्रस्थान के स्नेहाध्याय में शिष्य चौदह प्रश्न करते हैं और उन्हीं से पूरा अध्याय विस्तृत होता है। शरीरस्थान में शिष्यों के चौबीस प्रश्नों से पूरा अध्याय निर्मित होता है। यह संवाद पद्धति प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति की झलक देती है जिसमें प्रश्न करना और उत्तर देना ज्ञान का मूल साधन था। यह शैली संहिता को केवल एक पुस्तक नहीं बल्कि जीवित संवाद बना देती है जिसमें पाठक भी स्वयं को शिष्य मानकर सहभागी हो सकता है।

चरक संहिता की भाषा में बहुअर्थक शब्दों का प्रयोग एक अत्यंत रोचक और विशिष्ट विशेषता के रूप में दिखाई देता है। संस्कृत भाषा का स्वभाव ही ऐसा है कि एक शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त हो सकता है और यही विशेषता इसे समृद्ध, बहुप्रयोजनीय और गहन बनाती है। चरक ने इस गुण का न केवल उपयोग किया है बल्कि इसे एक कला का रूप दिया है। वे प्रत्येक प्रसंग के अनुरूप शब्द के अर्थ का चयन करते हैं और उस प्रसंग में ऐसा भाव भरते हैं कि पाठक को न केवल चिकित्सा संबंधी जानकारी मिलती है बल्कि भाषा के सौंदर्य और गांभीर्य का भी अनुभव होता है। उदाहरण के लिए, "माधव" शब्द को सामान्यतया भगवान विष्णु अथवा कृष्ण के लिए प्रयोग किया जाता है। यह शब्द भारतीय धार्मिक साहित्य में भक्ति और ईश्वरत्व का प्रतीक है। किंतु चरक ने इसका प्रयोग एक भिन्न अर्थ में किया है वैशाख मास के लिए। इस प्रकार एक ही शब्द जब अलग प्रसंग में प्रयुक्त होता है तो उसके अर्थ की सीमाएँ बदल जाती हैं और पाठक को प्रसंगानुसार सही अर्थ ग्रहण करना आवश्यक हो जाता है। यह चरक की भाषिक कुशलता का प्रमाण है कि उन्होंने बिना किसी अस्पष्टता के इस शब्द को नये संदर्भ में प्रयुक्त किया।

इसी प्रकार "अर्जुन" शब्द का प्रयोग भी उल्लेखनीय है। सामान्यतः अर्जुन का अर्थ महाभारत के महान धनुर्धर और पांडवों में से एक से जुड़ा है। परंतु चरक संहिता में अर्जुन शब्द का उपयोग एक वृक्ष के लिए भी हुआ है जिसका औषधीय महत्त्व है। इतना ही नहीं, यही शब्द नेत्ररोग के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। यहाँ एक ही शब्द तीन अलग–अलग अर्थों में प्रकट होता है– एक पौराणिक चरित्र, एक औषधीय वृक्ष और एक रोग। यह बहुअर्थकता केवल भाषाई खेल नहीं है, बल्कि इसका सीधा संबंध

चिकित्सा विज्ञान और प्रयोग से है। चिकित्सक को यह समझना आवश्यक है कि किस प्रसंग में कौन–सा अर्थ ग्रहण करना है, अन्यथा भ्रम उत्पन्न हो सकता है।

"हरि" शब्द का प्रयोग भी इसी प्रकार उल्लेखनीय है। हरि का सामान्य अर्थ विष्णु अथवा भगवान कृष्ण है, जो समस्त संसार के पालनकर्ता माने जाते हैं। परंतु चरक संहिता में हरि शब्द का प्रयोग खालित्य और पालित्य की चिकित्सा में हुआ है, जहाँ हरिलोम अर्थात् कपिल वर्ण के रोम के संदर्भ में इसका प्रयोग किया गया है। "सैन्धव" शब्द भी बहुअर्थक है। यह शब्द नमक के लिए प्रयोग किया गया है, विशेषकर उस नमक के लिए जो चिकित्सा में उपयोगी है। किंतु यही शब्द अश्व के लिए भी प्रयुक्त होता है। इस प्रयोग से यह स्पष्ट होता है कि चरक शब्दों की बहु–अर्थकता को चिकित्सा की व्यावहारिक उपयोगिता से जोड़ने में सक्षम थे।

इस प्रकार यह बहुअर्थकता चरक संहिता की भाषा का एक अनिवार्य वैशिष्ट्य है। इससे भाषा न केवल लचीली और जीवंत बनती है बल्कि उसका प्रभाव भी कई गुना बढ़ जाता है। पाठक को यह अनुभव होता है कि भाषा एक जीवित इकाई है, जो परिस्थिति और प्रसंग के अनुसार अपना रूप बदल सकती है। साथ ही, यह चिकित्सकों और विद्वानों के लिए एक चुनौती भी है कि वे प्रसंगानुसार सही अर्थ का ग्रहण करें। चरक ने बहुअर्थक शब्दों के प्रयोग से यह सिद्ध कर दिया कि चिकित्सा शास्त्र केवल दवाओं और उपचार तक सीमित नहीं है, बल्कि यह भाषा और दर्शन के गहन प्रयोग से भी जुड़ा हुआ है। उनकी भाषिक कुशलता ने आयुर्वेद को न केवल चिकित्सा विज्ञान का आधारभूत शास्त्र बनाया बल्कि संस्कृत साहित्य का भी एक अमूल्य खजाना प्रदान किया।

चरक संहिता में पर्यायवाची शब्दों की भी प्रचुरता है। औषधि के लिए भेषज, साधन, उपाय, उपचार जैसे अनेक शब्द, और रोग के लिए व्याधि, अमय, विकार, आतङ्क, दोष जैसे शब्द प्रयोग में लाए गए हैं। इससे भाषा में लय और गंभीरता आती है और यह अधिक प्रभावी बनती है। साथ ही चरक संहिता में वैज्ञानिक शब्दावली का भी निर्माण हुआ है। दोष, धातु, मल, अग्नि, स्रोतस जैसे शब्द आयुर्वेद के मूल स्तंभ बने। त्रिफला का अर्थ केवल हरड़, बहेड़ा और आंवला तीन फलों तक सीमित कर दिया गया। धातु शब्द को रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र तक सीमित किया गया। स्नेह को घृत, तैल, वसा और मज्जा के रूप में परिभाषित किया गया। रस, वीर्य, विपाक, गुण और कर्म जैसे शब्दों को आहार और औषध के विश्लेषण में प्रयुक्त किया गया। चिकित्सा के चतुष्पाद वैद्य, औषध, परिचारक और रोगी भी इसी शब्दावली का हिस्सा हैं। यह शब्दावली भाषा को सुसंगत और स्थायी बनाती है और चिकित्सा विज्ञान को एक ठोस आधार प्रदान करती है।

चरक संहिता की शैली में तंत्र–युक्तियों का भी विशेष महत्त्व है। उद्देश, निर्देश, उपसंहार, अपवाद, उपमान, संकेत और हेत्वाभास जैसी पद्धतियाँ भाषा को

सुदृढ़ और संगठित बनाती हैं। कफज गुल्म की चिकित्सा में यह कहा गया है कि जिन आसव और अरिष्ट का वर्णन आगे अर्श और ग्रहणी की चिकित्सा में होगा, उनका प्रयोग गुल्म रोग में किया जाना चाहिए। इसी तरह ज्वर की चिकित्सा में सूत्रस्थान के स्वेद अध्याय में वर्णित प्रक्रियाओं का उपयोग करने का निर्देश दिया गया है। यह शैली विषयों को आपस में जोड़ती है और संहिता की निरंतरता बनाए रखती है।

चिकित्सा का ग्रंथ चरक संहिता दार्शनिक दृष्टि से भी गहन है। इसमें पुरुष, प्रकृति, गुण, कर्म, संयोग, आत्मा–शरीर संबंध जैसे अनेक शब्द प्रयुक्त हुए हैं जो न्याय और सांख्य दर्शन से जुड़े हैं। चरक ने तत्त्वनिर्णय के लिए न्याय दर्शन का मार्ग स्वीकार किया लेकिन सत्कार्यवाद के विषय में सांख्य के सिद्धांत का समर्थन किया। आप्तोपदेश की परम मर्यादा वेद को माना गया है जिससे चरक की आस्तिक आस्था स्पष्ट होती है। संहिता में संभाषा परिषद के माध्यम से रसों की संख्या, वात के गुण–दोष, पुरुष उत्पत्ति और शरीर निर्माण जैसे विषयों पर विभिन्न मत रखे गए और अंततः एक निष्कर्ष पर पहुँचा गया। इससे यह स्पष्ट होता है कि चरक संहिता अनुभवजन्य होने के साथ–साथ वैज्ञानिक और दार्शनिक प्रामाणिकता से भी परिपूर्ण है।

चरक संहिता की भाषा और शैली में नैतिकता और आचार का विशेष स्थान है। इसमें स्वास्थ्य को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थों का आधार बताया गया है। अस्वस्थ व्यक्ति न तो धर्म का पालन कर सकता है, न अर्थ अर्जित कर सकता है, न काम का संतुलित आनंद ले सकता है और न ही मोक्ष का साधन कर सकता है। इसलिए आचार्य चरक ने सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, इंद्रियनिग्रह और सत्कर्मों को स्वास्थ्य और दीर्घायु का आधार माना है। वैद्य से यह अपेक्षा की गई है कि वह चिकित्सा को केवल परोपकारी कार्य माने। यदि वह रोगी से धन लेकर चिकित्सा करता है तो वह स्वर्ण धातु छोड़कर तुच्छ पांशु ग्रहण करने के समान है। अयोग्य वैद्य से चिकित्सा को ताम्रविष से भी घातक कहा गया है। इंद्र के वज्र से कोई बच सकता है, परंतु अनाड़ी वैद्य से उपचार पाकर कोई नहीं बच सकता। इस प्रकार भाषा नीतिपरक, उपदेशात्मक और विवेकपूर्ण हो जाती है।

संहिता में मानसिक दोषों को भी रोगों का कारण बताया गया है। निदानस्थान में लोभ, क्रोध, अभिद्रोह आदि से उत्पन्न रोगों का उल्लेख किया गया है। ज्वर, रक्तपित्त, गुल्म, प्रमेह, कुष्ठ, शोष, उन्माद और अपस्मार को नैतिक दोषों से जोड़ा गया है। यह दृष्टि भाषा को गहन और दार्शनिक बनाती है और शरीर, मन और आत्मा के संतुलन पर बल देती है।

चरक संहिता में औषधियों की सूची और उनके गुणों का भी सुंदर विन्यास है। कुष्ठ रोग की चिकित्सा में खदिर को श्रेष्ठ बताया गया है, स्नेहों में घृत को सर्वोत्तम माना गया है, वमन में मदनफल और विरेचन में त्रिवृत को श्रेष्ठ कहा गया है। अगग्र द्रव्यों के अध्याय में 152 औषधियों का वर्णन है। महाकषाय के रूप में एक ही रोग

या भाव पर काम करने वाले दस—दस औषधियों के समूह दिए गए हैं। पथ्य आहार के रूप में यवागू का प्रयोग इसी व्यावहारिक दृष्टि का उदाहरण है। यह शैली भाषा को निर्णायक और प्रयोगशील बनाती है।

चरक संहिता की भाषा पुनरुक्ति दोष से बचती है। जहाँ भी पुनरावृत्ति है, वहाँ वह प्रयोजनवश है। उदाहरण के लिए विमानस्थान में देशों के प्रकार बताए गए हैं और कल्पस्थान में उन्हें चिकित्सा के संदर्भ में पुनः बताया गया है। मंदाग्नि से उत्पन्न रोगों का क्रमबद्ध निरूपण उदर रोग से लेकर अर्श, ग्रहणी, पांडु और श्वास तक मिलता है। इससे भाषा में संगति और क्रमबद्धता बनी रहती है।

संहिता की भाषा में साहित्यिक सौंदर्य और कलात्मकता भी है। सूत्रात्मक संक्षिप्तता के बावजूद कठिन विषयों को दृष्टांत और उदाहरण से सरल बनाया गया है। संवाद, प्रश्नोत्तर, तर्क—वितर्क, उपमान और न्यायशास्त्रीय विवेचन का संयोजन भाषा को जीवंत बनाता है। चिकित्सक, रोगी और परिचारक के कर्तव्यों को नीतिपरक भाषा में समझाया गया है। *अर्थविद्यायशोहानिमुपक्रोशमसङ्ग्रहम्* जैसे वचनों द्वारा असाध्य रोगों के उपचार में अपयश और अनिष्ट की संभावना स्पष्ट की गई है। गुरु द्वारा शिष्यों को उपदेश अनेक मनोहर पर्वतों और स्थलों पर दिया गया है। इस प्रकार का वर्णन वातावरण को सुगंधमय और मनोहर बनाता है। उदर—रोगों की चिकित्सा का उपदेश कैलाश पर्वत पर, रोगों के उपचार की खोज के लिए संभाषा परिषद का वर्णन हिमवत प्रदेश में, रक्तपित्त रोग का वर्णन पंचगंग प्रदेश में, रस—विषयक परिचर्चा चैत्ररथ वन में है। वातरक्त रोग की चिकित्सा के प्रकरण में सुमेरु पर्वत का उल्लेख भी मिलता है। मंत्र चिकित्सा का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है।

समग्रतः चरक संहिता की भाषा और शैली का वैशिष्ट्य यही है कि इसमें चिकित्सा—ज्ञान को दार्शनिक गहराई, साहित्यिक सौंदर्य और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ प्रस्तुत किया गया है। इसकी शैली सूत्रात्मक होते हुए भी जीवंत है। इसमें तर्क और विवेचन के साथ उपमा और दृष्टांत का प्रयोग है। इसकी भाषा प्रामाणिक, सहज और बोधगम्य है। यही कारण है कि यह ग्रंथ चिकित्साशास्त्र, साहित्य, दर्शन और भाषा—अध्ययन की दृष्टि से अनुपम और अद्वितीय है। सहस्राब्दियों पूर्व रचित यह ग्रंथ आज भी उतना ही प्रासंगिक है क्योंकि इसकी भाषा और शैली कालातीत हैं। यह न केवल रोगों के निदान और उपचार का मार्गदर्शन करता है बल्कि स्वस्थ जीवन, नैतिक आचरण और आध्यात्मिक उन्नति का भी पथ प्रशस्त करता है। इसी कारण चरक संहिता की भाषा और शैली भारतीय ज्ञान परंपरा में अद्वितीय मानी जाती है और यह ग्रंथ आज भी मानवता के लिए प्रेरणा और मार्गदर्शन का शाश्वत स्रोत है।

❑❑❑

भारतीय ज्ञान परंपरा में पर्यावरणीय चेतना और उसका वैज्ञानिक आधार

✍ डॉ. मनोज कुमार

भारतीय सभ्यता की नींव उस गहन 'पर्यावरणीय चेतना' पर आधारित है जो प्रकृति को केवल एक संसाधन न मानकर जीवंत, श्रद्धेय और पूज्य रूप में देखती है। यह चेतना वैदिक युग से लेकर आधुनिक भारत तक के बौद्धिक और सांस्कृतिक प्रवाह में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। भारत में पर्यावरण को लेकर जो सोच रही है, वह न केवल धार्मिक और आध्यात्मिक है, बल्कि वैज्ञानिक और व्यावहारिक भी है। मनुष्य और प्रकृति के संबंधों की यह समझ पश्चिमी आधुनिकता की द्वैतवादी सोच से अलग है जहाँ मनुष्य को प्रकृति पर प्रभुत्व स्थापित करने वाला माना गया। इसके विपरीत, भारतीय दृष्टिकोण 'प्रकृति' और 'मानव' के सह–अस्तित्व की बात करता है। यह दृष्टिकोण उपनिषदों की इस पंक्ति में झलकता है *ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।*[1] अर्थात् यह संपूर्ण जगत ईश्वर से व्याप्त है। जब संपूर्ण विश्व को एक चेतना से युक्त माना गया, तब उसके हर कण–जल, वायु, अग्नि, भूमि और आकाश को भी पूज्य माना गया।

आज जब जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण, वनों की कटाई और जैव विविधता की हानि जैसी समस्याएँ वैश्विक चिंता का विषय बन गई हैं, तब भारतीय ज्ञान परंपरा में मौजूद 'पर्यावरण के संरक्षण' की दृष्टि और नीतियाँ हमारे लिए मार्गदर्शक सिद्ध हो सकती हैं।

भारतीय ज्ञान परंपरा का संक्षिप्त परिचय

भारतीय ज्ञान परंपरा केवल सूचनाओं का संग्रह नहीं, बल्कि एक गहन जीवन–दृष्टि है जो समग्रता में सोचती है। यह परंपरा आत्मा, ब्रह्म, प्रकृति और मनुष्य के बीच के संबंध को एकरूपता में से देखती है। यहाँ ज्ञान को केवल बौद्धिक या केवल सूचना नहीं माना गया, बल्कि जीवन को समझने, जीने और उसे समरस बनाने की प्रक्रिया माना गया है। वेदों, उपनिषदों, स्मृतियों, पुराणों, आयुर्वेद, वास्तुशास्त्र, योगशास्त्र, न्याय, मीमांसा, और सांख्य जैसे दर्शनों में प्रकृति के तत्त्वों का विश्लेषण किया गया है। 'ऋत्' का सिद्धांत' जो कि वेदों में सर्वव्यापी है; सृष्टि के संतुलन, अनुशासन और समरसता की बात करता है। यह अनुशासन ही वह आधार है जिस पर भारतीय पर्यावरणीय दृष्टिकोण टिका हुआ है।

इस परंपरा में ज्ञान कभी भी मानवकेंद्रित (Anthropocentric) नहीं रहा, बल्कि प्रकृतिकेंद्रित रहा है। ऋषियों ने आत्मा और ब्रह्म की बात करते हुए भी पशु–पक्षियों, पेड़ों, नदियों, पर्वतों और आकाश तक को चेतनायुक्त स्वीकार किया।

वेदों में पर्यावरण चेतनाः

भारतीय ज्ञान परंपरा का सबसे प्राचीन स्रोत 'वेद' हैं। चार वेदों– ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में प्रकृति को लेकर असंख्य मंत्र मिलते हैं जिनमें पर्यावरणीय संतुलन, संरक्षण और उसका आदर करने की बातें प्रमुखता से हैं। 'अथर्ववेद' में पृथ्वी को 'माता' कहा गया हैः

माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु।।[2]

इसका अर्थ यह है कि यह भूमि (पृथ्वी) हमारी माता है और हम सब इसके पुत्र हैं। 'पर्जन्य' अर्थात् मेघ हमारे पिता हैं और ये दोनों मिल कर हमारा 'पिपर्तु' अर्थात् पालन करते हैं। यह कथन अपने आप में ही प्रकृति के साथ आत्मीय संबंध का उदाहरण है।

'यजुर्वेद' में यज्ञ के माध्यम से वातावरण की शुद्धि, वनों की रक्षा और जल स्रोतों के संरक्षण की बातें हैं। यज्ञ में उपयोग की जाने वाली हवन सामग्री (जैसे– घृत, जड़ी–बूटियाँ, लकड़ी आदि) और उच्चारण की ध्वनि का पर्यावरण पर सकारात्मक प्रभाव माना गया है। यह मात्र धार्मिक अनुष्ठान नहीं, बल्कि जैव–रासायनिक प्रक्रिया भी है। यह स्पष्ट करता है कि भारतीय समाज में पर्यावरण केवल उपयोग की वस्तु नहीं था, बल्कि वह आराधना का विषय था।

वैदिक युग में सामूहिक वृक्षारोपण बहुत प्रचलित था। 'वराह पुराण' में वनोत्सव एवं सामूहिक वृक्षारोपण का उल्लेख मिलता है। शुक्ल यजुर्वेद 5/43 में एक सूखे वृक्ष को काटने पर सौ वृक्षों के रोपण का निर्देश मिलता हैः

अत्सत्व देव वनस्पति शतवल्शो।
वि रोह सहस्रवल्शवी वयम रुहेम।।[3]

ऋग्वेद 10/146/1 में वन समुच्चय को वनदेवी संबोधित किया गया हैः

अरण्यान्यरण्यसौ या प्रेव नश्यसी।
कथा ग्राम न प्रच्छसि न त्वा भीरिव विन्दति।।[4]

वृक्षायुर्वेद में वर्णित वन संरक्षण की परंपरा वैदिक काल से चली आ रही है। उसकी मौलिक परंपरा को शुरप्ला को भोजपत्र पर संस्कृत में लिख दिया गया थाः

वननाम पतए नमः।
वृक्षानाम पतए नमः।
औषधीनाम पतए नमः।[5]

अत्रे ब्राह्मण में औषधि पादपों को जीवन रक्षक वनस्पति माना गया है तथा 'यजुर्वेद'

के रुद्राध्याय में वनों, वृक्षों एवं वनस्पति के प्रति आदर एवं श्रद्धा प्रकट की गई है।

उपनिषदों और दर्शन में प्रकृति चेतनाः

भारतीय उपनिषद केवल दार्शनिक ग्रंथ नहीं, बल्कि जीवन और प्रकृति के बीच संतुलन के गहरे सूत्रों से भरे हुए हैं। इनमें प्रकृति को मात्र भौतिक जगत नहीं माना गया, बल्कि उसे आत्मा और ब्रह्म से जोड़कर देखा गया है। उपनिषदों में बार–बार यह प्रतिपादन मिलता है कि संपूर्ण सृष्टि एक ही चेतना का विस्तार है।

छांदोग्य उपनिषद में पंचमहाभूतों की चर्चा है– पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश जिन्हें आत्मा के विविध रूप कहा गया है। यह दृष्टिकोण हमें बताता है कि हम और प्रकृति अलग नहीं हैं, बल्कि एक ही तत्त्व के भिन्न–भिन्न रूप हैं।

तैत्तिरीय उपनिषद में अन्न को ब्रह्म बताया गया है, *सः अन्नं ब्रह्मेति व्याजनात्। अन्नाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। अन्नं जातानि जीवन्ति अन्नं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तद्विज्ञाय। पुनरेव वरुणं पितरमुपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति।। तं होवाच। तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व। तपो ब्रह्मेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा।*[6] इसका सीधा अर्थ है कि अन्न ही 'ब्रह्म' है क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि अन्न से ही समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं तथा उत्पन्न होकर ये अन्न के द्वारा ही जीवित रहते हैं तथा अन्न में ही ये पुनः लौटकर समाविष्ट हो जाते हैं। जब उन्होंने यह जान लिया तो वे पुनः अपने पिता वरुण के पास आए और बोले "हे भगवन् मुझे, 'ब्रह्म' की शिक्षा दीजिए।" उनके पिता ने उनसे कहा, तप के द्वारा तुम 'ब्रह्म' को जानने का प्रयास करो क्योंकि मनन में एकाग्रता ही 'ब्रह्म' है।[7]

भारतीय दर्शन की विभिन्न शाखाओं, जैसे– सांख्य, योग, न्याय, मीमांसा और वेदांत में प्रकृति के मूल सिद्धांतों का विश्लेषण गहराई से किया गया है। सांख्य दर्शन में 'प्रकृति' को त्रिगुणात्मिका – सत्त्व, रज और तम के रूप में बताया गया है जो सृष्टि की रचना करती है। यह प्रकृति चेतन पुरुष से भिन्न होते हुए भी उससे अविच्छिन्न संबंध में है। संपूर्ण भारतीय वाङ्मय यथा– वेद, पुराण, उपनिषद्, आरण्यक, संहिताओं, धर्मशास्त्रों, स्मृतियों, रामायण और महाभारत आदि ग्रंथों में पर्यावरण को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। इस संपूर्ण जगत् अर्थात् ब्रह्मांड को ईश्वर से परिव्याप्त मानते हुए कम से कम विक्षोभ उत्पन्न करते हुए सभी पदार्थों के न्यूनतम उपभोग का निर्देश किया गया है। 'ईशावास्योपनिषद्' के प्रथम श्लोक में ही मनुष्य को भौतिक संग्रह की लालसा पर नियंत्रण करते हुए उसके द्वारा त्यागपूर्वक उपभोग की बात कही गई है–

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।[8]

इसका अर्थ है कि संपूर्ण सृष्टि में परमात्मा का वास है, अतः इसका उपभोग विवेकपूर्वक किया जाना चाहिए। इस मंत्र में पर्यावरणीय नैतिकता निहित है – एक

ऐसी चेतना जो प्रकृति का शोषण नहीं, संरक्षण करती है। जगत् में जो कुछ भी स्थावर जंगम है, वह सब कुछ ईश्वर के द्वारा आच्छादित है अर्थात् उसमें भगवत्स्वरूप का अनुभव करना चाहिए। जीवन का मूल मनुष्य और उसकी पारिस्थितिकी के शांतिपूर्ण सामंजस्य और सह–अस्तित्व में निहित है। जब द्युलोक, अंतरिक्ष, पृथ्वी, जल, औषधि, वनस्पति, विश्व, देवतागण व ब्रह्म सभी में अर्थात् चतुर्दिक शांति की कामना की जाती है तो उसमें पर्यावरण के प्रति यही बंधुभाव निहित होता है।

ॐ द्यौ शांतिरंतरिक्ष शांतिः
पृथिवी शांतिरापः शांतिरोषधयः शांतिः।।
वनस्पतयः शांतिर्विश्वेदेवाः शांतिर्ब्रह्म शांतिः
सर्व शांतिः शान्तिरेव शांतिः सा मा शांतिरेधि।
ॐ शान्तिः शान्तिः शांतिः।[9]

पुराणों और लोकसंस्कृति में प्रकृति का सम्मान–

पुराण भारतीय जनमानस की संस्कृति का जीवंत दस्तावेज हैं। इनमें न केवल धार्मिक कथाएँ हैं, बल्कि समाज के प्रकृति–संवेदनशील जीवन के विवरण भी हैं। भागवत, विष्णु, स्कंद, मत्स्य, वायु, अग्नि जैसे पुराणों में नदियों, वृक्षों, पर्वतों, पशु–पक्षियों की वंदना और पूजा का उल्लेख मिलता है। नदी पूजा जैसे गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा इत्यादि को देवी के रूप में प्रतिष्ठित किया गया। गंगा का अवतरण, हिमालय का गौरव और वनों में ऋषियों के आश्रम ये सभी प्रकृति के साथ सामंजस्य को दर्शाते हैं। 'अग्निपुराण' में कहा गया है कि जो मनुष्य एक भी वृक्ष की स्थापना करता है, वह तीस हजार इंद्रों के काल तक स्वर्ग में बसता है। जितने ही वृक्षों का रोपण करता है, अपने पहले और पीछे की उतनी ही पीढ़ियों को वह तार देता है। 'मत्स्यपुराण' में वृक्ष–महिमा प्रसंग में कहा गया है कि दस कुँओं के समान एक बावड़ी, दस बावड़ियों के समान एक एक तालाब, दस तालाबों के समान एक पुत्र का महत्त्व है जबकि दस पुत्रों के समान महत्त्व एक वृक्ष का अकेले है।

ऋग्वेद में वायु के गुण बताते हुए कहा गया है– *वात आ वातु भेषजं मयोभु नो हृदे, प्रण आयूंषि तारिषत* अर्थात् शुद्ध ताजा वायु अमूल्य औषधि है, जो हमारे हृदय के लिए दवा के समान उपयोगी है, आनंददायक है। वह उसे प्राप्त कर हमारी आयु को बढ़ाता है। वृक्षों से ही हमें खाद्य सामग्री प्राप्त होती है, जैसे फल, सब्जियाँ, अन्न तथा इसके अलावा औषधियाँ भी प्राप्त होती हैं और यह सब सामग्री पृथ्वी पर ही हमें प्राप्त होती हैं।

अथर्ववेद में कहा है– भोजन और स्वास्थ्य देने वाली सभी वनस्पतियाँ इस भूमि पर ही उत्पन्न होती हैं। पृथ्वी सभी वनस्पतियों की माता और मेघ पिता हैं क्योंकि वर्षा के रूप में पानी बहाकर यह पृथ्वी में गर्भाधान करता है। वेदों में इसी तरह पर्यावरण

का स्वरूप तथा स्थिति बताई गई है और यह भी बताया गया है कि प्रकृति और पुरुष का संबंध एक–दूसरे पर आधारित होता है।

वृक्षों की आराधना जैसे– पीपल, वट, अशोक, नीम, आम, तुलसी इत्यादि का धार्मिक और औषधीय महत्त्व हमारे पुराणों में बार–बार उभरता है। पीपल को विष्णु का स्वरूप और वटवृक्ष को त्रिदेवों का वासस्थान कहा गया।

लोकसंस्कृति में भी यह भाव संरक्षित रहा है। वन देवी, नदी माता, पर्वत देवता जैसे लोक विश्वास और रीति–रिवाज हमें बताते हैं कि भारतीय समाज ने सदा प्रकृति के प्रति आदर भाव रखा। त्यौहारों में वृक्षों की पूजा, नई फसल का उत्सव (जैसे– पोंगल, लोहड़ी, मकर संक्रांति) इस तथ्य की पुष्टि करते हैं।

आयुर्वेद और प्रकृति संतुलन

आयुर्वेद, जो भारतीय चिकित्सा पद्धति का प्राचीनतम आधार है, प्रकृति के पंचमहाभूत सिद्धांत और शरीर के त्रिदोष (वात, पित्त, कफ) के संतुलन पर आधारित है। इसका मूल उद्देश्य केवल रोग का उपचार नहीं, बल्कि प्रकृति के अनुरूप जीवन जीने की प्रेरणा है। आयुर्वेद कहता है कि शरीर भी प्रकृति का एक अंश है और जब वह अपने पर्यावरण से असंतुलित हो जाता है, तब रोग उत्पन्न होते हैं। इस सिद्धांत के अनुसार, ऋतु, जलवायु, भोजन, जल, वायु आदि से सीधे स्वास्थ्य प्रभावित होता है। चरक संहिता और 'सुश्रुत संहिता' में सैकड़ों औषधीय वनस्पतियों का उल्लेख है। इसमें प्रकृति की प्रत्येक घास, फूल, पेड़ की उपयोगिता बताई गई है। यह केवल चिकित्सा नहीं, प्रकृति के प्रति श्रद्धा का प्रतीक है। आयुर्वेद हमें यह भी सिखाता है कि कैसे मनुष्य को प्रकृति के साथ सामंजस्य रखते हुए आहार–विहार करना चाहिए। यह ज्ञान आज की nature-based medicine या green healing जैसी आधुनिक अवधारणाओं से भी कहीं अधिक वैज्ञानिक और व्यावहारिक है।

योग और पर्यावरणीय शुद्धता

योग भारतीय ज्ञान परंपरा की एक ऐसी प्रणाली है जो मनुष्य और प्रकृति के बीच के संतुलन को स्थापित करने में सक्षम है। योग का उद्देश्य केवल शारीरिक व्यायाम या मानसिक एकाग्रता नहीं, बल्कि 'युज्यते अनेन इति योगः' अर्थात् 'संपूर्ण अस्तित्व के साथ एकात्मता' है। योगसूत्रों में वर्णित अष्टांग योग– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि एक समग्र प्रणाली है जो न केवल आत्मिक विकास, बल्कि पर्यावरणीय सामंजस्य की दिशा में भी कार्य करती है। यम और नियम जैसे – अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह हमें उपभोग में संयम और प्रकृति के प्रति उत्तरदायित्व सिखाते हैं। 'अहिंसा' केवल जीवों के प्रति हिंसा से बचने की बात नहीं करता, बल्कि वृक्षों की अंधाधुंध कटाई, नदियों का दोहन और हवा–पानी को प्रदूषित करने से भी मना करता है।

'प्राणायाम' का संबंध सीधे वायु शुद्धि से है, यह हमें श्वास के महत्त्व को समझाता है और इस बात को रेखांकित करता है कि हम हवा के हर अंश से जुड़े हैं। 'ध्यान' और 'समाधि' के माध्यम से साधक सृष्टि से एकात्मता अनुभव करता है। यह एक ऐसी स्थिति है जहाँ मनुष्य प्रकृति के साथ भेद मिटाकर, उसके अंग की तरह अनुभव करता है। इस एकत्व की भावना ही पर्यावरण संरक्षण का सबसे गहन भाव है। आज जब मानसिक तनाव, प्रदूषण और अव्यवस्थित जीवन शैली पर्यावरणीय समस्याओं को और गंभीर बना रहे हैं, योग एक प्राकृतिक और आंतरिक समाधान प्रस्तुत करता है– अंतर और बहिर्जगत की एकरूपता।

भारतीय वास्तुशास्त्र और पारिस्थितिकी

भारतीय वास्तुशास्त्र केवल भवन निर्माण की तकनीक नहीं, बल्कि एक वैज्ञानिक पर्यावरणीय दृष्टिकोण है जो प्राकृतिक तत्वों के अनुरूप जीवन जीने की प्रणाली को प्रतिष्ठित करता है। इसका मूल आधार पंचमहाभूत– पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश के साथ संतुलन बनाए रखना है। वास्तुशास्त्र के अनुसार, किसी भी भवन या नगर की दिशा, स्थान, प्रकाश, वेंटिलेशन, जल निकास और हरियाली इस प्रकार नियोजित होनी चाहिए कि प्राकृतिक ऊर्जाओं का संतुलन बना रहे। उदाहरणस्वरूप, घर का मुख्य द्वार पूर्व दिशा में हो जिससे सूर्य की पहली किरणें अंदर प्रवेश कर सकें। यह पर्यावरणीय रूप से भी उपयुक्त है और स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है।

'मंदिर स्थापत्य' भी प्रकृति के अनुरूप रहा है। मंदिरों का स्थान प्रायः वनों, पर्वतों, नदियों के पास चुना जाता था ताकि वे ऊर्जा केंद्र बन सकें। इन स्थलों की पारिस्थितिकी (ecology) को बचाए रखने के लिए मंदिरों में वृक्षारोपण, जल संग्रहण (कुंड, बावड़ी) और पशु–पक्षी संरक्षण की परंपरा थी।

'नगर नियोजन' में भी पुरातन भारत ने ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किए हैं जो आज के "स्मार्ट सिटी" विचार से भी अधिक प्राकृतिक और संतुलित हैं। 'मोएन जो दारो' और 'हड़प्पा' की जल–निकासी व्यवस्था इसका प्रमाण हैं। आज जब शहरीकरण पर्यावरण संकट को जन्म दे रहा है, भारतीय वास्तु परंपरा से सीखकर हम टिकाऊ और पर्यावरण–मित्र आवासीय संरचनाएँ बना सकते हैं।

भारतीय कृषि परंपरा और जैव विविधताः

भारतीय कृषि प्रणाली मात्र अन्न उत्पादन की प्रक्रिया नहीं, बल्कि प्रकृति के साथ तालमेल की एक जीवनशैली थी। भारत में प्राचीन काल से ही ऋतुचक्र, भूमि की प्रकृति, जल स्रोत और जैव विविधता को समझकर खेती की जाती रही है। यह प्रणाली पूर्णतः ecologically sustainable रही है। वैदिक युग में कृषि को एक यज्ञात्मक कर्म के रूप में देखा गया। अन्नम् ब्रह्म की अवधारणा के अनुसार, अन्न को उत्पन्न करना भी एक धार्मिक कर्म था जिसमें प्रकृति के साथ समन्वय आवश्यक था।

भारतीय किसान परंपरागत रूप से बहुफसली खेती करते रहे हैं, जैसे – गेहूँ, जौ, तिलहन, दलहन, सब्जियाँ आदि एक साथ बोई जाती थीं जिससे मिट्टी की उर्वरता बनी रहे। इसमें मिट्टी की जीवंतता, बीज संरक्षण, जैविक खाद का प्रयोग तथा पशुपालन का एकीकृत दृष्टिकोण होता था।

जैव विविधता की रक्षा भारत की पारंपरिक कृषि का अभिन्न हिस्सा रही है। हर क्षेत्र की अपनी देशी किस्में होती थीं– जैसे कि कर्नाटक का नवरा चावल, उत्तराखंड का झंगोरा या बिहार का सातधान्य आदि। ये किस्में न केवल पर्यावरण के अनुकूल थीं, बल्कि स्थानीय जलवायु और रोगों के विरुद्ध प्रतिरोधी भी। आज जब वैश्विक रूप से मोनोक्रॉपिंग और रासायनिक खेती के कारण पर्यावरणीय असंतुलन और जैव विविधता की हानि हो रही है, भारतीय परंपरा हमें यह सिखाती है कि कृषि केवल उत्पादन नहीं, बल्कि पर्यावरण का संरक्षण भी है।

नदियों, पर्वतों और वृक्षों का सांस्कृतिक स्थान–

भारतीय परंपरा में नदी, पर्वत और वृक्ष को केवल भौगोलिक या जैविक तत्त्व नहीं माना गया, बल्कि उन्हें जीवंत, पवित्र और आराध्य समझा गया। यह दृष्टिकोण पर्यावरण के प्रति भारत की चेतना को विशेष बनाता है। नदियाँ जैसे गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, गोदावरी आदि को माता का स्थान दिया गया। 'गंगा सप्तमी', 'नर्मदा जयंती' जैसे पर्व दर्शाते हैं कि इन नदियों को केवल जल स्रोत नहीं, जीवनदायिनी माना गया। इनके किनारे विकसित हुई सभ्यताएँ यह प्रमाणित करती हैं कि नदियों के प्रति आदरभाव ही पर्यावरणीय संतुलन का मूल था।

पर्वतों जैसे हिमालय, विंध्याचल, सह्याद्री आदि को देवताओं का निवास स्थान माना गया। हिमालय को शिव का धाम कहा गया है। यह न केवल धार्मिक दृष्टि से बल्कि पारिस्थितिकीय दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। भारत की जलवायु, मानसून, नदियों का उद्गम और जैव–विविधता का आधार पर्वत ही हैं।

वृक्षों को विशेष रूप से पवित्र माना गया है। विश्व प्रसिद्ध ग्रंथ 'गीता' में श्री कृष्ण विराट रूप दिखाते हुए कहते हैं, 'अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम्' अर्थात् हे अर्जुन! मैं वृक्षों में पीपल हूँ। इस प्रकार पीपल विष्णु का स्वरूप, वटवृक्ष ब्रह्मा–विष्णु–महेश, नीम औषधीय उपयोग, तुलसी शुद्धि का प्रतीक हैं। वृक्षों की पूजा केवल आस्था नहीं, एक संरक्षण–युक्ति थी जिससे लोग वृक्षों की रक्षा करते थे। आज जब वनों की अंधाधुंध कटाई और जलस्रोतों का क्षरण हो रहा है, भारतीय परंपरा की यह आराधनात्मक दृष्टि हमें यह सिखाती है कि संरक्षण का सबसे स्थायी तरीका श्रद्धा और संस्कृति से जुड़ना है। 'ऋग्वेद' का 'अप् सूक्त' और अथर्ववेद का 'भूमिसूक्त' क्रमशः जल व ज़मीन पर लिखी विश्व की संभवतः प्रथम कविता है।

विज्ञान, खगोल और पंचांग– पर्यावरणीय व्यवस्था का भारतीय स्वरूप

भारतीय ज्ञान परंपरा में खगोल विज्ञान, गणित और पंचांग–निर्माण जैसी

विधाओं का गहरा संबंध प्रकृति और पर्यावरण के साथ रहा है। ये केवल खगोलीय घटनाओं की गणना भर नहीं थीं, बल्कि पर्यावरणीय संतुलन, कृषि चक्र, ऋतु–परिवर्तन और मानव जीवन के तालमेल को निर्देशित करने वाले साधन थे। पंचांग भारत की अद्भुत वैज्ञानिक प्रणाली है जिसमें सूर्य और चंद्रमा की गतियों के आधार पर ऋतुओं, मासों, नक्षत्रों और त्यौहारों का निर्धारण होता है। पंचांग यह तय करता है कि कौन–सा कार्य कब करना शुभ होगा जिससे प्रकृति के चक्र में हस्तक्षेप न हो। उदाहरणस्वरूप– वर्षा ऋतु में अधिक कृषि कार्य, शरद ऋतु में सफाई, हेमंत में पौधारोपण, ये सभी पंचांग से निर्देशित होते हैं।[10]

खगोलशास्त्र की परंपरा भारत में वैदिक काल से रही है। आर्यभट्ट, भास्कराचार्य, वराहमिहिर जैसे विद्वानों ने ग्रह–नक्षत्रों की गणना करते हुए यह सिद्ध किया कि ब्रह्मांडीय घटनाएँ पृथ्वी की जलवायु और पर्यावरणीय चक्र को प्रभावित करती हैं।[11] वराहमिहिर की 'बृहत्संहिता' में वर्षा, बादल, पवन, तारे और वनस्पतियों के बीच संबंधों को लेकर विस्तृत विवरण है। उसमें यह बताया गया है कि पेड़ों के झुकाव, पक्षियों की आवाजें, आकाश की स्थिति देखकर पर्यावरणीय भविष्यवाणी की जा सकती है। यह समूची व्यवस्था हमें यह सिखाती है कि भारतीय वैज्ञानिक परंपरा केवल "तकनीक" नहीं, बल्कि प्रकृति की समझ और उसके अनुरूप जीवन का दर्शन है।

समग्रतः कहा जा सकता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में पर्यावरण केवल एक वस्तु नहीं, अपितु एक सजीव इकाई है जिसके साथ मानव का गहरा संबंध है। यह संबंध विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय पर आधारित है। 'वसुधैव कुटुंबकम्' और 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' जैसे विचार केवल दर्शन नहीं, अपितु पर्यावरणीय नैतिकता की आधारशिला है। भारतीय ज्ञान परंपरा में पर्यावरण चेतना किसी एक विषय या विज्ञान की शाखा नहीं, बल्कि जीवन का अभिन्न अंग रही है। यह एक ऐसा दर्शन है जिसमें मनुष्य को प्रकृति का शासक नहीं, बल्कि सेवक और सहचर माना गया है। भारतीय दर्शन में समस्त संसार को जड़ और चेतन में विभाजित किया गया है। हर छोटे–बड़े जीव से पेड़–पौधों तक चेतना है। इस चेतना को साकार बनाए रखने के लिए 'आवरण' चाहिए। ये आवरण पंचतत्वों से निर्मित है जिसे हम मिट्टी, जल, वायु, आकाश, अग्नि भी कहते हैं। इन तत्वों की संतुलित उपस्थिति का बने रहना प्राणी–जगत् के अस्तित्व की अनिवार्य शर्त है। बस यही है पर्यावरण–संरक्षण। जब यह संतुलन बिगड़ जाए तो स्वाभाविक है कि जैविक समीकरण भी सलामत नहीं रहता। इससे प्रकृति का चक्र भी प्रभावित होता है जो अनेक प्रकार के विनाशों का कारण बनता है। बस यही है प्रदूषण। आज जब पूरी दुनिया जलवायु संकट, जैव विविधता के क्षरण और पर्यावरणीय असंतुलन से जूझ रही है, भारतीय ज्ञान परंपरा हमें नवीन वैज्ञानिक दृष्टि और प्राचीन सांस्कृतिक संवेदना के सुंदर समन्वय से समाधान देने में सक्षम है।

संदर्भ सूचीः

1. wisdomlib.org/hinduism/book/ishavasya-bhashya, ईशोपनिषद्; 1/1
2. अथर्ववेद के 12 वें कांड, सूक्त 1 की 12वीं ऋचा
3. यजुर्वेद 5/43
4. ऋग्वेद 10/146/1
5. www.bhartiyadharohar.com/वैदिक परंपराओं में पर्यावरण संरक्षण, प्रोफेसर बलवंत सिंह राजपूत
6. https://upanishads.org.in/upanishads/3/7/2/1
7. वही
8. ईशोपनिषद्; 1/1
9. यजुर्वेद; 36/17
10. ISRO और पंचांग पर आधुनिक शोध, 2021
11. Aryabhatiya, K.S. Shukla, Critical Edition with Translation

संदर्भ ग्रंथ सूचीः

1. अथर्ववेद, लक्ष्मी प्रकाशन, बल्लीमारन, दिल्ली–110006, संस्करण– 2018
2. शर्मा, मनोहर लाल, सामवेद, लक्ष्मी प्रकाशन, बल्लीमारन, दिल्ली–110006, संस्करण–2024
3. यजुर्वेद, संस्कृत साहित्य प्रकाशन, कनाट सरकस, नई दिल्ली –110001, संस्करण –2015
4. वेद.com/rigveda/10/146/1
5. ईशावास्योपनिषद, गीता प्रेस, गोरखपुर, संस्करण –1997
6. तैत्तिरीयोपनिषद, गीता प्रेस गोरखपुर, संस्करण –1993(प्रथम)
7. https://upanishads.org.in

❑❑❑

मिथिला के सामाजिक–राजनीतिक दर्शन की बौद्धिक और वैज्ञानिक परंपराः एक पुनर्विचार

✍ डॉ. सुजीत ठाकुर

भारत की बौद्धिक विरासत में मिथिला का साहित्यिक, बौद्धिक, तार्किक और वैज्ञानिक योगदान अद्वितीय रहा है। हालाँकि, प्राच्यवाद (Orientalism) की अवधारणा ने भारतीय चिंतन को एक यूरोसेंट्रिक दृष्टिकोण से देखने की प्रवृत्ति को जन्म दिया। इसके परिणामस्वरूप, भारतीय विद्वानों ने भी अपनी ही ज्ञान परंपरा को उसी पश्चिमी दृष्टिकोण से परखा। उदाहरण के लिए, आज यदि यह कहा जाए कि आदर्शवाद (जो बाद में उदारवाद के रूप में विकसित हुआ) और मार्क्सवाद, दोनों का मूल आधार मिथिला के सांख्य दर्शन के द्वैतवादी सिद्धांत में निहित है, तो यह बात पश्चिमी चिंतन पर आधारित शिक्षा–प्राप्त भारतीय प्रबुद्ध वर्ग को हास्यास्पद लग सकती है।

सांख्य दर्शन के अनुसार, यह ब्रह्मांड दो स्वतंत्र और शाश्वत तत्वों से बना है पुरुष (चेतना) और प्रकृति (पदार्थ)। सांख्य का तर्क है कि चेतना निष्क्रिय होती है, जबकि प्रकृति सक्रिय। प्रकृति की गतिविधियाँ घटनाओं के क्रम पर आधारित होती हैं, और इन घटनाओं का आधार मानवीय प्रवृत्तियाँ होती हैं जो सत्व, रजस् और तम– इन तीन गुणों से संचालित होती हैं।

यहीं पर यूनानी दार्शनिक और राजनीति विज्ञान के जनक माने जाने वाले प्लेटो का सामाजिक वर्गीकरण और 'दार्शनिक राजा' का सिद्धांत सांख्य के इन्हीं तीन गुणों पर आधारित प्रतीत होता है। प्लेटो ने तम को 'क्षुधा', रजस् को 'सैन्य गुण' और सत्व को 'बौद्धिकता' से जोड़ा था। इसी आधार पर उन्होंने सामाजिक और प्रशासनिक जिम्मेदारियों का भी वर्गीकरण किया। यह विरोधाभास है कि आज प्लेटो को अत्यंत प्रासंगिक माना जाता है, जबकि सांख्य दर्शन केवल एक अकादमिक चिंतन का विषय बनकर रह गया है।

पश्चिमी दर्शन के साथ वैचारिक समानता और भिन्नता

हेगेल का पूरा दर्शन चेतना पर केंद्रित है। सांख्य दर्शन इसी चेतना को पुरुष कहता है जो निष्क्रिय है। हेगेल का द्वंद्ववाद भी एक ब्रह्मांडीय प्रक्रिया पर आधारित है जिसमें वह वाद, प्रतिवाद और संवाद के माध्यम से इतिहास, समाज और चेतना के

विकास को संचालित करता है। वह मानवीय विकास को संघर्ष और समाधान के एक निरंतर और गतिशील चक्र के रूप में देखता है जिसका अंतिम लक्ष्य परम ज्ञान या चेतना की पूर्णता है।

इसी तरह, सांख्य दर्शन भी सभी भौतिक और मानसिक घटनाओं का मूल कारण त्रिगुणात्मक प्रकृति को मानता है। इन गुणों के अलग–अलग अनुपात में मिलने से सृष्टि में विविधता आती है जो चेतना को गतिशील बनाती है।

यहाँ हेगेल और सांख्य दर्शन के विचारों में एक महत्त्वपूर्ण अंतर आता है। हेगेल की अवधारणा लौकिक सीमाओं पर, यानी राज्य की चेतना में विलय के साथ समाप्त हो जाती है। इसके विपरीत, सांख्य दर्शन मानवीय विकास की गतिशीलता को आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दुखों से मुक्ति दिलाकर परम ज्ञान या मोक्ष की ओर ले जाता है। इसका अर्थ है कि शरीर और मन की पीड़ा, वन्य जीवों से होने वाले कष्ट और प्राकृतिक आपदाओं से मिलने वाली तकलीफ से मुक्ति ही व्यक्ति को मोक्ष की ओर ले जाती है। इस प्रकार, जहाँ एक की सोच राज्य सत्ता तक सीमित रहती है, वहीं दूसरे की सोच राज्य से परे जाकर वैश्विक मुक्ति की बात करती है।

मार्क्सवाद और भारतीय दर्शनः भौतिकवाद और चेतना का द्वंद्व

मार्क्स का दर्शन यद्यपि सांख्य के द्वैतवाद के विपरीत है क्योंकि यह अद्वैतवाद और भौतिकवाद पर आधारित है। हेगेल जहाँ इतिहास को आत्मा या चेतना का प्रकटीकरण मानते हैं, वहीं मार्क्स इसे भौतिक शक्तियों के बीच संघर्ष का परिणाम बताते हैं। मार्क्स के अनुसार, मानवीय चेतना से लेकर सामाजिक संघर्ष तक सभी परिवर्तन भौतिक वास्तविकता में निहित होते हैं।

यह विचार सांख्य दर्शन के 'सत्–कार्य–वाद' के सिद्धांत के बहुत करीब है। सत्–कार्य–वाद का मूल सिद्धांत यह है कि किसी भी कार्य के पीछे उसका कारण पहले से ही विद्यमान होता है। उदाहरण के लिए, दही बनने का सार पहले से ही दूध में मौजूद होता है। इसी तरह, मार्क्स की यह धारणा है कि इतिहास का विकास भौतिक परिस्थितियों में बदलाव से होता है। यह बदलाव गतिशीलता को जन्म देता है और यह गतिशीलता सामाजिक चेतना में संघर्ष पैदा करती है जिसके कारण व्यक्तिगत और सार्वभौमिक चेतना में लगातार परिवर्तन होता रहता है।

मार्क्स के लिए प्रौद्योगिकी और श्रमिक कौशल जैसी उत्पादन की शक्तियाँ, सामाजिक वर्ग संरचना, राजनीति, कानून, धर्म तथा संस्कृति जैसे उत्पादन के संबंध इन भौतिक परिवर्तनों के अनुरूप बदलते रहते हैं। यहाँ मार्क्स का आधार भौतिक परिवर्तन है जो चेतना के परिवर्तन का कारण बनता है, न कि चेतना भौतिक परिवर्तन करती है। वह सांसारिक अंतर्विरोधों को प्राथमिकता देता है और उन्हें ही भौतिक व ब्रह्मांडीय परिवर्तन का मूल कारण मानता है। मार्क्सवादी चिंतन परस्पर संबंधों पर बल देता है, जबकि द्वैतवादी दर्शन दो स्वतंत्र सत्ताओं के अस्तित्व को स्वीकार करता है।

एक कहता है कि दोनों अलग नहीं हैं, बल्कि एक–दूसरे के कारण और कारक हैं; दूसरा मानता है कि दोनों स्वतंत्र इकाइयाँ हैं, लेकिन उनके संपर्क से ही वैश्विक सत्ता में गतिशीलता आती है।

लौकिक बनाम आध्यात्मिक मुक्ति

हेगेल ने 'स्व–चेतना' को एक सामाजिक परिघटना के रूप में देखा। उन्होंने दो स्व–चेतनाओं के बीच की टकराहट को संघर्ष और विजय के रूप में व्याख्यायित किया। वे सामाजिक परिघटनाओं में चेतना का परिवर्तन 'स्व–इच्छा' के रूप में देखते हैं जो सामाजिक अंतर्चेतना के माध्यम से पूरी होती है।

हालाँकि, हेगेल और मार्क्स दोनों की सोच लौकिकता तक ही सीमित रह जाती है। उनके दर्शन का अंतिम लक्ष्य एक स्वतंत्र व्यक्ति या चेतना का विकास है जिसे हेगेल सांसारिक परिघटनाओं में और मार्क्स भौतिक परिस्थितियों में खोजने का प्रयास करते हैं। इसके विपरीत, उद्दालक का अद्वैतवाद व्यक्तिगत चेतना और वैश्विक चेतना की एकरूपता में इस मुक्ति को देखता है।

भारत का अद्वैतवाद यह कहता है कि सामाजिक घटनाएँ हों या ऐतिहासिक चेतना का चक्र, प्रकृति और चेतना का संसर्ग हो या दो भौतिक पदार्थों का अंतर्विरोध, प्रत्येक घटना का मूल एक ही है– चेतना। रूप भले ही अनेक हों, पर सार एक ही है। जैसे एक बीज में एक विशाल बरगद का पेड़ छिपा होता है, वैसे ही एक विचार कई भौतिक परिवर्तनों का कारण बन सकता है। यही गतिशीलता है, और यही चेतना है। यहाँ हमें हेगेल और मार्क्स के विचारों का मूल सार दिखाई देता है।

नई शिक्षा नीति, राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन और भारतीय ज्ञान प्रणाली

डॉ. मंजुल भार्गव, जो प्रिंसटन विश्वविद्यालय के प्रोफेसर और एक प्रसिद्ध गणितज्ञ हैं, ने नई शिक्षा नीति और राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन की अवधारणा को प्रेरित किया है। उन्होंने भारतीय बौद्धिक विरासत को प्राच्यवाद (Orientalism) के दृष्टिकोण से परे जाकर फिर से अध्ययन करने पर जोर दिया है। भार्गव के अनुसार, भारत में ऐसे कई गणितज्ञ हुए हैं जिनका योगदान पाइथागोरस और पास्कल के सिद्धांतों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है, लेकिन दुर्भाग्य से भारत में भी उनके बारे में बहुत कम लोग जानते हैं। उन्होंने भारतीय इतिहास और संस्कृति के पुनरध्ययन की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने इस बात पर प्रकाश डाला कि अरब जगत ने यह स्वीकार किया है कि 'शून्य' (Zero) भारत की देन है। उनके अनुसार, 'शून्य' सिर्फ एक संख्यात्मक प्रणाली नहीं, बल्कि एक दार्शनिक अवधारणा है जो 'जगत मिथ्या ब्रह्म सत्य' (संसार माया है, ब्रह्म ही सत्य है) के सिद्धांत से जुड़ी हुई है। भार्गव ने गणित को केवल एक फार्मूला–आधारित समाधान के बजाय विकास, अन्वेषण और खोज की एक प्रक्रिया के रूप में देखने की वकालत की। उन्होंने यह भी कहा कि

भारत के इतिहास ने गणित को एक अंतर्विषयक विषय के रूप में समझा है जिसका उद्भव संगीत, साहित्य, भाषा, कला और सामाजिक विकास के साथ हुआ है। उन्होंने पिंगला, माधवा, विरहंका, गोपाला और हेमचंद्रा जैसे भारतीय गणितज्ञों का नाम लिया, और कहा कि यदि उनका अध्ययन किया जाए तो वे पाइथागोरस और यूक्लिड जैसे विद्वानों के सिद्धांतों के समकक्ष साबित होंगे।

मिथिला की बौद्धिक विरासत भारतीय ज्ञान परंपरा का एक महत्त्वपूर्ण लेकिन अनछुआ पहलू है जिसे पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है। प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक काल में मिथिला की सांस्कृतिक विरासत ने स्वयं में एक स्वतंत्र परंपरा को जन्म दिया है। शतपथ ब्राह्मण, छान्दोग्य उपनिषद, शुक्ल यजुर्वेद और याज्ञवल्क्य संहिता जैसे ग्रंथ मिथिला के इतिहास के बिना अधूरे हैं क्योंकि ये सभी इसी क्षेत्र से संबंधित हैं।

वैज्ञानिक दृष्टिकोणः त्रिवितिकरण और याज्ञवल्क्य–गार्गी संवाद

मिथिला के वैज्ञानिक दृष्टिकोण का एक उत्कृष्ट उदाहरण त्रिवितिकरण का सिद्धांत है। इस सिद्धांत के अनुसार, सभी भौतिक वस्तुएँ तीन मौलिक तत्वों–अग्नि (ऊर्जा), जल (तरलता) और पृथ्वी (ठोस)– के संयोजन से बनी हैं। यह सिद्धांत बाद में पश्चिमी भौतिक विज्ञान के लिए एक संभावित आधार बन सकता था, लेकिन इसे अपेक्षित स्वीकृति नहीं मिली। यह दर्शाता है कि भारतीय प्राकृतिक विज्ञान में महत्त्वपूर्ण शोध हुए थे, जिन्हें अब पुनः अध्ययन और अनुसंधान का हिस्सा बनाने की आवश्यकता है।

इसी तरह, याज्ञवल्क्य–गार्गी संवाद का वैज्ञानिक दृष्टिकोण ब्रह्मांड के रहस्यों को उजागर करता है। इस संवाद को न तो भारत में और न ही विश्व में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के रूप में पर्याप्त मान्यता मिली। इस संवाद के प्रश्न और उत्तर न केवल ब्रह्मांडीय रहस्यों को उजागर करते हैं, बल्कि भारतीय संस्कृति की समृद्धि, महिला सशक्तिकरण और मानसिक स्वास्थ्य पर भी प्रकाश डालते हैं। यह संवाद इस बात का भी संकेत देता है कि प्रश्न वहीं तक सही हैं जहाँ तक जिज्ञासा की चेतना लौकिक सीमाओं को नहीं तोड़ती। यदि प्रश्न जिज्ञासाओं का एक पुंज बन जाएँ, तो वे मानसिक व्याधि का कारण बन सकते हैं।

गार्गी, जो उस समय के राजदरबार की एक प्रमुख विदुषी थीं, ने याज्ञवल्क्य से पूछाः *चूँकि यह संपूर्ण संसार जल पर ताने और बाने की तरह बुना हुआ है, तो जल किस पर ताने और बाने की तरह बुना हुआ है?* 'ताना और बाना' यहाँ बुनाई की प्रक्रिया में शटल की गति को दर्शाता है। याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, *वायु पर।* यह उत्तर भारतीय वैज्ञानिक दृष्टिकोण की गहराई को दिखाता है, जिसे पश्चिमी दुनिया अक्सर रहस्यवाद कहकर खारिज कर देती है। गार्गी और याज्ञवल्क्य के बीच प्रश्नों का यह सिलसिला तब तक जारी रहा, जब तक वह ताना–बाना जिस पर यह संसार

बुना हुआ था, ब्रह्मा के रूप में प्रकट नहीं हुआ। इस बिंदु पर, याज्ञवल्क्य ने गार्गी को और अधिक प्रश्न न पूछने की सलाह दी, क्योंकि यह वास्तविकता इतनी गहरी है कि इसमें और उतरना उचित नहीं है। यह सलाह जिज्ञासा के मानसिक आवेग को शांत करने की ओर इशारा करती थी, लेकिन साथ ही यह भी वकालत करती है कि यदि प्रश्न सार्थक हों तो जिज्ञासा को रोकना नहीं चाहिए।

याज्ञवल्क्य के सामने गार्गी ने अपनी बुनाई की उपमा को जारी रखते हुए प्रश्न किया कि इस ब्रह्मांड में सब कुछ पृथ्वी के नीचे, आकाश के ऊपर और इन दोनों के बीच की हर चीज किस पर बुनी हुई है। सीधे शब्दों में कहें तो, वह अस्तित्व के परम आधार को जानना चाहती थीं। याज्ञवल्क्य का अंतिम उत्तर था कि सब कुछ अविनाशी (अक्षर) पर बुना हुआ है। उन्होंने समझाया, *यह अविनाशी न मोटा है और न पतला, न छोटा है और न लंबा। इसी के आदेश पर सूर्य, चंद्रमा, पृथ्वी और आकाश अलग–अलग रहते हैं। यह अविनाशी देखता है पर उसे देखा नहीं जा सकता; वह सुनता है पर उसे सुना नहीं जा सकता; वह सोचता है पर उसे सोचा नहीं जा सकता; वह अनुभव करता है पर उसे अनुभव नहीं किया जा सकता। हे गार्गी, इस अविनाशी के अलावा कोई देखने वाला, सुनने वाला, सोचने वाला या अनुभव करने वाला नहीं है। इसी अविनाशी पर आकाश ताने और बाने की तरह बुना हुआ है।*

यही वह क्षण है जब चेतना का प्रादुर्भाव होता है। लेकिन मिथिला के दर्शन में, यह चेतना व्यक्ति को ब्रह्मा या परम सत्ता की ओर ले जाती है, जबकि हेगेल और मार्क्स का दर्शन इसे केवल लौकिक सीमाओं तक जोड़ता है। हेगेल और मार्क्स का विचार व्यक्ति के राजनीतिक व्यक्तित्व और नागरिक समाज तक ही सीमित रह जाता है। इसके विपरीत, भारतीय दर्शन की ज्ञानमीमांसा व्यक्ति को भौतिक और आत्म–चेतना के अंतर्विरोधों से मुक्ति दिलाती है। मार्क्स अपनी 'थ्योरी ऑफ़ एलिनेशन' में जिस प्राकृतिक मानव की खोज करते हैं, भारत का दर्शन उस खोज के समाधान तक पहुँचने का मार्ग दिखाता है जो सांसारिक सत्य से होते हुए आत्म–चेतना की ओर ले जाता है।

मिथिला की विरासत – प्राच्यवाद और यूरोकेंद्रवाद को चुनौती

एडवर्ड सईद ने अपनी 1978 में प्रकाशित पुस्तक 'ओरियंटलिज्म' में यह स्थापित किया कि प्राच्यवाद अन्य सभ्यताओं को समझने का कोई तटस्थ तरीका नहीं है। इसके बजाय, यह एक ऐसा विमर्श (discourse) है जो पश्चिमी शक्ति और नियंत्रण को बनाए रखने का काम करता है। यह मूल रूप से पूर्व (Orient) को देखने का एक पश्चिमी तरीका है, जिसमें पूर्व को अक्सर विदेशी, रहस्यमयी, पिछड़ा और खतरनाक के रूप में चित्रित किया जाता है, जबकि पश्चिम (Occident) को तर्कसंगत, आधुनिक और श्रेष्ठ दर्शाया जाता है।

यह अवधारणा यूरोकेंद्रवाद द्वारा और भी पुष्ट होती है जिसकी मान्यता है कि

वैश्विक अंतरराष्ट्रीय समाज और उसके सिद्धांत केवल पश्चिम की बौद्धिक देन हैं। इस सोच के अनुसार, पश्चिम अंतरराष्ट्रीय समाज के सिद्धांतों, संस्थानों और आदर्शों का एकमात्र निर्माता है और अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था का विकास केवल यूरोप के आंतरिक इतिहास में निहित है।

भारत की बौद्धिक परंपरा अब इस एकांगी दृष्टिकोण को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। यह मानती है कि प्राच्यवाद पूर्व को देखने का एक यथार्थवादी विमर्श नहीं, बल्कि पूर्व पर यूरोपीय–अटलांटिक शक्ति का एक संकेत है। प्राच्यवाद को ब्रिटिश, फ्रांसीसी और अमेरिकी साम्राज्यों की राजनीतिक चिंताओं और लेखकों के बीच एक गतिशील आदान–प्रदान के रूप में देखा जाता है जिन्होंने भारत की बौद्धिक परंपरा को अपना आधार बनाकर अपनी श्रेष्ठता का भाव पैदा किया। यह लेखन, जो 1840 के दशक से लेकर आज तक अकादमियों, पुस्तकों और विश्वविद्यालयों में एक शिक्षण योग्य ज्ञान के रूप में विकसित हुआ, हम सभी द्वारा वास्तविकता मान लिया गया।

यह विरोधाभास है कि जॉन स्टुअर्ट मिल जैसे उदारवादी विचारक, जिनके सिद्धांत स्वतंत्रता पर आधारित थे, यह मानते थे कि उनके विचार भारत जैसे देशों पर लागू नहीं हो सकते क्योंकि वे सभ्यता के मामले में ''नस्लीय रूप से नहीं तो सभ्यता के मामले में'' निम्न थे। मार्क्स के लेखन में भी इसी तरह का विरोधाभास देखने को मिलता है। पश्चिमी बौद्धिक जगत में गैर–पश्चिमी समाजों का बहिष्करण एक आम अवधारणा थी। गैर–पश्चिमी राष्ट्रों में अंतरराष्ट्रीय संबंधों के सिद्धांतों का अभाव माना गया और उन्हें राजनीतिक अव्यवस्था और धार्मिक असहिष्णुता में डूबा हुआ समझा गया। इसी सोच के कारण, उन्हें अंतरराष्ट्रीय समाज में प्रवेश के लिए ''सभ्यता के मानक'' (standard of civilisation) को अपनाने की शर्त दी गई, जो पूरी तरह से पश्चिमी मूल्यों पर आधारित था।

इस तरह का यूरोकेंद्रित दृष्टिकोण भारतीय ज्ञान प्रणाली की उपेक्षा करता है। यह इस बात पर बहस को जन्म देता है कि भारतीय दार्शनिक परंपराओं, विशेषकर मिथिला क्षेत्र की राजनीतिक और बौद्धिक परंपराओं का पुनर्मूल्यांकन किया जाना चाहिए। मिथिला की बौद्धिक परंपरा पश्चिमी मूल्यों की श्रेष्ठता को चुनौती देती है। यह यूरोप के प्राच्यवाद और भारत के ही प्राच्यवादी दृष्टिकोण, दोनों से संघर्ष कर एक नए अध्ययन और अनुसंधान की आवश्यकता पर बल देती है। मिथिला की बौद्धिक विरासत में ऐसे कई उदाहरण हैं जो इस चुनौती को प्रमाणित करते हैं:

- उद्दालक और श्वेतकेतु का संवादः यह संवाद अद्वैतवाद का दर्शन प्रस्तुत करता है, जहाँ 'तत् त्वम असि' (वह तुम हो) का सिद्धांत व्यक्तिगत और ब्रह्मांडीय चेतना की एकरूपता को दर्शाता है।
- अष्टावक्र और जनक का संवादः अष्टावक्र गीता में व्यक्तिगत स्वतंत्रता को मानवीय जीवन की सर्वोच्च गरिमा बताया गया है।

• याज्ञवल्क्य और गार्गी का संवादः यह संवाद ब्रह्मांडीय सत्य की खोज को वैज्ञानिक और दार्शनिक तरीके से प्रस्तुत करता है।

• कपिल का सांख्य दर्शनः यह द्वैतवादी और न्यायिक दर्शन है, जो सृष्टि की प्रकृति और चेतना के बीच के संबंधों को समझाता है।

• गंगेश उपाध्याय का नव्य–न्याय दर्शनः उनकी कृति 'तत्त्वचिंतामणि' (तथ्य पर विचार का रत्न) ने न्यायिक तर्कशास्त्र को एक नई दिशा दी।

• ज्योतिरीश्वर ठाकुर, विद्यापति, मनबोध झा और चंद्र झारू– इन विद्वानों की रचनाएँ, जैसे 'वर्ण–रत्नाकर', 'पुरुषपरीक्षा', 'लिखनावली', 'कीर्तिलता', 'हरिवंश' और 'मैथिली रामायण', न केवल मैथिली भाषा की समृद्धि को दर्शाती हैं बल्कि अपने समय की सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक संरचनाओं का भी गहराई से विश्लेषण करती हैं। ये सभी कृतियाँ न केवल यूरोकेंद्रवाद को चुनौती देती हैं, बल्कि बौद्धिक परंपरा की श्रेष्ठता को भी अपने–अपने काल में स्थापित करती हैं।

निष्कर्ष–

इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि भारतीय बौद्धिक परंपरा, विशेषकर मिथिला की समृद्ध विरासत पश्चिमी ज्ञान के वर्चस्व और प्राच्यवादी दृष्टिकोण को सीधे–सीधे चुनौती देती है। मिथिला का दर्शन यूरोपीय अपवादवाद को नकारते हुए यह सिद्ध करता है कि ज्ञान और सभ्यता का विकास किसी एक क्षेत्र का एकाधिकार नहीं था। इन परंपराओं का गहन अध्ययन हमें यह समझने में मदद करता है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली न तो पिछड़ी थी और न ही निष्क्रिय। बल्कि, यह अपने आप में एक पूर्ण और विकसित बौद्धिक व्यवस्था थी। अतः, आज आवश्यकता केवल इस बात की ही नहीं है कि हम अपने इतिहास को फिर से खोजें, बल्कि यह भी है कि हम पश्चिमी पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर एक स्वतंत्र और आलोचनात्मक दृष्टिकोण से इसे समझें। यही वह मार्ग है जो भारतीय ज्ञान को उसके सही स्थान पर स्थापित करेगा और वैश्विक बौद्धिक विमर्श में उसे एक समान भागीदार के रूप में पहचान दिलाएगा।

संदर्भ

प्राथमिक स्रोत

- ज्योतिरीश्वर कविशेखराचार्य वर्ण–रत्नाकर (लगभग 14वीं शताब्दी का प्रारंभिक भाग).
- विद्यापति, कीर्तिलता (लगभग 1348), पुरुषपरीक्षा, लिखनावली.
- चंद्र झा, मैथिली रामायण (लगभग 1810).
- मनबोध झा, हरिवंश (लगभग 1882).
- गंगेश उपाध्याय, तत्त्वचिंतामणि (नव्य–न्याय दर्शन).
- अष्टावक्र गीता.

- छांदोग्य उपनिषद्.
- शुक्ल यजुर्वेद.
- शतपथ ब्राह्मण.
- याज्ञवल्क्य स्मृति.
- तैत्तिरीय उपनिषद्.

द्वितीयक स्रोत'

- चक्रवर्ती, मनमोहन, ''रीकंस्ट्रक्टिंग द पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ मिथिला ड्यूरिंग द प्री–मुगल पीरियड'' जर्नल ऑफ द एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल (1915).
- दिवाकर, आर. आर, द बिहार थ्रू एजेस (1959).
- ग्रियर्सन, सर जॉर्ज अब्राहम, लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया (खंड ट, II, 1903), एन इंट्रोडक्शन टू द मैथिली लैंग्वेज ऑफ नॉर्थ बिहार (1881, 1906),
- सईद, एडवर्ड, ओरिएंटलिज्म (1978).
- सरकार, जे. एन., ग्लिम्प्सेस ऑफ मेडिवल बिहार (1978).
- शास्त्री, हरप्रसाद, (इशारा, पांडुलिपियों पर उनकी रिपोर्ट).
- सिंह, श्याम नारायण, हिस्ट्री ऑफ तिरहुत (1922).
- अग्रवाल, वासुदेव शरण, (इशारा, कीर्तिलता पर उनकी व्याख्या).
- झा, पंकज, A Political History of Literature: Vidyapati and the Fifteenth Century. ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2018.
- ब्लैक, ब्रायन, The Character of the Self in Ancient India: Priests, Kings, and Women in the Early Upanisads. स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ़ न्यूयॉर्क प्रेस, 2007.
- लिंडक्विस्ट, स्टीवन ई, The Literary Life of Yajñavalkya, स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ़ न्यूयॉर्क प्रेस, 2023.
- ऑलिवेले, पैट्रिक, (एशियन स्टडीज, द यूनिवर्सिटी ऑफ़ टेक्सास एट ऑस्टिन में प्रोफेसर एमेरिटस। वे प्राचीन भारतीय धर्म, कानून और राजधर्म पर अपने कार्यों के लिए जाने जाते हैं।)
- रानाडे, आर.डी., कंस्ट्रक्टिव सर्वे ऑफ उपनिषदिक फिलॉसफी, पूना, 1926.
- राधाकृष्णन, एस, इंडियन फिलॉसफी, भाग 1, लंदन।

❑❑❑

भारतीय ज्ञान परंपरा में पर्यावरणीय विज्ञान

✍ शिवम

मानव सभ्यता आज विकास के जिस चरमोत्कर्ष पर है, वहाँ पहुँचने में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी अपनी अहम भूमिका अदा करती है। विज्ञान अर्थात् विशिष्ट ज्ञान। यह विज्ञान ही है जिसके कारण कल्पना एवं वास्तविकता में भेद भी किया जा सकता है और काफी हद तक अंतर्संबंध भी स्थापित किया जा सकता है। वर्तमान समय में विज्ञान शब्द प्रयोगशीलता का द्योतक माना जा सकता है क्योंकि यह न केवल हमारी कोरी धारणा पर आधारित होता है, न केवल भावुकता पर। इसमें हर बात को, हर वस्तु को उसके साक्ष्य के आधार पर प्रमाणित या गैर–प्रमाणित माना जाता है। यह प्रक्रिया निरंतर होती रहती है। इसीलिए विज्ञान किसी भी परिणाम को अंतिम सत्य के रूप में स्वीकार करने से परहेज करता है। वर्तमान समय में विज्ञान न सिर्फ भौतिक, रसायन तथा जैव–विज्ञान तक सीमित है अपितु इसमें समाज से लेकर मनुष्य–पर्यंत, भाषा से लेकर प्रकृति एवं पर्यावरण तक इसकी परिधि में आते हैं। यहाँ तक मनुष्य के मन में उठने वाले भाव भी इससे (मनोविज्ञान) से अछूते नहीं रहे हैं।

सामान्यतः पर्यावरण को दो भागों में बाँटा जा सकता है। पहले के अंतर्गत वह आवरण जिसने पृथ्वी को चारों ओर से घेरा हुआ है अथवा गैसों का वह विशाल समूह जो पृथ्वी को सौर मंडल के अन्य ग्रहों से अलग पहचान देता है, उसे जीवनयोग्य बनाता है। दूसरे के अंतर्गत ऐसा वातावरण जो मनुष्य के उत्तम चरित्र–निर्माण में सहायक होता है, जो उसे उसके घर के परिवेश, आस–पड़ोस तथा समाज से मिलता है। यह परिवेश ही किसी भी समाज या राष्ट्र का भविष्य तय करता है। इन्हें क्रमशः भौतिक पर्यावरण एवं नैतिक पर्यावरण भी कहा जा सकता है। स्वास्थ्य, सुखी एवं सार्थक जीवनयापन हेतु दोनों का हमारे जीवन में सामान रूप से महत्त्व है। परंतु वर्तमान में मानवीय क्रियाकलापों ने पृथ्वी की जीवन–उर्जा को नकारात्मक रूप से इस प्रकार प्रभावित किया है कि भौतिक पर्यावरण का संरक्षण एक मुख्य चुनौती के रूप में हमारे समक्ष प्रकट हो गया है। पर्यावरण का यह प्रकार विज्ञान से अंतर–संबंधित होने के कारण अक्सर पर्यावरण–विज्ञान नाम से भी संबोधित किया जाता है।

पर्यावरणीय विज्ञान से अभिप्राय ऐसे विज्ञान से है जिसमें पर्यावरण और मानव गतिविधियों के संबंधों को जानने का प्रयास किया जाता है। इसमें पर्यावरण के

भौतिक, रासायनिक एवं जैविक घटकों के मध्य होने वाली क्रियाओं को समझने पर महत्त्व दिया जाता है। यह विज्ञान पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं के अध्ययन के लिए समन्वित, मात्रात्मक तथा अंतर–विषयक दृष्टि देता है। पर्यावरणीय वैज्ञानिक, पर्यावरण की स्थिति के प्रति सचेत रहते हुए इसकी गुणवत्ता का अवलोकन करते रहते हैं। वे मानवीय क्रियाकलापों का जलीय तथा स्थलीय पारिस्थितिकी व्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसका भी अवलोकन करते हुए इस पारिस्थितिकी–तंत्र के सुधार के लिए रणनीतियाँ बनाने तथा सटीकता से क्रियान्वयन करने का प्रयास भी करते हैं। विज्ञान की इस शाखा के अंतर्गत पृथ्वी की बाह्य गैसीय परत के अवलोकन के साथ ही मौसम विज्ञान, पर्यावरण प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता तथा सतत् विकास जैसे मुद्दों का विस्तृत विश्लेषण–विवेचन किया जाता है।

भारत में पर्यावरण की कल्पना किसी भौतिक या निर्जीव घटक के रूप नहीं की गई है। इसकी अपनी सृष्टि है। यह एक जीवित संसार है। प्राचीन समय से ही भारत में पर्यावरण के साथ मनुष्य का संवेदना के स्तर पर बहुत लगाव रहा है। पर्यावरण के प्रति मानवीय संबंधों के बारे में सर्वप्रथम वेदों से जानकारी प्राप्त होती है। वैदिक ऋषि–मुनि अपनी जीवनशैली से पर्यावरण के नैसर्गिक रूप को हानि पहुँचाए बिना सतत विकास के मार्ग पर चलते थे। प्राकृतिक संसाधनों का समुचित उपयोग करते हुए भी वे प्रकृति के शोषक नहीं थे। वैदिक साहित्य में वर्णित पारिस्थितिकी में संपूर्ण पर्यावरण को तीन भागों में बाँटा गया है– द्युलोक, अंतरिक्ष लोक तथा पृथ्वी लोक।

द्युलोक से अभिप्राय ब्रह्मांड के उस स्थान से है जहाँ से सूर्य की व्याप्ति होती है। सूर्य के अनेक रूप द्युस्थानीय देव माने गए हैं। निरूक्त के द्वादश अध्याय में सूर्य, उषा, पूषा, विष्णु, सविता, यम, वृषाकपि आदि के माध्यम से सूर्य की विभिन्न स्थितियों का वर्णन किया गया है। उदाहरण के लिए, उषा को उस प्रातःकालीन सूर्य की ज्योति के रूप में देखा जाता है जो सूर्योदय से पूर्व संपूर्ण आकाश में छा जाती है। संपूर्ण प्राणीमात्र के अस्तित्व में सूर्य का होना अति आवश्यक है। इसके बिना पृथ्वी पर जीवन संभव नहीं है। यह जीव–जंतुओं में प्रकाश तथा ऊर्जा का मुख्य स्रोत है। इसके माध्यम से प्राणियों में प्रजनन तथा विकास संभव है। सूर्य का प्राणदायक तत्त्व होने के कारण इसे प्रत्येक जड़–चेतन की आत्मा कहा जाता है–

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आ प्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्यो आत्मा जगात्स्तस्थुषश्च।।[1]

(ऋक्.1/115/9)

अर्थात् रश्मियों के उत्तम पुंज मित्र, वरुण एवं अग्नि के चक्षु या आँखें सूर्य उदय हुए हैं। संपूर्ण विश्व के चराचर की मूल प्राण तत्व उस 'आत्मा' ने अपनी किरणों से द्यावा–पृथिवी एवं अंतरिक्ष को सभी ओर से व्याप्त कर लिया है।

पृथ्वी और द्युलोक के बीच का स्थान अंतरिक्ष लोक कहलाता है। इसमें ग्रह–नक्षत्र के साथ ही मेघों के तथा पक्षियों के आवागमन का स्थान माना जाता है। यह वो स्थान है जहाँ से धरती को वर्षा एवं वायु तत्त्व प्राप्त होता है। 'निरुक्त' में इसका देवता इंद्र या वायु माना जाता है। ऋग्वेद में मुख्यतः इंद्र तथा यजुर्वेद में वायु की स्तुति का वर्णन मिलता है। वायु के सूक्ष्म रूप में तीनों लोकों में व्याप्त होने के कारण ऋषि–मुनि इस तत्त्व की उपासना करते हैं।

अणिष्ठ एव यत्तु त्रीन्व्यैप्येका व्योम्नि तिष्ठति।
तनैनमृषयोऽर्चंत कर्मणा वायुमब्रुवन्।।[2]

(बृहद्देवता 2/32)

वर्तमान में जिस ओजोन परत या ओजोन गैस का वर्णन किया जाता है, हमारी संहिताओं में हजारों वर्ष पूर्व उसका वर्णन–विवेचन मिलता है। 'अथर्ववेद' के एक मंत्र में कहा गया है कि जिस भाँति त्वचा शरीर को बाहरी परिवेश से सुरक्षित रखती है, उसी प्रकार वैश्वानर भी पृथ्वी की रक्षा हेतु चर्म का प्रसार–विस्तार करती है–

इयं मही प्रतिगृह्णातु चर्म पृथिवीदेवी सुमनस्यमाना।
अथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम्।।[3]

(अथर्व., 12/11/1)

जिसे 'महत् उल्ब' संबोधित करते हुए बताया गया है कि यह उसी प्रकार पृथ्वी की रक्षा करता है, जैसे गर्भस्थ बालक की रक्षा उसके चारों ओर फैली हुई झिल्ली। ओजोन के साथ छेड़छाड़ करना उतना ही हानिकारक होगा जितना गर्भस्थ बालक की इस झिल्ली को नुकसान पहुँचाना।

पर्यावरण का यह तत्त्व (पृथिवी) संपूर्ण प्राणियों का आश्रय–स्थान माना जाता है। वैदिक दृष्टि से इसे सभी अमूल्य वस्तुओं, औषधियों तथा वनस्पतियों का मूल माना गया है। यह समस्त चराचर को अपने ऊपर स्थान देने वाली एवं सभी जल स्रोतों को धारण करने वाली है–

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं दृष्टयः संबभूवुः।
यास्यामिदं जिन्वति प्रान्देजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु।।[4]

(अथर्व.,12/1/3)

प्राचीन भारतीय वाङ्मय में वेदों के पश्चात् उपनिषदों का स्थान आता है। उपनिषदों के माध्यम से ऋषियों की प्रकृतिप्रियता तथा गहन आध्यात्मिकता के बारे में विस्तृत जानकारी मिलती है। उपनिषदों में इच्छाओं को नियंत्रित करने पर बल दिया गया है। शुद्ध इच्छाएँ ही समाज के कल्याण में सहायक होती हैं तथा शुद्ध संकल्प में परिणत हो जाती हैं। यह शुद्ध संकल्प मानव को भोगासक्ति से विमुख करके पर्यावरण के प्रति संवेदनशील बनाते हैं। प्रकृति के सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्त्व में स्वयं को देखना तथा स्वयं में प्रकृति को अनुभूत करना औपनिषदीय पर्यावरण चेतना का मूल

कहा जा सकता है–

यदा सर्वाणि भूतानि स्वात्मन्येव हि पश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ब्रह्म संपद्यते तदा।।[5]

(जबालदर्शनोपनिषत्, 10 /10)

'रुद्रिहृदयोपनिषत' में संसार के सभी पदार्थों– स्थूल से लेकर सूक्ष्म, जड़ से लेकर चेतन में शिव–शक्ति का वास मानते हुए वृक्ष को रुद्र और लताओं में उमा का अंश होने पर उनकी स्तुति की गई है–

उमारुद्रात्मिकाः सर्वाः प्रजाः स्थावरजंगमाः।
रुद्रो वृक्षे उमा वल्ली तस्मै तस्यै नमो नमः।।[6]

(10,22)

इस प्रकार उपनिषदों में वृक्षों एवं वनस्पतियों के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। केनोपनिषद् में वृक्षों को ब्रह्म का स्वरूप माना गया है और कहा गया है कि इनकी उपासना की जानी चाहिए। बृहदारण्यक उपनिषद में मानव शरीर के अंगों को वृक्षों से उपमित किया है। इस प्रकार इनके माध्यम से न सिर्फ वृक्षों का दोहन रोका जाता था अपितु वनों के साथ भावात्मक संबंध भी स्थापित किया जाता था।

रामायण भारतीय सनातन धर्म–संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है जिसके सूक्ष्म विवेचन से हमें तत्कालीन प्रकृति–प्रेम तथा पर्यावरण के प्रति जागरूकता का आभास मिलता है। आदि कवि वाल्मीकि जी रामायण रचने की प्रेरणा शिकारी के बाण से बिद्ध क्रौंच के करुण क्रंदन से पाते हैं जिसमें उनकी प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता तथा पर्यावरण के प्रति चिंतनशीलता का पता चलता है। उस समय का समाज प्रकृति से भावात्मक तौर पर इस भाँति संबद्ध था कि पशु–पक्षियों तथा वृक्षों को कोई नुकसान न हो। राम के वनवास आने पर जब भरत राम से मिलने भरद्वाज आश्रम जाते हैं तो वे अपनी सेना तथा अन्य लोगों को आश्रम से कुछ पीछे ही छोड़ देते हैं जिसका कारण बताते हुए भरत कहते हैं कि वे अकेले इसलिए आए हैं ताकि आश्रम के पर्यावरण को कोई हानि न हो–

ते वृक्षानुदकं भूमिमाश्रमेषूटजाँस्तथा।
न हिंस्युरिती तेनाऽहमेक एव समागतः।।[7]

(वा. रा.,2 / 91 / 9)

ऋषि वशिष्ठ और राजकुमार भरत जब ऋषि भारद्वाज जी से उनका कुशल–क्षेम पूछते हैं तो वे आश्रमवासियों के साथ ही वहाँ की वनस्पति तथा पशु–पक्षियों का भी कुशल–क्षेम पूछते हैं–

वसिष्ठो भरतश्चैनं पप्रच्छतुरनामयम्।
शरीरेऽग्निषु वृक्षेषु शिष्येषु मृगपक्षिषु।।[8]

(वा. रा., 2 / 90 / 8)

इसके अतिरिक्त अरण्यकांड में प्रकृति का सर्वाधिक चित्रण मिलता है जिसमें दंडकारण्य में सुतीक्ष्ण से मिलना और पंपा सरोवर के पास शबरी का आश्रम प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त अयोध्याकांड में चित्रकूट के प्राकृतिक सौंदर्य तथा सुंदरकांड में भी प्रकृति का वर्णन मिलता है।

रामायण के पश्चात् महाभारत महाकाव्य भारतीय समाज में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। महाभारत की कथावस्तु मुख्यतः पारिवारिक कलह का भयंकर परिणाम, युद्ध तथा उस युद्ध से उत्पन्न विभीषिका है। युद्ध न सिर्फ मनुष्य के लिए ही घातक होता है अपितु पशु–पक्षियों तथा वनस्पतियों के लिए भी विनाशकारी सिद्ध होता है। यह पर्यावरण को पूर्णतया असंतुलित कर देता है। युद्ध में प्रयोग होने वाले बम, परमाणु अस्त्रों से निकलने वाली गैसें पर्यावरण और पारिस्थितिकी के लिए हानिकारक सिद्ध होती हैं। इसके अतिरिक्त इस महाकाव्य में पेड़ों के संरक्षण तथा संवर्धन की भी बात की गई है। अनुशासन पर्व में वृक्षों को संतान जैसा पुण्यकारी माना गया है। अतः उनसे खाद्य सामग्री लेते समय मनुष्य को अपना कोमल व्यवहार रखना चाहिए–

"यथा मधु समादृते रक्षन्पुष्पाणि षट्पदम्।
तदवदर्थान् मनुष्येभ्यः आदद्यादविहिंसया।।[9]

(उद्योग / 34 / 17)

अश्वत्थ जिसे वर्तमान समय में पीपल कहा जाता है, पर्यावरण–संतुलन की दृष्टि से अपना विशेष महत्त्व रखता है। इसकी ऑक्सीजन प्रदान करने की क्षमता सर्वाधिक मानी जाती है। महाभारत काल के लोग भी इसके गुणों से भलीभाँति परिचित थे तथा इसे ईश्वर का साक्षात् रूप मानते थे। आश्वमेधिक पर्व में इसकी महत्ता का विस्तृत वर्णन किया गया है–

अहमश्वत्थरूपेण पालयामि जगत्त्रयम्।
अश्वत्थो न स्थितो यत्र नाहं तत्र प्रतिष्ठितः।।[10]

(आश्व. / 92 / 120)

इसके अतिरिक्त महाभारत में जीव–जंतुओं के संरक्षण की भी बात की गई है। इसमें बताया गया है कि हमें प्रकृति के साधन उतना ही प्रयोग में लेने चाहिए, जितने में अन्य वन्यजीवों को हानि न हो। 'उद्योग पर्व' में बताया गया है कि पशु के शरीर में जितने रोम होते हैं, पशु–घातक उतने हजार वर्षों तक कष्ट भोगता रहता है–

यावन्ति पशुरोमाणि पशुगात्रेषु भारत।
तावद्वर्षसहस्राणि पच्यते पशुघातकः।।[11]

प्राचीन वाङ्मय में पर्यावरण के उचित संतुलन हेतु सभी जीवित प्राणियों का समान सहयोग माना गया है जिसमें सर्वप्रथम वनस्पति जगत को सबका पालन–पोषण

करने वाला कहा गया है। यह जगत अधिकांशतः स्वयंपोषी माना जाता है अर्थात् यह अपना भोजन सूर्य की ऊर्जा तथा जलवाष्प के माध्यम से बनाता है तथा ऊर्जावान होता है। अतः यह अन्य सभी प्राणियों के जीवन का आधार बनता है। हमारी संहिताओं में इसके महत्त्व को देखते हुए इनके रक्षण की ओर उचित प्रयास किये गए। इनमें से भी अधिकतर ऐसे पेड़–पौधों को संवर्धित करने का प्रयास किया गया जो पर्यावरण संवर्धन के साथ ही अन्य प्राणियों के लिए भी हितकारी साबित होते हों। सर्वप्रथम वेदों ने ही हमें यह बताया कि आस्था ही एकमात्र वह माध्यम है जिसके द्वारा हम अपने संसाधनों के बढ़ते दोहन को रोक सकते हैं। उदाहरण के लिए अश्वत्थ (पीपल) के वृक्ष के द्वारा उपयुक्त बात को सरलता से समझा जा सकता है। यह वृक्ष वातावरण में अन्य वृक्षों की तुलना में सर्वाधिक ऑक्सीजन उत्सर्जित करता है। इसके अलावा इसकी शाखाएँ अनेक पक्षियों का निवास होती हैं, इसके पत्ते अनेक वन्यजीवों के भोजन बनते हैं। साथ ही इसके फल भी जंगली प्राणियों द्वारा खाद्य सामग्री के रूप में प्रयोग में लाए जाते हैं। अतः यह वृक्ष प्रकृति के संतुलन को बनाए रखने में अपना भरपूर सहयोग देता है। इसके संरक्षण के लिए 'श्रीमद्भगवद् गीता' के दसवें अध्याय के 26वें श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि *अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः*[12] अर्थात् सभी वृक्षों में सर्वश्रेष्ठ वृक्ष पीपल तथा देवर्षियों में श्रेष्ठ नारद मैं ही हूँ। इसके अतिरिक्त अन्य वृक्षों यथा वट, आंवला, बेल, तुलसी इत्यादि के संरक्षण को हितकारी बताते हुए उनके संवर्धन पर जोर दिया गया है। इसी प्रकार जीव–जंतुओं के प्रति प्रत्येक धर्म में दया करने को कहा जाता है क्योंकि हर प्राणी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से एक–दूसरे से जुड़ा हुआ है। यदि पर्यावरण में प्राणी जगत सकारात्मक या नकारात्मक रूप से प्रभावित होगा तो उसका असर पूरी प्रकृति पर पड़ेगा। कई बार मनुष्य अपने अज्ञानता व अंधविश्वास के चलते पशुओं को देवी–देवता को समर्पित करने के नाम पर उनकी निर्ममता से हत्या कर देता है। महाकाल–संहिता में इसके संबंध में स्पष्ट रूप में कहा गया है कि सात्विक पूजा में बलि का विधान नहीं है। राजसिक में कुष्मांड, ईख, नींबू आदि की बलि है–

सात्त्विको जीवहत्यां वै कदाचिदपि नाचरेत्।
ईक्षूदण्डं च कूष्माण्डं तथा वन्यफलादिकम्।।[13]

भारत के शास्त्रीय समाज के साथ ही प्राचीन लोक समाज भी पर्यावरण के प्रति प्रारंभ से ही जागरूक रहा है। यहाँ की लोक–संस्कृति के विभिन्न पक्ष प्रकृति एवं पर्यावरण से पूर्णतया जुड़े हुए हैं। इसलिए यह निरंतर पीढ़ी–दर–पीढ़ी में अनायास ही आ जाते हैं। यह हमारे त्योहारों, पर्वों, परंपराओं, उत्सवों तथा रीति–रिवाजों में भी दिखाई देता है। हमारी परंपराओं में शादी–विवाह की अनेक रस्मों में वृक्षों का पूजन किया जाता है। अनेक त्योहारों में से कई त्योहारों के मनाने का कारण प्रकृति के प्रति

आभार प्रकट करना होता है, जैसे वैशाखी, लोहड़ी तथा गोवर्धन पूजा इत्यादि। इनमें घर में नए खाद्यान्न के सफलतापूर्वक आने पर प्रकृति का अभिवादन किया जाता है। हमारे देश के कई ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ कदंब, महुआ, आंवला, जामुन, शमी, नीम, धतूरा आदि का लगाना शुभ माना जाता है तथा इनकी पूजा की जाती है। नदियाँ आदिम समय से मनुष्य सभ्यता से पूर्णतया जुड़ी हुईं हैं। प्रायः मानव की नियति–नियंता यही बनती रही हैं। नदियों ने हर प्रकार से मनुष्य जाति को प्रभावित किया है। चाहे इनका प्रवाह–क्षेत्र परिवर्तित करना हो या इनका सूखना अथवा प्रबल तांडव के रौद्र (बाढ़) रूप में प्रवाहित होना। जिस कारण मनुष्य का इनके प्रति संवेदनात्मक संबंध होना स्वाभाविक है। वह इनको माता मानता है। गंगा, यमुना, गोदावरी, नर्मदा, कावेरी इत्यादि वैदिक काल से ही मानव आस्था का केंद्र रही हैं। वर्तमान समय में जहाँ मनुष्य भौतिक जीवन की सुख–सुविधाओं की पूर्ति हेतु नदियों को दूषित कर रहा है, वह कहीं न कहीं स्वयं के लिए ही खतरा मोल ले रहा है।

सार रूप में कहा जा सकता है कि भारतीय समाज प्राचीन समय से ही पर्यावरण के प्रति जागरूक रहा है। उसका पर्यावरण से व्यावहारिक संबंध मात्र न होकर संवेदनात्मक एवं गहन जुड़ाव रहा है। यहाँ प्रकृति को प्राणवान तथा जीवंत मानकर उसके हितों को प्रमुखता दी गई है। यह भारत देश ही है जहाँ रात्रि को पेड़ों को गलती से स्पर्श कर लेने पर भी उनसे क्षमा माँगी जाती थी। आज के समय में मनुष्य ज्यादा प्राप्त करने की पिपासा में पर्यावरण संसाधनों का दोहन कर रहा है जिसके परिणाम में वह वैश्विक–तापन, ग्लेशियरों का पिघलना, ओजोन परत में छिद्र होना, असमय अतिवृष्टि या अनावृष्टि होना, मौसम–चक्र में असामान्य परिवर्तन होना आदि समस्याओं से जूझ रहा है। मनुष्य को अपने अतीत से बहुत कुछ सीखने को मिलता है यदि अतीत को अच्छी तरह समझा जाए। यही बात पर्यावरण समस्याओं के प्रति चिंतन तथा उसके संरक्षण पर भी लागू होती है। अगर हमें अपने पर्यावरण में गुणवत्ता चाहिए तो अपने पूर्वजों के पदचिह्नों का अनुसरण करना होगा।

संदर्भ सूचीः

1. प्रो. मीरा द्विवेदी, भारतीय ज्ञान परंपरा में पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी, पृ. सं. 115, विद्यानिधि प्रकाशन, 2021
2. प्रो. मीरा द्विवेदी, भारतीय ज्ञान परंपरा में पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी, पृ. सं. 116, विद्यानिधि प्रकाशन, 2021
3. प्रो. मीरा द्विवेदी, भारतीय ज्ञान परंपरा में पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी, पृ. सं. 120, विद्यानिधि प्रकाशन, 2021
4. प्रो. मीरा द्विवेदी, भारतीय ज्ञान परंपरा में पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी, पृ. सं. 121, विद्यानिधि प्रकाशन, 2021

5. प्रो. मीरा द्विवेदी, भारतीय ज्ञान परंपरा में पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी, पृ. सं. 142, विद्यानिधि प्रकाशन, 2021
6. प्रो. मीरा द्विवेदी, भारतीय ज्ञान परंपरा में पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी, पृ. सं. 143, विद्यानिधि प्रकाशन, 2021
7. प्रो. मीरा द्विवेदी, भारतीय ज्ञान परंपरा में पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी, पृ. सं. 147, विद्यानिधि प्रकाशन, 2021
8. प्रो. मीरा द्विवेदी, भारतीय ज्ञान परंपरा में पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी, पृ. सं. 147, विद्यानिधि प्रकाशन, 2021
9. प्रो. मीरा द्विवेदी, भारतीय ज्ञान परंपरा में पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी, पृ. सं. 170, विद्यानिधि प्रकाशन, 2021
10. प्रो. मीरा द्विवेदी, भारतीय ज्ञान परंपरा में पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी, पृ. सं. 170, विद्यानिधि प्रकाशन, 2021
11. प्रो. मीरा द्विवेदी, भारतीय ज्ञान परंपरा में पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी, पृ. सं. 172, विद्यानिधि प्रकाशन, 2021
12. कल्याण, पर्यावरण अंक, संख्या–1, वर्ष–99, 11, पूर्ण संख्या–1176, गीता प्रेस, पृ. सं.310, गोरखपुर
13. कल्याण, पर्यावरण अंक, संख्या–1, वर्ष–99, 11, पूर्ण संख्या–1176, गीता प्रेस, पृ. सं.392, गोरखपुर

❑❑❑

दुनिया के घावों पर मरहम जो न बने
उन गीतों का शोर मचाना पाप है।

✍ गोपाल दास नीरज

भारतीय परंपरागत ज्ञान साहित्य में खेल–विज्ञान

✍ डॉ. सुधा पांडेय, मधुबाला

भारतीय ज्ञान साहित्य में खेल–विज्ञान की परंपरा अति प्राचीन और गहरी रही है जो वैदिक काल से लेकर आधुनिक समय तक विभिन्न रूपों में दिखाई देती है, जिसमें रामायण, महाभारत जैसे महाकाव्यों से लेकर लोक कथाओं, कविताओं और वर्तमान साहित्य तक खेलों का उल्लेख मिलता है। इन ग्रंथों में भारतीय खेल वीरता, सामाजिक एकता और सांस्कृतिक पहचान के प्रतीक के रूप में दिखाई देता है। जहाँ कबड्डी, कुश्ती और तीरंदाजी जैसे पारंपरिक खेल शौर्य और परंपरा का प्रतिनिधित्व करते हैं; तो शतरंज, ताश और साँप–सीढ़ी जैसे खेल हमारी संस्कृति को उकेरते हैं। आधुनिक साहित्य में भी खेलों का वर्णन मिलता है, जो खिलाड़ियों के जीवन और खेलों की घटनाओं को दर्शाते हुए समाज के दर्पण के रूप में दिखाई देते हैं। भारत में कई पारंपरिक खेल हैं जिनमें से कुछ हजारों सालों से खेले जा रहे हैं। आधुनिक युग में उनकी लोकप्रियता में काफी गिरावट आई है, ब्रिटिश राज के दौरान पश्चिमी खेलों ने उन्हें पीछे छोड़ दिया है और भारतीय सरकार अब उन्हें पुनर्जीवित करने के लिए कुछ प्रयास कर रही है। इनमें से कई खेलों में बहुत अधिक उपकरण या खेलने की जगह की आवश्यकता नहीं होती है। उनमें से कुछ केवल भारत के कुछ क्षेत्रों में ही खेले जाते हैं, या अलग–अलग नामों से जाने जाते हैं और देश के विभिन्न क्षेत्रों में अलग–अलग नियमों और विनियमों के तहत खेले जाते हैं।

खेल में केवल शारीरिक बल की आवश्यकता न होकर मानसिक बल की आवश्यकता भी होती है, तभी तो प्राचीन साहित्य में हम देखते हैं कि कैसे चौसर में कौरवों ने पांडवों को हराया था। इसी के तहत खेल का एक विज्ञान होता है जिसे खेल–विज्ञान कहा जाता है। मूलतः खेल विज्ञान मानव प्रदर्शन को समझने और सुधारने के लिए विभिन्न वैज्ञानिक सिद्धांतों और तकनीकों का अनुप्रयोग है जिसमें शरीर विज्ञान, बायोमैकेनिक्स, पोषण और मनोविज्ञान जैसे क्षेत्रों को एकीकृत किया जाता है। इसका मुख्य लक्ष्य शारीरिक और मानसिक चोट के जोखिम को कम करते हुए एथलीटों की क्षमता में वृद्धि करना है। इस तरह खेल विज्ञान एक बहुविषयक क्षेत्र है जो मानव प्रदर्शन को बेहतर बनाने के लिए वैज्ञानिक सिद्धांतों का उपयोग करता

है जिससे खिलाड़ियों को अपनी पूरी क्षमता हासिल करने और स्वस्थ जीवन जीने में मदद मिलती है। प्राचीन समय से लेकर आज तक हम यह देखते हैं कि प्रत्येक खेल में वही खिलाड़ी जीतता है जिसका शारीरिक और मानसिक संबल दृढ़ हो।

रामायण, महाभारत और पुराणों जैसे ग्रंथों में विभिन्न प्रकार के खेलों का वर्णन मिलता है जो प्राचीन भारतीय समाज में खेल की महत्त्वपूर्ण भूमिका दर्शाते हैं। ग्रामीण भारत में प्रचलित कबड्डी और कुश्ती जैसे खेलों को शौर्य और सांस्कृतिक पहचान के प्रतीक के रूप में लोककथाओं और कविताओं में चित्रित किया गया है। शतरंज, ताश और साँप–सीढ़ी जैसे बैठकर खेले जाने वाले खेल भारत की ही देन हैं जिनका उल्लेख विभिन्न ऐतिहासिक और साहित्यिक ग्रंथों में मिलता है। 'कलारीपयट्टू' जैसे प्राचीन मार्शल आर्ट का उल्लेख संगम साहित्य में मिलता है जो भारत में खेल की एक समृद्ध परंपरा का हिस्सा है। हिंदी साहित्य में कबड्डी और कुश्ती को राष्ट्रीय खेलों के रूप में विशेष स्थान दिया गया है जो एकता और भाईचारे को बढ़ावा देते हैं। जिस तरह से साहित्य समाज में एकता, और भाईचारे को मजबूत करता है, वही काम खेल विज्ञान में भी दिखता है। खेल साहित्य समाज के दर्पण के रूप में कार्य करता है जो खिलाड़ियों के जीवन, उनकी चुनौतियों और समाज पर उनके प्रभाव को दर्शाता है। पारंपरिक खेल शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाने के साथ–साथ युवाओं को सक्रिय जीवन जीने के लिए प्रेरित करते हैं। खेल से अंतर–सांस्कृतिक संवाद और शांति को बढ़ावा भी मिलता है जो आज भी प्रासंगिक है।

प्राचीन साहित्य में खेलों का उल्लेख मुख्य रूप से धार्मिक ग्रंथों, महाकाव्यों और नीतिशास्त्रों में पाया जाता है। खेलों को शारीरिक शक्ति के विकास के साथ मानसिक अनुशासन और आध्यात्मिक उन्नति के साधन के रूप में देखा गया है। रामायण और महाभारत में कुश्ती, घुड़सवारी, धनुर्विद्या और रथयुद्ध का उल्लेख मिलता है। विशेष रूप से महाभारत में अर्जुन और कर्ण के युद्ध–कौशल को खेलों की दृष्टि से देखा जा सकता है। इनके द्वंद्व–युद्ध और तीरंदाजी प्रतियोगिताओं का वर्णन न केवल युद्धकला बल्कि प्रतियोगी भावना को भी प्रकट करता है। इसी प्रकार श्रीराम के धनुष यज्ञ में भाग लेने वाले योद्धाओं की कौशल प्रतियोगिता भी खेलों की एक प्राचीन परंपरा को दर्शाती है।

रामायण में शतरंज के खेल का वर्णन मिलता है जिसके बारे में पूर्व शतरंज विश्व चैंपियन विश्वनाथन आनंद ने एक लेख में बताया है कि बचपन में राम का किस्सा सुनाते समय उनकी दादी बताती थीं कि रावण की पत्नी मंदोदरी शतरंज–प्रेमी थीं। यह भी कहा जाता है कि रावण ने मंदोदरी का मनोरंजन करने के लिए उसे शतरंज से परिचित कराया था। समय मिलने पर रावण और मंदोदरी हमेशा शतरंज खेला करते थे जिसमें सदैव मंदोदरी बाजी मारा करती थी। कई अभिलेखों के अनुसार, राम

का सबसे अच्छा खेल धनुर्विद्या था। हरि प्रसाद शास्त्री द्वारा रचित वाल्मीकि रामायण के अनुवाद में रावण के चाचा अकंपन अपने भतीजे को राम के कौशल के बारे में इन शब्दों में चेतावनी देते हैंः *हे राजन, राम एक पराक्रमी योद्धा, अजेय धनुर्धर और पराक्रम में इंद्र के समान हैं।* राम के काल में खेलों का व्यापक प्रचलन था, उन्हें तीरंदाजी सिखाई जाती थी। अयोध्या और कुरुक्षेत्र जैसे स्थानों में उस काल के रथ दौड़ और कुछ अन्य खेलों या मनोरंजन के भी संकेत मिलते हैं। कुश्ती या मल्लयुद्ध रामायण से जुड़ा एक और खेल है। हनुमान जी इसमें निपुण माने जाते थे। वे (भगवान हनुमान) एक ऐसे खिलाड़ी थे जो अपने दुश्मनों से कुश्ती लड़ते थे। हमारे देश के सभी खिलाड़ी उनकी पूजा करते हैं क्योंकि उन्हें विजयी होने के लिए उनके जैसी शक्ति और ऊर्जा की आवश्यकता होती है। रामायण के पात्रों के नाम पर कुश्ती की कुछ तकनीकें भी हैं। हनुमंती शैली तकनीकी श्रेष्ठता पर केंद्रित है। इसके अलावा, जंबुवंती भी है जो प्रतिद्वंद्वी को स्थिर करने और फिर उसे परास्त करने के लिए विभिन्न प्रकार के तालों और पकड़ पर आधारित है। डॉ. उषा तिवारी, डॉ. धीरेंद्र तिवारी और छात्रा मोनिका सिंह द्वारा लिखित एक शोध–पत्र में रामायण काल के विभिन्न खेलों पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि *रामायण काल में शिकार, तीरंदाजी, घुड़सवारी और तैराकी शाही खेल थे। भगवान राम स्वयं तीरंदाजी, घुड़सवारी और रथ–सवारी में अपनी निपुणता के लिए जाने जाते थे। अयोध्या, किष्किंधा और लंका कई खेलों के केंद्र थे।* 'मल्लखंब' एक स्वदेशी खेल है जिसमें अत्यधिक लचीलेपन और ताकत की आवश्यकता होती है। इसके बारे में कहा जाता है कि इसकी जड़ें रामायण में हैं।

महाभारत में ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं जहाँ राजकुमारों ने खेलकूद की सभी प्रमुख विधियों में निपुणता हासिल की और गुप्त हथियारों का इस्तेमाल किया क्योंकि उन्होंने धनुर्विद्या, तलवार और भाले से लड़ने के बुनियादी कौशल, बरछा, खंजर, गदा और हाथ से फेंके जाने वाले भाले में महारत हासिल की। उन्होंने घोड़े पर और पैदल लड़ना और रथ चलाना सीखा; उन्होंने सांसारिक हथियार चलाना सीखा। जब हम ध्यान से देखते हैं तो पता चलता है कि रामायण और महाभारत दोनों में पारंपरिक खेल हैं पर दोनों के खेल–विज्ञान में भिन्नता है। खेल में आक्रामकता की आवश्यकता होती है। आक्रामकता को 'दूसरों की इच्छा के विरुद्ध भी, परिवर्तन की ओर एक प्रेरणा' के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। आक्रामकता सकारात्मक और नकारात्मक दोनों स्रोतों से प्रवाहित होती है। सकारात्मक आक्रामकता ऊर्जा को प्रेरित और निर्देशित करती है, जबकि नकारात्मक आक्रामकता समूहों और राष्ट्रों के बीच नरसंहार सहित कई अपराधों को जन्म देती है। पर उसके सकारात्मक पहलू पर ज्यादा जोर रहता है। जहाँ रामायण में सकारात्मक आक्रामकता ज्यादा दिखती है तो महाभारत में नकारात्मक आक्रामकता ज्यादा दिखती है।

अर्जुन, भीम, दुर्योधन, दुःशासन और यहाँ तक कि कर्ण में भी आक्रामकता परिलक्षित हुई, लेकिन उनमें से कुछ में आक्रामकता नकारात्मक और समस्याग्रस्त आक्रामक व्यवहार में बदल जाती है। पाँच प्रमुख पात्र विजय प्राप्त करने और विजयी होने की इच्छा से आक्रामक रूप से लड़ते हैं। हालाँकि, पांडवों में विजय प्राप्त करने की प्रेरणा ऊर्जा के प्रेरक स्रोत और बेहतर जीवन स्थितियों और संसाधनों को प्राप्त करने के जुनून से प्रेरित थी; दूसरी ओर, कौरवों की आक्रामकता कुंठा के कारकों से प्रेरित थी। ऐसे पात्र, अत्यधिक कुशल योद्धा और ज्ञान से संपन्न होने के बावजूद, अनैतिक खेल–कूद में लिप्त थे। इस प्रकार आक्रामकता का नकारात्मक रूप अधिकतर दूसरों को नुकसान पहुँचाता है और आत्म–अहंकार अत्यधिक मुखर हो जाता है। क्रोध को भड़काने वाली एक अन्य बाहरी स्थिति उच्च भावनात्मक सामग्री है। कर्ण असंतुष्ट था क्योंकि वह राधे का दत्तक पुत्र और निम्न जाति का योद्धा था। उसे धनुर्विद्या का प्रदर्शन करने की अनुमति नहीं थी। निम्न जाति का होने के कारण कर्ण में आक्रामकता ने कुंठा उत्पन्न की और उसमें हीन भावना तथा पांडवों के प्रति अत्यधिक क्रोध पैदा किया। कर्ण की आक्रामकता कुंठा, प्रतिशोध और विद्रोह के माध्यम से अपना रास्ता खोजती थी।

महाभारत में आक्रामकता का एक और प्रतीक दुर्योधन है। खेलों के माध्यम से ही बौद्धिक शक्ति को क्षेत्रीय विस्तार में परिवर्तित किया जा सकता है। दुर्योधन न केवल अपने प्रतिद्वंद्वी भीम के साथ भयंकर युद्ध करता है बल्कि पांडवों के लिए तीव्र क्रोध से भी भरा रहता है। उसके कार्य पांडवों के प्रति घृणा और आक्रामकता से भरे हैं, जो काफी हद तक इस ज्ञान के कारण है कि विरासत उसे नहीं दी जा सकती। सत्ता के मार्ग में उसकी सबसे बड़ी बाधा युधिष्ठिर हैं जिन्हें राजतिलक का सबसे योग्य उत्तराधिकारी माना जाता है। कौरवों और पांडवों के व्यवहार पैटर्न भी उनके प्रारंभिक प्रशिक्षण पर निर्भर थे। शकुनि की देखरेख में दुर्योधन को राजगद्दी हासिल करने के लिए अजीबोगरीब व्यवहार पैटर्न सिखाए गए थे। युद्ध और खेल उन व्यवहार पैटर्न और मूल्य प्रणालियों से मेल खाते हैं। युद्ध जितना तीव्र था, अन्य व्यवहारों की तुलना में लड़ाकू खेलों की घटनाएँ उतनी ही अधिक होती थीं। सिगमंड फ्रायड ने ऐसी प्रवृत्ति को आनुवंशिक रूप से क्रमादेशित रासायनिक–भौतिक स्थिति माना, जिसके परिणामस्वरूप तनाव संचित होता है और अक्सर बाद में कुटिल और विनाशकारी तरीकों से युक्त होता है।

प्राचीन भारत में ज्ञान वैदिक नियमों और योगसूत्रों पर आधारित था। इस तरह की शिक्षा प्राप्त करने का उद्देश्य चित्तवृत्ति निरोध प्राप्त करना था जो "मन की वृत्तियों को शांत करने" की क्रिया है। दुर्योधन चित्तवृत्ति निरोध प्राप्त करने में असफल रहा क्योंकि वह अपने चित्त और वृत्ति को संतुलित करने की कला नहीं सीख सका।

खेल–विज्ञान में चित्त और वृत्ति का नियंत्रण में होना अति आवश्यक है। दुर्योधन में वर्णित "तीव्र क्रोध" उसके आत्म–नियंत्रण की कमी को दर्शाता है। वहीं रामायण में जब राम को क्रोध आता है तो वे अपने क्रोध को नियंत्रित कर रखते हैं और एक सजग खिलाड़ी की तरह अपने शत्रुओं पर वार करते हैं। राम के अलावा रामायण की पात्रों में लक्ष्मण और हनुमान में भी कभी कभी क्रोध असंयमित दिखता है। दुर्योधन की तरह के खिलाड़ियों में आक्रामकता क्रिया–योग में कम रुचि का परिणाम ही था कि वे अपने संयम पर काबू नहीं रखते हैं और जीती हुई बाजी हार जाते हैं। दुर्योधन में कुश्ती में निपुणता होने के बावजूद उसमें विचारों को नियंत्रित करने वाले व्यायामों का अभाव था। फिर भी, द्रोण ने बार–बार प्रतियोगिताएँ आयोजित कीं ताकि प्रत्येक को पता रहे कि प्रत्येक अस्त्र के लिए कौशल के पैमाने पर दुर्योधन की रैंकिंग क्या है? आज हरेक खेल में इस रैंकिंग का प्रभाव दिखता है।

खेल देखने में दर्शक की रुचि किस हद तक होती है, यह भी खेल खेलने में दर्शक की रुचि पर निर्भर करता है। महाभारत में खेलों के सामाजिक दर्शकत्व की गतिशीलता 'टूर्नामेंट' और अर्थ संरचना के बीच परस्पर संबंधित संरचना का एक सूक्ष्म रूप है जो प्राचीन भारतीय समाज में सामाजिक स्थितियों और खेलों की विचारधारा से अपना महत्त्व प्राप्त करती है। जन भागीदारी के लिए तैयार किया गया मंच मोटे तौर पर इस बात से संबंधित है कि खेलों का आयोजन सार्वजनिक क्षेत्र में किया जाना चाहिए जहाँ प्रतिभागी और दर्शक खेल के नियमों और संचार के उपभोक्ता होने के साथ–साथ निर्माता भी हों। प्राचीन समय में खेल का आनंद दर्शकों में जबरदस्त भावना भर देता था। दर्शकों की ऐसी योजना, जहाँ खेल आयोजन संचार का वाहन और सांकेतिक गतिविधि का केंद्र बन जाता है, यह भी बताती है कि कैसे खेल मनोरंजन के तरीकों की ओर ले जाते हैं और स्वयं और समाज के आंतरिककरण और वस्तुनिष्ठता की मौलिक द्वंद्वात्मकता को प्रेरित करते हैं। महाभारत में खेल आयोजन दर्शकों और खिलाड़ियों की अलग–अलग भूमिकाओं के विकास को ध्यान में रखते हुए खेल के व्यवहार संबंधी मानदंडों पर केंद्रित है। खेल प्रतिभागियों को सर्वोत्तम खेल उपकरणों से संपन्न पाया गया, जैसे "सर्वश्रेष्ठ सारथी", "चमकदार और अच्छी तरह से फिट होने वाले कवच", "चार चमकदार घोड़े" आदि, जो टूर्नामेंट में निवेश की गई पूँजी का सुझाव देते हैं। आज हम जब आईपीएल जैसे खेल को देखते हैं तो महाभारतकालीन टूर्नामेंट की याद आ जाती है। जिस तरह से महाभारत में खेल पर आधिपत्य क्षत्रियों का था, आज उसी तरह पैसे वालों का आधिपत्य है।

भारतीय परंपरागत साहित्य में मल्लयुद्ध नामक खेल भी मिलता है। मल्लयुद्ध को चार शैलियों में विभाजित किया गया है जिनमें से प्रत्येक का नाम हिंदू देवताओं और महान योद्धाओं के नाम पर रखा गया है– हनुमंती तकनीकी श्रेष्ठता पर केंद्रित है, जंबुवंती प्रतिद्वंद्वी को अधीनता में लाने के लिए ताले और पकड़ का उपयोग करती

है, जरासंधी अंगों और जोड़ों को तोड़ने पर केंद्रित है जबकि भीमसेनी विशुद्ध शक्ति पर केंद्रित है। मल्लयुद्ध शब्द का पहला लिखित प्रमाण रामायण महाकाव्य में मिलता है, जो वानर राजा बलि और लंका के राजा रावण के बीच हुए मल्लयुद्ध का संदर्भ है। रामायण के वानर देवता हनुमान को पहलवानों और सामान्य शक्ति–प्रदर्शनों के संरक्षक के रूप में पूजा जाता है। महाभारत महाकाव्य में भीम और जरासंध के बीच हुए मल्लयुद्ध का भी वर्णन है। मल्लयुद्धों के अन्य प्रारंभिक साहित्यिक विवरणों में बलराम और कृष्ण की कथाएँ शामिल हैं। कृष्ण का वर्णन करने वाली कथाओं में बताया गया है कि वे कभी–कभी ऐसे मल्लयुद्ध करते थे जिनमें छाती पर घुटने से वार करना, सिर पर घूंसे, बाल खींचना और गला घोंटना शामिल था। उन्होंने मथुरा के राजा कंस को कुश्ती में हराया और उसके स्थान पर नए राजा बने। सिद्धार्थ को गौतम बुद्ध बनने से पहले एक कुशल पहलवान, तीरंदाज और तलवारबाज कहा जाता था। देश में बौद्ध धर्म के फलने–फूलने के साथ भारतीय खेल उत्कृष्टता के चरम पर पहुँच गए। कहा जाता है कि गौतम बुद्ध स्वयं तीरंदाजी, रथ–दौड़, घुड़सवारी और हथौड़ा फेंकने में माहिर थे। बौद्ध भिक्षु, जो बुद्ध की शिक्षाओं का प्रसार करने के लिए दूर–दूर तक, ज्यादातर निहत्थे यात्रा करते थे, उन्होंने धार्मिक कट्टरपंथियों के खिलाफ आत्मरक्षा के इस रूप को स्वीकार किया जिसमें उनके अहिंसा के दर्शन के लिए उपयुक्त विकल्प थे।

प्राचीन भारतीय परंपरागत साहित्य के साथ–साथ वर्तमान साहित्य में भी खेल–विज्ञान दृष्टिगत होता है। वेद और उपनिषद योग, ध्यान और शारीरिक व्यायाम को मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य बताया गया है। ऋग्वेद और यजुर्वेद में घुड़सवारी, धनुर्विद्या और शारीरिक दक्षता बढ़ाने वाली गतिविधियों का उल्लेख मिलता है। वहीं, उपनिषदों में योगासन और प्राणायाम को आत्मसंयम और अनुशासन के लिए महत्त्वपूर्ण साधन बताया गया है। भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' में नृत्य, योग और व्यायाम का समावेश है जो खेलों से जुड़ा हुआ है। 'नाट्यशास्त्र' में व्यायाम, मुद्रा विज्ञान और शारीरिक संतुलन के महत्त्व पर जोर दिया गया है जो खेलों की आधारशिला बनाते हैं। इन ग्रंथों में खेलों का उल्लेख यह दर्शाता है कि प्राचीन भारतीय समाज में खेल केवल मनोरंजन या शारीरिक व्यायाम तक सीमित नहीं थे, बल्कि वे व्यक्ति के मानसिक और आत्मिक विकास का भी एक प्रमुख साधन थे। 'पृथ्वीराज रासो' जैसे ग्रंथों में राजा–महाराजाओं के युद्ध–कौशल, घुड़सवारी और धनुर्विद्या का उल्लेख किया गया है। इन ग्रंथों में योद्धाओं के युद्ध के मैदान में दिखाए गए कौशल को वीरता और शक्ति का प्रतीक माना गया है। राजा–महाराजाओं के लिए यह खेल केवल मनोरंजन का साधन नहीं थे, बल्कि सैन्य अभ्यास के रूप में जाने जाते थे। इसी प्रकार अन्य राजकाव्यों में शस्त्रविद्या और युद्धकला से संबंधित प्रतियोगिताओं का विस्तृत वर्णन किया गया है।

ग्रामीण भारत में खेल केवल मनोरंजन ही नहीं, बल्कि सामाजिक जीवन का भी अभिन्न हिस्सा रहे हैं। लोकगीतों और लोककथाओं में इन खेलों के माध्यम से सामाजिक समरसता और ग्रामीण जीवन के चित्रण को दर्शाया गया है। मध्यकाल में खेलों का उल्लेख सामाजिक और मनोरंजक गतिविधियों के रूप में मिलता है। मध्यकालीन हिंदी साहित्य में विभिन्न त्योहारों और मेलों के अवसर पर खेले जाने वाले खेलों का भी उल्लेख मिलता है जो समाज में खेलों की महत्त्वपूर्ण भूमिका को दर्शाता है। इस काल में खेलों को केवल शारीरिक व्यायाम के रूप में ही नहीं, बल्कि समाज और संस्कृति के अभिन्न अंग के रूप में भी प्रस्तुत किया गया है। इस युग में युद्ध कौशल, शारीरिक क्षमता और मनोरंजन को विशेष महत्त्व दिया गया जिसका परिलक्षण हिंदी साहित्य में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। संत साहित्य में कबीर, सूरदास और तुलसीदास की रचनाओं में योग, कुश्ती और अन्य शारीरिक अभ्यासों का उल्लेख मिलता है। सूरदास के पदों में कृष्ण की बाल–लीलाओं में खेले जाने वाले खेलों जैसे गेंद खेलना और मल्लयुद्ध का उल्लेख मिलता है।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि भारतीय साहित्य में खेलों का चित्रण केवल एक ऐतिहासिक अध्ययन न होकर समाज, संस्कृति और राष्ट्रीयता को समझने का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम भी है। साहित्य में खेलों के माध्यम से समाज की संरचना, सामाजिक असमानता और परिवर्तनशील मूल्यों को प्रतिबिंबित किया गया है। खेलों का उल्लेख केवल शारीरिक गतिविधियों के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक सुधार और जन–जागरण के एक सशक्त माध्यम के रूप में भी किया गया है। खेलों के माध्यम से न केवल व्यक्तिगत कौशल और परिश्रम का सम्मान किया जाता है, बल्कि यह समाज में एकता, भाईचारे और सांस्कृतिक पहचान को भी मजबूत करते हैं। साहित्य में लिखे गए महाकाव्य, कहानियाँ, उपन्यास और निबंध इस बात का प्रमाण हैं कि खेल केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि समाज के विभिन्न पहलुओं को व्यक्त करने का एक प्रभावशाली माध्यम भी रहे हैं। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में, खेलों को हिंदी साहित्य में और भी व्यापक स्थान मिल रहा है। विभिन्न साहित्यिक विधाओं में खेलों की चर्चा राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत की उपलब्धियों और चुनौतियों के संदर्भ में हो रही है। पारंपरिक खेलों को पुनर्जीवित करने और बढ़ावा देने के उद्देश्य से, भारत के पारंपरिक खेल और खेल संघ (एटीएसजीआई) का गठन 2020 में किया गया था जो यूनेस्को द्वारा समर्थित अंतरराष्ट्रीय पारंपरिक खेल और खेल परिषद (आईसीटीएसजी) के मार्गदर्शन में संचालित होता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020 के अनुसार, 7वीं कक्षा की पाठ्यपुस्तकें जारी की गई हैं जिनमें पारंपरिक खेलों की सामग्री शामिल है। फिट इंडिया आंदोलन ने पारंपरिक भारतीय खेलों के पुनरुद्धार में भी योगदान दिया है। अंततः कहा जा सकता है कि खेल–विज्ञान और परंपरागत साहित्य एक–दूसरे के पूरक हैं और मिलकर समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने की क्षमता

रखते हैं।

संदर्भ ग्रंथ :

1. मोहनलाल गुप्ता, भारतीय खेल संस्कृति का ऐतिहासिक विकास, भारतीय साहित्य परिषद, वाराणसी। 2003
2. जयप्रकाश सिंह, भारतीय खेलों का समाजशास्त्र, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ। 2010
3. हरिनारायण शुक्ल, लोककथाओं में खेलों की भूमिका, हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, बिहार। 2008
4. अजय कुमार मिश्रा, स्वतंत्रता संग्राम और भारतीय खेल परंपराए, साहित्य भारती, भोपाल। 2015
5. सुभाषचंद्र वर्मा, आधुनिक हिंदी साहित्य में खेलों का स्थान, राजस्थान हिंदी अकादमी, जयपुर। 2020
6. निशा भारतन, "बच्चों के लिए शीर्ष 25 पारंपरिक (देसी) भारतीय खेलों की सूची" मॉम जंक्शन, 2022–11–01, 2020–12–16
7. वसुधा वेणुगोपाल, मोदी सरकार पारंपरिक खेलों को बढ़ावा देगी, इकोनॉमिक टाइम्स, ISSN 0013–0389–2023–12–02, 2017–05–19
8. थेवियनथान कृष्णमोहन, 25 सितंबर 2014, "गिल्ली–डंडा, एक लुप्तप्रायः भारतीय पारंपरिक खेल"/www.sportskeeda.com/2022–11–04 को पुनः प्राप्त।
9. अवधेश कुमार सिन्हा, प्राचीन भारत में खेल–कूद (स्वरूप एवं महत्त्व)
10. पौराणिक कथाओं में खेल, https://www.outlookindia.com/culture-society/sports-during-the-time-of-ramayan--news-227100

❑❑❑

भारतीय ज्ञान परंपरा : ज्ञान और विज्ञान का अनूठा समन्वय

✍ डॉ. महेंद्र प्रजापति

'भारतीय ज्ञान परंपरा' अब केवल वाक्य मात्र नहीं है, बल्कि ऐसा विचार बन चुका है जिसकी बुनियाद में भारतीय बोध है। लाखों वर्षों से यह ज्ञान–संपदा पीढ़ी दर पीढ़ी अनवरत चली आ रही है। इसे बीच में कई बार अवरुद्ध करने का प्रयास किया गया लेकिन ये 'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी' को सार्थक करती आई है। भारतीय ज्ञान संपदा की इस धरोहर को अंधविश्वास और कर्मकांड तक सीमित कर दिया है। वेदों और पुराणों की ऋचाओं को 'मंत्र' कहकर उसकी गरिमा को सीमित करने का प्रयास किया गया। वेदों के संबंध में तरह–तरह के दुष्प्रचार किए गए जबकि वे पूर्णतः वैज्ञानिक और तर्कसम्मत हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने हमें यह अवसर दिया है कि हम सब मिलकर फिर से अपनी ज्ञान परंपरा की ओर लौटें और दुनिया को ज्ञान देने वाली अपनी उस प्राचीन पद्धति को नए संदर्भों में देखने का प्रयास करें।

ज्ञान–विज्ञान, शास्त्र और लोक दर्शन की वैज्ञानिक परंपरा का अनूठा समन्वय हमारी भारतीय ज्ञान परंपरा में देखने को मिलता है। विश्व को ज्ञान संपदा से संपन्न करने वाले भारत देश को सपेरों का देश कहकर उसकी छवि धूमिल करने का प्रयास किया गया। उसमें समाहित वैज्ञानिकता के तत्वों के आधार पर ही दुनिया ने 'विज्ञान' शब्द का सही अर्थ समझा। मानव इतिहास के रोचक विज्ञान के साथ ही जीव विज्ञान, जंतु विज्ञान, रसायन विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, भौतिक विज्ञान, खगोल विज्ञान, गणित के साथ ही ज्योतिष और अंक विज्ञान की प्राथमिक पाठशाला भारत ही है।

हमारे वेदों, उपनिषदों और पौराणिक ग्रंथों के माध्यम से जो ज्ञान दुनिया भर में फैला, उससे भारतीय ज्ञान परंपरा की शक्ति और सामर्थ्य को गहरे अर्थों में समझा जा सकता है। अब आवश्यकता है कि हमारे उस ज्ञान को आधुनिक चिंतन के संदर्भ में देखा जाए। नई पीढ़ी तर्कपूर्ण बिंदुओं को ही सत्य मानती है इसलिए अब आधुनिक विज्ञान, कलाओं, साहित्य और आधुनिक विचारों के माध्यम से भारतीय ज्ञान परंपरा को देखने की आवश्यकता है। महात्मा बुद्ध, दयानंद सरस्वती, महर्षि अरविंद, विवेकानंद, महात्मा गाँधी जैसे आधुनिक विचारकों के विचारों से ही भारतीय ज्ञान परंपरा के

पारंपरिक सामर्थ्य को समझा जा सकता है। भारत की योगसाधना, धार्मिक आस्था, आध्यात्मिकता में वैश्विकता है जो विश्व बंधुत्व का आधार है। 'वसुधैव कुटुंबकम' और 'विश्वग्राम' की संकल्पना को साकार करना ही इस भारतीय ज्ञान परंपरा का मूल तत्व है।

भारतीय ज्ञान परंपरा का प्रारंभिक स्रोत हमारे वैदिक ग्रंथ ही हैं। वेदों में जीवन का जो विधि–विधान है, वह आत्मिक शक्ति का प्रसार ही नहीं करता है बल्कि दुनिया को आत्मबल भी देता है। भारतीय ज्ञान मीमांसा के प्रतिष्ठित विद्वान् श्रीधर पराड़कर लिखते हैं– *भारतीय अर्थात् वैदिक ज्ञान परंपरा और जीवन पद्धति की चर्चा होती है तब वह सामान्यतः अध्यात्म, धर्म, आत्ममुक्ति, कर्मकांड, पूजा–पाठ तक सीमित रहती है। यह माना जाता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा का विज्ञान से कोई संबंध नहीं है। इतना ही नहीं, यह भी कहा जाता है कि वह विज्ञान विरोधी है। भारतीय जीवन पद्धति संसार से मुँह मोड़ने वाली शिक्षाएँ हैं। विरोधियों को ऐसा लगता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा व जीवन पद्धति को अपनाने का अर्थ होगा कि देश और लोगों को एक बार फिर पीछे की ओर ले जाना अर्थात् चोटी रखनी होगी, जनेऊ पहनना होगा, तिलक व माला धारण करनी होगी, धोती पहन सुबह–शाम संध्या हवन करना होगा। यह बात वे लोग ही करते हैं जो भारतीय ज्ञान परंपरा से अवगत नहीं हैं अथवा जानबूझकर संभ्रम निर्माण करना चाहते हैं।*[1] हमारी ज्ञान परंपरा में शास्त्र और लोक के बीच समन्वय की भावना है। लोकमंगल की यही भावना भारतीय संस्कृति और ज्ञान परंपरा को विश्वभर में विशेष बनाती है। सत्यम, शिवम, सुंदरम की स्थापना ही भारतीय ज्ञान परंपरा का मूलभाव है– *भारतीय ज्ञान परंपरा का महत्त्व हजारों वर्षों के सांस्कृतिक पुनरावलोकन के क्रम में सहज विस्मरणीय है। हमारी परंपरा सदियों से ज्ञान–धर्मी आलोकस्तंभ को सामाजिक सरोकारों में वरीयतापूर्ण स्थान देने की हिमायती रही है। लोक मंगल की यह हितैषी ज्ञान परंपरा ऋग्वैदिक काल से ही लक्षित की जाने लगी। जो जीवन में नैतिक, भौतिक, आध्यात्मिक एवं बौद्धिक मूल्यों को सर्वोपरि रखते हुए विनम्रता, सत्यता, अनुशासन एवं आत्मनिर्भरता सहित दूसरों के प्रति आत्मसम्मान की गुणधर्मी परंपरा पर आधारित होती थी और जिनका महत्व आज की अवधि में तब सारभूत होता–सा प्रतीत होता है, जब हम अपने पारंपरिक आत्मविस्मृति के बारीक बंधन में उलझे हुए हैं, वहाँ अपनी मूल्यवान संपदा को धरोहर के रूप में पुनः हृदय में विस्तार देने के हवाले से, विगत ज्ञान अपने पुनर्पाठ के अर्थपूर्ण घेराव की आकांक्षा पेश करता है।*[2]

भारत की प्राचीन शिक्षा पद्धति की वैज्ञानिकता और शाश्वतता ने दुनिया भर को प्रभावित किया। यहाँ की प्राचीन गुरुकुल शिक्षा पद्धति ने संपूर्ण विश्व की शिक्षा पद्धति को न केवल प्रभावित किया बल्कि अपने यहाँ उसी तरह से ज्ञान देने के लिए विवश किया। हमारी ज्ञान परंपरा के बारे में जो दुष्प्रचार किया गया, वास्तव में वह हम

नहीं हैं। प्राचीन समय में जो शिक्षा पद्धति को आक्रांताओं द्वारा नष्ट करने का प्रयास किया गया, वह सफल नहीं हो सका क्योंकि ज्ञान की ज्योति कभी बुझती नहीं है। उसे जरा सी भी उम्मीद मिल जाती है तो वह फिर से प्रज्वलित हो जाती है। हमारे ऋषियों और मुनियों ने उस ज्ञान की ज्योति को अपनी साधना से बचाए रखा। आज हम फिर से अपनी भारतीय ज्ञान परंपरा पर इसलिए बात कर पा रहे हैं क्योंकि उसे बचाने में हमारे पूर्वजों के बलिदान हुए हैं। हमारी ज्ञान परंपरा आज भी विश्व के विभिन्न देशों में शोध का विषय है क्योंकि इसकी प्रतिष्ठा और स्थापना में तप, त्याग और तपस्या है। अब तो इसी उपयोगिता को देखते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने यह तय कर दिया है कि भारतीय शिक्षा अब भारतीय ज्ञान परंपरा के अनुसार दी जाएगी– *भारत में प्रागैतिहासिक काल से भारतीय प्राचीन ज्ञान, शिक्षा की विलक्षण परंपरा विश्व में शाश्वत रूप से चली आ रही है। किंतु भारत में विदेशी आक्रांताओं के शासन के कारण उर्वरा भारतीय भूमि में उसके बीज दबे पड़े रहे हैं, नष्ट नहीं हुए। सहस्र वर्षों के बाद भी उस ज्ञान परंपरा के बीज हमारी पीढ़ियों ने संजोकर रखे और उसकी उपादेयता कभी क्षीण नहीं होने दी। भारतीय ज्ञान परंपरा की अमूल्य धरोहर को पुनर्जीवित कर अक्षुण्ण बनाए रखने हेतु भारत सरकार को ये ज्ञान हुआ और राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के तहत भारतीय ज्ञान परंपरा की महत्ता को ध्यान में रखते हुए भारत वर्ष के सभी स्तरों के पाठ्यक्रमों में लागू करने का महती निर्णय लिया गया है।*[3]

शिक्षा का प्राचीन इतिहास बताता है कि गुरुकुल शिक्षा भारत ही नहीं, विश्व की सबसे प्राचीन शिक्षा पद्धति है। यहाँ छात्र अपने वेदों, उपनिषदों और पुराणों का अध्ययन कर ज्ञान–विज्ञान की नवीन शाखाओं का विकास करते थे। गुरुकुल प्रणाली में विद्यार्थी संपूर्ण शिक्षा प्राप्त कर न केवल ज्ञान सीखता था बल्कि आत्मनिर्भरता का गुण भी सीखता था। योग और आयुर्वेदिक की पूर्ण वैज्ञानिक चिकित्सा इन्हीं गुरुकुलों में विकसित हुई। जिसे हम आज मेडिकल की पढ़ाई कहते हैं, वही तत्कालीन समय में आयुर्वेदिक के नाम से जाना जाता था। इसमें शारीरिक विकार के साथ शल्य क्रिया भी की जाती थी। योग और ध्यान द्वारा मनुष्य के मानसिक और शारीरिक असंतुलन को ठीक कर उसे पूर्णतः स्वस्थ किया जाता था। भारत के आर्यभट्ट और वराहमिहिर के माध्यम से गणित तथा खगोल विज्ञान की पहली जानकारी मिलती है। उनका शोध आज के सभी शोधों का आधार है। शून्य की खोज कर आर्यभट्ट ने विश्व का गणित से पहला परिचय कराया। इतना ही नहीं, ग्रहों द्वारा होने वाली गति का सटीक प्रमाण भी प्रस्तुत किया। *आचार्य आर्यभट्ट ने आधुनिक खगोल एवं गणित के विकास में अभूतपूर्व योगदान दिया। ज्योतिष का क्रमबद्ध इतिहास आर्यभट्ट के समय से प्राप्त होता है। आर्यभट्ट द्वारा सूर्य और तारों के स्थिर होने तथा पृथ्वी के घूमने के कारण दिन–रात होने के बारे में भी उल्लेख किया गया है।*[4] सर्वप्रथम आर्यभट्ट द्वारा ही 1, 2, 3 आदि अंक संख्याओं के द्योतक के रूप में क, ख, ग जैसे वर्णों का आधार तैयार

हुआ। इसका अर्थ हुआ अ, आ जैसे स्वर वर्ण और क,ख, ग आदि व्यंजन वर्णों का 1–1 संख्यावाचक अर्थ देकर बड़ी–बड़ी संख्या को प्रकाश में लाया गया। आर्यभट्ट द्वारा ही सूर्य तथा चंद्र ग्रहण लगने के वैज्ञानिक आधारों का पता लगा। उन्होंने ही इसकी पहली व्याख्या कर इससे विज्ञान को परिचित कराया। आरंभिक काल में ऐसा मानना था कि राहु–केतु नाम के दो दैत्य मिलकर सूर्य तथा चंद्र पर ग्रहण का योग बनाते हैं पर आर्यभट्ट ने इसे वैज्ञानिक ढंग से ग्रंथ में लिखा है– *चंद्रमा जब अपनी कक्षा में घूमता हुआ पृथ्वी की छाया में प्रवेश करता है, तो हमें दिखाई नहीं देता है जिसे चंद्र ग्रहण कहते हैं और जब पृथ्वी तथा सूर्य के मध्य चंद्रमा आ जाता है तो सूर्य का अदर्शन होने से सूर्य ग्रहण होता है।*[5]

हमारे वेदों में विज्ञान के अनगिनत स्रोत हैं। आज जिस विज्ञान पद्धति को केंद्र बनाकर उपचार के नाम पर भारी मात्रा में धनोपार्जन किया जा रहा है, उसकी उत्पत्ति का आधार हमारे वैदिक ग्रंथ ही हैं। अग्नि, इंद्र, वरुण, अश्विनौ, मरुत, रुद्र, आपः, पूषन, उषस्, सोम, सविता जैसे वैदिक देवता मनुष्यों और जीव–जंतु की रक्षा और स्वास्थ्य के लिए पूज्यनीय हैं। हमारे वेदों में ही आयुर्वेद के कुल आठ अंगों की चर्चा मिलती है जिसके नाम शल्य, शलाका, काय चिकित्सा, भूतविद्या, कौमारभृत्य, अगदतन्त्र, रसायनतंत्र, वाजीकरणम् हैं। वैदिक काल में सुश्रुत की शल्य चिकित्सा महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। ऐसा माना जाता है कि जब देव और असुरों का पहला महायुद्ध हुआ, तब लोगों के विखंडित अंगों और सिर को जोड़ने की आवश्यकता हुई जिसके कारण शल्य चिकित्सा की उपयोगिता बढ़ी और उसकी प्रतिष्ठा हुई। वर्तमान में हम जिस अंग–प्रत्यारोपण की प्रक्रिया को बड़ी उपलब्धि मान रहे हैं, वह तो हमारे वेदों में विस्तार से मिलती है। आचार्य सुश्रुत द्वारा स्थापित अश्विनौ का आयुर्विज्ञान तत्कालीन समय में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा था और आज उसकी उपयोगिता और बढ़ गई है–*अश्विनौ नामक देवताओं का युग्म शल्य और चिकित्सा संप्रदायों का मिश्रित रूप है। उनका आयुर्विज्ञान उच्च कोटि का है। वे आयुर्विज्ञान के सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों ही पक्षों के ज्ञाता हैं। वे विविध सर्जिकल और मेडिकल कार्य करने के कारण शल्यचिकित्सा विशेषज्ञ, नेत्र–कर्ण–दंत–अस्थि–त्वक् रोग विशेषज्ञ, स्त्रीरोग तथा पशुरोग विशेषज्ञ हैं। आयुर्विज्ञान के सभी क्षेत्रों पर उनका समानाधिकार है।*[6]

भारत की प्राकृतिक संपदा में औषधियों का बड़ा महत्त्व है। यहाँ की भौगोलिक संरचना में, औषधियों को फलने–फूलने का अवसर मिलता है। यहाँ की जलवायु भी इनका संरक्षण करती है। यह क्रम वैदिक काल से ही निरंतर चला आ रहा है, जिसका वर्णन हमारे ग्रंथों में मिलता है– *वैदिक युग से ही मानव मन वनस्पतियों की इस विविधता से हठात् आकर्षित होता रहा है। संस्कृत साहित्य में वनस्पति शास्त्र का इतिहास वैदिक युग से ही प्रारंभ होता है। यह शास्त्र वैदिक कर्मकांड से विकसित हुआ। वैदिक अनुष्ठानों के लिए विभिन्न वनस्पतियों की उपादेयता थी। अतः वैदिक युग*

में अनेक पेड़–पौधों को खोजने और नामकरण का अथक प्रयास किया गया। 'ऋग्वेद', 'यजुर्वेद' और विशेष रूप से 'अथर्ववेद' में विभिन्न वनस्पतियों का वर्णन है।[7]

आज़ादी के बाद एक ऐसी शिक्षा पद्धति विकसित हुई या की गई जिसमें संस्कृत को कर्म–कांड की भाषा तथा हमारे वैदिक और संस्कृत साहित्य को कर्म–कांड और अंधविश्वास का साहित्य कहकर दुष्प्रचार किया गया। यही कारण है कि सामान्यतः लोगों को यह भ्रम है कि संस्कृत भाषा और साहित्य अवैज्ञानिक है जबकि अब यह सिद्ध हो चुका है कि विज्ञान की प्रगति में संस्कृत के मंत्रों की उपयोगिता महनीय है। आज जिस तरह से योग और ध्यान की ओर लोग बढ़ रहे हैं, मंत्रों द्वारा मानसिक सुकून प्राप्त कर रहे हैं वह पूर्णतः वैज्ञानिक है– *सर विलियम जोन्स, प्रो. मेक्समूलर, प्रो. विल्सन, प्रो. बोटलिन्क, प्रो. फर्ग्यूसन, प्रो. गोल्डस्टकर, प्रो. जे. डी. बर्नेल तथा अनेक अन्य विद्वानों ने विज्ञान के क्षेत्र में भारतीयों के योगदान को स्वीकार किया है। श्री ब्रजेंद्रनाथ सील ने 'The Positive Sciences of the Ancient Hindus', श्री. पी. सी. रॉय ने 'Hindu Chemistry', श्री सत्य प्रकाश ने 'Founders of Sciences in Ancient India', श्री एन. के. जैन ने 'Sciences and Scientists in India', आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री ने 'Sciences in the Vedas', डॉ. ओ. पी. जग्गी ने 'Scientists of Ancient India' में विज्ञान की दृष्टि से संस्कृत साहित्य के महत्त्व को प्रतिपादित किया है। श्री ए. के. बिश्वास, श्री शंकराचार्य भारती, डॉ. डी. के. मेहता तथा अन्य वैज्ञानिकों ने भी संस्कृत साहित्य के आधार पर प्राचीन भारत में वैज्ञानिक विकास को उजागर किया है।*[8]

हमारे वेदों में वनस्पतियों द्वारा तमाम रोगों के निदान की व्यवस्था है। भारत की जलवायु एलोपैथिक दवा के हिसाब से सही नहीं है इसलिए प्राकृतिक प्रणाली द्वारा इलाज किया जाता रहा है। वर्तमान में तो इसकी उपयोगिता लगातार बढ़ी है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में इसे आत्मनिर्भरता से भी जोड़कर देखा गया है– *वैदिक भारतीयों को वनस्पतियों के औषधीय गुणों का पर्याप्त ज्ञान था तथा औषधीय वनस्पति चिकित्सा पद्धति का अत्यधिक प्रचलन था। वनस्पतियों के औषधीय गुणों को परख कर उनसे विभिन्न रोगों का उपचार होता था। वैदिक काल में औषधीय वनस्पतियों की खेती की संभावना भी है।*[9]

भारत का संस्कृत साहित्य विश्व चिकित्सा के क्षेत्र में अपने अपूर्व योगदान के लिए जाना जाता है। औपनिवेशवादी वैचारिकी ने हमारी ऋचाओं को कर्मकांड का मंत्र कहकर उसकी उपेक्षा की जबकि ऐसा नहीं है। प्राचीन समय में इन मंत्रों का वैज्ञानिक प्रभाव तो था ही, आज भी बना हुआ है। कहते हैं प्राकृतिक चिकित्सा में आज भी बहुत सारे रोगों का इलाज मंत्रों द्वारा किया जाता है। संस्कृत साहित्य केवल धार्मिक प्रचार का साहित्य नहीं है– *चिकित्सा क्षेत्र में संस्कृत शास्त्र ज्ञान के अपूर्व कोश हैं। अथर्ववेद में लगभग 99 रोगों के लक्षण एवं उनकी उपचार विधि विहित है। वहाँ रोगों के उपचार*

की चार विधियाँ बतलाई गई हैं– औषधि, मणि, मंत्र तथा तंत्र। जलचिकित्सा (6/91/3) सूर्यचिकित्सा, मनोवैज्ञानिक चिकित्सा (20/96/7) स्पर्शचिकित्सा (20/96/7) तथा प्राणिक चिकित्सा (4/6/2) जो आजकल इतनी अधिक प्रचलित हैं, इन सबका उल्लेख भी अथर्ववेद में है। एक स्थल पर स्पर्शमात्र से ही मरणासन्न व्यक्ति को पुनर्जीवित करने का वर्णन है।[10]

हमारे सभी वेदों में अथर्ववेद मूलतः आयुर्वेद के ज्ञान का स्रोत है। औषधियों और वनस्पतियों की विशद जानकारी इसमें मिलती है। आज जिस तरह से प्राकृतिक चिकित्सा का विस्तार हुआ है, उसमें अथर्ववेद की भूमिका अहम् है। प्राचीन समय में जब आधुनिक विज्ञान का पता तक नहीं था, तब इसी के द्वारा मानव का इलाज किया जाता था। वास्तव में हमारे वेद वैज्ञानिक थे। ओम का उच्चारण, महामृत्युंजय मंत्र, गायत्री मंत्र द्वारा आज भी कई बड़ी बीमारियों का इलाज संभव है। मन और आत्मा की बिगड़ी हुई स्थिति को यथास्थित करने में हमारे मंत्रों की महनीय भूमिका है। अथर्ववेद चिकित्सा का ज्ञान सागर है– *अथर्ववेद के ज्ञान के बिना आयुर्वेद का सूक्ष्म, गहन, गंभीर अध्ययन कर पाना सर्वथा असंभव है। जिन औषधियों और वनस्पतियों का निर्देश अथर्ववेद में है, उनमें से बहुत सी औषधियों और वनस्पतियों का प्रयोग आज भी आयुर्वेद में भी किया जाता है। आयुर्वेद पूर्णतः वनस्पतियों का ही वेद है।*[11]

इस प्रकार देखें तो आज हम जिन वैज्ञानिक उपलब्धियों पर गर्व करते हैं, उनके सूत्र हमारी ज्ञान परंपरा में पहले से मौजूद थे। भारत आरंभ से ज्ञान और विज्ञान का केंद्र रहा है। आरंभिक काम से लेकर आज तक उसकी उपयोगिता बनी हुई है। बीच में हमें भटकाने का कार्य अवश्य किया गया लेकिन अब स्थितियाँ बदल गई हैं। हम अपनी विरासत की ओर लौट रहे हैं, उसके महत्त्व को समझ रहे हैं। अब यह परंपरा हमारी आने वाली पीढ़ियों में निरंतर चलती रहेगी। अब इसे कोई अवरुद्ध नहीं कर सकेगा क्योंकि राष्ट्रीय शिक्षा की नई नीति में जो बदलाव आया है, उसे बदलना अब बहुत मुश्किल होगा।

संदर्भ :–

1. साहित्य का धर्म, श्रीधर पराड़कर, अखिल भारतीय साहित्य न्यास, दिल्ली, पृष्ठ–8
2. भारतीय ज्ञान परंपरा और साहित्य, संपादक डॉ. दिलीप मेहरा, (लेख) भारतीय ज्ञान परंपरा और सगुण भक्ति, प्रो. विनय कुमार सिंह, विकास प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ–38
3. भारतीय ज्ञान परंपरा और साहित्य, संपादक डॉ. दिलीप मेहरा, (लेख) भारतीय ज्ञान परंपरा एवं सूरदास की भक्ति भावना, डॉ. एन. टी. गामीत, विकास प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ–47
4. भारतीय ऋषि परंपरा के सुप्रसिद्ध गणितज्ञ एवं खगोलशास्त्री आर्यभट्ट,

गुंजन वार्ष्णेय, नवभारत टाइम्स.कॉम, 21 जुलाई 2024
5. भारतीय ऋषि परंपरा के सुप्रसिद्ध गणितज्ञ एवं खगोलशास्त्री आर्यभट्ट, गुंजन वार्ष्णेय, नवभारत टाइम्स.कॉम, 21 जुलाई 2024
6. संस्कृत विज्ञान दीपिका, निर्मल त्रिखा, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, संस्करण 2008, पृष्ठ–12
7. संस्कृत विज्ञान दीपिका, निर्मल त्रिखा, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, संस्करण 2008, पृष्ठ–19

❑❑❑

पुल पार करने से
पुल पार होता है
नदी पार नहीं होती
नदी पार नहीं होती नदी में धँसे बिना
नदी में धँसे बिना
पुल का अर्थ भी समझ में नहीं आता
नदी में धँसे बिना
पुल पार नहीं होता
सिर्फ लोहा लंगड़ पार होता है
कुछ भी नहीं होता पार
नदी में धँसे बिना
न पुल पार होता है
न नदी पार होती है।

✍ नरेश सक्सेना

भारतीय ज्ञान परंपरा: चिंतन एवं विज्ञान का समायोजन

✍ डॉ. संगीता कुमारी

भारतीय ज्ञान परंपरा भारतीयता के उन तत्वों की पहचान से संबद्ध है जो एक प्रकार से अपनी चेतना को अपनी ही स्मृतियों में तलाशने का प्रयास हैं। सामान्यतः भारतीय ज्ञान परंपरा का प्रस्फुटन भारतीय दर्शन में निहित है। *हम जिस जगत में रहते हैं और इस जगत के साथ हमारा जो संबंध है, उसकी समेकित अवधारणा ही दर्शन है। दर्शन मनुष्य की मूल उत्पत्ति और उसकी समस्याओं की, प्रकृति और ब्रह्मांड की, ज्ञान, विचार, जीवन, कला और धर्म की समस्याओं की, चिंतन और अस्तित्व के बीच मूलभूत संबंध की समस्याओं की, पदार्थ और मस्तिष्क के बीच संबंध की समस्याओं की व्याख्या करता है। क्या इस ब्रह्मांड का ईश्वर ने निर्माण किया है? अथवा यह अनादिकाल से मौजूद है? पहले किसका उद्‌भव हुआ– पदार्थ का अथवा आत्मा का, अस्तित्व का अथवा विचार का?*[1] भारतीय ज्ञान परंपरा इसी जिज्ञासा और प्रश्नानुकूलता की अभिव्यक्ति है। हमारा विपुल साहित्य वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, स्मृतियाँ, गीता, रामायण, पुराण आदि जहाँ जीवनानुभव और मूल्यों के संरक्षण में सहायक है, वहीं बौद्ध–दर्शन, जैन–दर्शन, षड्–दर्शन के रूप में न्याय, सांख्य, वैशेषिक, योग, मीमांसा आदि भौतिक दर्शन बौद्धिकता और तर्क के माध्यम से ज्ञान–पिपासा को परिमार्जित करते रहे हैं। इसी तरह उत्तरमीमांसा (वेदांत) भी है जिसका बादरायण ने प्रतिपादन किया था। बाद में शंकराचार्य ने उपनिषद, ब्रह्मसूत्र और भगवद्‌गीता पर टीकाएँ लिखीं जो शंकर के वेदांत के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सांख्य दर्शन का प्रभाव भगवद्‌गीता पर भी है। एक प्रकार से कह सकते हैं कि सांख्य और योग दर्शन ने भगवद्‌गीता के दार्शनिक विचारों की आधारशिला निर्मित की। दरअसल, यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि ऐसे समय में जब ज्यादातर अनीश्वरवादी दर्शन ने संसार से विमुखता और पलायनवादी रुख को बढ़ावा दिया; भगवद्‌गीता में निहित कर्मवादी प्रेरणा ने लोगों के मस्तिष्क का नैतिक उन्नयन भी किया और उन्हें आस्थावान और कर्मवादी बनाने में प्रेरक भूमिका निभाई। निष्काम कर्म की अवधारणा जहाँ तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था को व्यवस्थित करने में उपयुक्त सिद्ध हुई, वहीं उसने एक प्रकार से वेदांत दर्शन को भी समृद्ध किया। यही नहीं,

ज्ञान की यह अभिन्न स्थिति भगवद्गीता में भी रूपायित होती है।

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।

युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः ।।(8)

भगवदगीता के छठे अध्याय में वर्णित इस श्लोक में बतलाया गया है कि *जिसका अंतःकरण ज्ञान–विज्ञान से तृप्त है, जिसकी स्थिति विकार रहित है, जिसकी इंद्रियाँ भलीभाँति जीती हुई हैं और जिसके लिए मिट्टी, पत्थर और सुवर्ण समान हैं वह योगी युक्त अर्थात भगवत्–प्राप्त है। दरअसल, यहाँ बतलाया गया है कि परमात्मा के निर्गुण–निराकार तत्त्व के प्रभाव तथा माहात्म्य आदि के रहस्य रहित यथार्थ ज्ञान को 'ज्ञान' और सगुण एवं साकार तत्व के लीला, रहस्य, महत्त्व, गुण और प्रभाव आदि के यथार्थ ज्ञान को 'विज्ञान' कहते हैं।*[8]

इसी प्रकार न्याय दर्शन तर्क और ज्ञान पर आधारित है। इसकी उत्पत्ति अक्षपाद गौतम के सूत्रों से हुई। वैशेषिक दर्शन न्याय दर्शन का ही पूरक है। यह एक प्रकार का परमाणु दर्शन है जो भौतिक विज्ञान से संबद्ध है। इसके प्रवर्तक उलूक कणाद हैं। इस दर्शन के अनुसार इस विश्व का निर्माण परमाणुओं से हुआ है जो शाश्वत है। यह यथार्थवादी दर्शन है जो तर्क को केंद्रीयता प्रदान करता है, इसलिए यहाँ आत्मा और पदार्थ के द्वैत को प्रतिस्थापित किया गया है। सांख्य दर्शन में भी प्रकृति एवं पुरुष के ध्रुवीकरण पर बल दिया गया है। सांख्य दर्शन के प्रवर्तक कपिल हैं। यहाँ प्रकृति की व्याख्या के क्रम में रजोगुण, तमोगुण और सतोगुण की विशेषता बतलाई गई है। जैन धर्म का प्रच्छन्न प्रभाव सांख्य दर्शन पर है। द्वैतवादी दर्शन होने के कारण इस पर वैशेषिक दर्शन का भी प्रभाव है और एक प्रकार से सांख्य दर्शन और न्याय दर्शन सम्मिलित रूप से भारतीय तर्कशास्त्र और ज्ञानमीमांसा को विकसित करते हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा का यह सुंदर पक्ष है कि यहाँ दर्शन, विज्ञान, आयुर्विज्ञान, प्रौद्योगिकी, साहित्य, तर्कशास्त्र के साथ सभी विषयों का अद्भुत सम्मिश्रण है। इसलिए सम्मिलित रूप से विज्ञान, आयुर्विज्ञान और प्रौद्योगिकी के बारे में सामान्य जन तक पहुँचाने का कार्य विज्ञान लेखन द्वारा हुआ। हालाँकि उस समय विज्ञान लेखन में संकायों का कोई महत्वपूर्ण विभाजन नहीं है। आज लेखन के विभिन्न माध्यम अस्तित्व में हैं, जैसे– पत्र–पत्रिकाएँ, समाचार पत्र, किताबें, वेबसाइट, ब्लॉग लेखन, विभिन्न वेबसाइट जहाँ आप घर बैठे टाइप करके किसी भी विषय पर जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। प्राचीन काल में वस्तुतः ऐसी सुविधाएँ नहीं थी और पठन–पाठन की प्रक्रिया सर्वसुलभ नहीं थी। फिर भी प्रकृति प्रदत्त औषधियाँ, आयुर्वेद, चरक संहिता, आदि ऐसे ग्रंथ थे जहाँ शल्य चिकित्सा की प्रविधियाँ और उपाय भी लिपिबद्ध हैं। सुश्रुत संहिता को जहाँ शल्य चिकित्सा का जनक भी कहा जाता है, वहीं चरक संहिता आयुर्वेद का एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है जो आहार, औषधियों और जीवनशैली से संबंधित है। यानी

प्राचीन काल से ही हम स्वास्थ्य संबंधी प्रयोग, तकनीकी, भौतिक विज्ञान एवं ज्योतिष शास्त्र से परिचित थे, साथ ही नक्षत्रों का ज्ञान भी था।

इसे यदि हम वैशेषिक दर्शन के संदर्भ में ही देखें, तब यहाँ यह स्पष्ट है कि किस प्रकार विज्ञान और नैतिक संस्कार का कोई स्पष्ट विभाजन नहीं है– "कणाद के अनुसार प्रत्येक द्रव्य के अपने गुण होते हैं। मूल सूत्रों में इस प्रकार के सत्रह गुण गिनाए गए हैं– (1) रूप (2) रस (3) गंध (4) स्पर्श (5) संख्या (6) परिणाम (7) प्रत्येकत्व (8) संयोग (9) विभाग (10) परत्व (11) अपरत्व (12) बुद्धि (13) सुख (14) दुख (15) इच्छा (16) द्वेष (17) प्रयत्न। बाद में प्रशस्तपाद ने (चौथी शताब्दी का अंत) इस सूची में सात गुण और जोड़ दिए। ये गुण थे:– (1) गुरुत्व (2) द्रवत्व (3) स्नेह (4) धर्म (5) अधर्म (6) शब्द और (7) संस्कार।"[3]

यानी भारतीय दर्शन में ज्ञान–विज्ञान का समायोजन और अपनी प्रकृति से लगाव, परिवेश के प्रति सजगता स्वाभाविक रूप से विद्यमान थी। लेकिन आधुनिक शिक्षा व्यवस्था ने पारंपरिक शिक्षा व्यवस्था को कई स्तरों पर विखंडित किया। हालाँकि इसका एक अच्छा पक्ष भी हमारे समक्ष उपस्थित हुआ, वह यह कि भारतीय बुद्धिजीवी आत्ममंथन के लिए विवश हुए और उन्होंने इसे एक चुनौती की तरह लिया। लेकिन इसकी सीमा यह रही कि एक तरफ़ तो इनका अपनी परंपरा के प्रति नैसर्गिक झुकाव था और दूसरी तरफ़ अंग्रेज़ी शैक्षणिक नीतियों के प्रति आकर्षण भी था। यह स्थिति आने वाली पीढ़ी के लिए अत्यंत भ्रामक सिद्ध हुई। विकासवाद के नाम पर जिस शैक्षणिक प्रणाली को लागू किया गया, उसने एक ऐसी पीढ़ी का निर्माण किया जिनके पास ज्ञान अर्जित करने का धैर्य समाप्त हो गया। महज जीविकोपार्जन से परिचालित इस व्यवस्था में सर्वप्रथम नैतिक मूल्यों का क्षरण प्रारंभ हुआ और एक ऐसी भाषा को ज्ञान प्राप्त करने का माध्यम बनाया गया जिसके सांस्कृतिक बोध से हमारा कोई परिचय ही नहीं था। ज़ाहिर है, ऐसे में हम आयातित भावनाओं और विधाओं को प्रकट करने के लिए विवश हुए और परिणामतः हमने अपनी परंपरा को धूमिल किया। 1835 में मैकाले शिक्षा पद्धति लागू की गई। इसे लागू करने को लेकर कई विवाद हुए लेकिन शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेज़ी भाषा को अपना लिया गया और यह अवधारणा रखी गई कि ऊपर के स्तर पर अंग्रेज़ी भाषा के माध्यम से पाश्चात्य शिक्षा का प्रसार किया जाएगा एवं वह भारतीय जो अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त करेंगे, वह निचले स्तर पर पाश्चात्य शिक्षा का प्रचार–प्रसार करेंगे। इसके बाद शिक्षा से जुड़ी कई समितियाँ आई और समय–समय पर इसमें कई बदलाव भी हुए। यहाँ महत्वपूर्ण यह था कि अब अंग्रेज़ी राज के विरुद्ध संघर्ष राजनीतिक के साथ–साथ सांस्कृतिक स्तर पर भी समस्या उत्पन्न करने वाला था जिसे हम आज के परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। सर्विस मुहैया कराने के नाम पर हमने आर्थिक खाई को और भी मजबूत कर

दिया। एक ऐसा वर्ग तैयार कर दिया जो वस्तुतः मशीन में तब्दील हो गया और वह भूल गया कि वह मनुष्य है, उसे अधिकार है खुली प्रकृति में जीवन जीने का। आज समाज में बड़ी संख्या में बढ़ रही हिंसा, अमानुषिक व्यवहार, हत्याएँ, व्यभिचार, बलात्कार आदि घटनाओं के पीछे का कारण यही है कि हम आज की पीढ़ी को जो मूलभूत शिक्षा मुहैया करा रहे हैं, वह मूल्यविहीन है। यह अनायास नहीं है हम योग दर्शन की ओर उन्मुख हुए हैं जहाँ सिर्फ़ आध्यात्मिक सुख की प्राप्ति नहीं होती वरन् मानसिक और शारीरिक एकाग्रता भी बढ़ती है। परंपरा का प्रवाह हमारे भीतर सहज रूप में विद्यमान है। ज्ञान केवल पुस्तक आधारित नहीं है। सत्य की खोज ही ज्ञान का आधार है। मूल्य आधारित शिक्षा, उद्यमशीलता प्राचीन और मध्यकाल से ही शिक्षा प्राप्त करने का उद्देश्य रहा है। कुल मिलाकर भारत में शिक्षित होना ज्ञान अर्जित करने से संबंधित था। ज्ञान का अर्जन केवल जीविका के लिए नहीं था; यह एक महनीय और पवित्र कार्य था इसलिए शिष्यों से जो मिल जाए, गुरु उसी में संतुष्ट रहते थे। वाल्मीकि, वशिष्ठ, विश्वामित्र, परशुराम, संदीपनी, द्रोणाचार्य आदि ऋषियों द्वारा गुरुकुल का संचालन ऐसे ही उद्देश्यों और लक्ष्यों से संचालित था। योग्य शिष्य की तलाश करना, राजा का पुत्र हो या साधारण मनुष्य; गुरु के समक्ष सभी समान होते थे। प्रतिभा और मेहनत के आधार पर शिष्यों का चयन होता था। और यही सब वे कारण हैं कि भारतीय दर्शन को समझने और ज्ञान प्राप्त करने के लिए देश–विदेश से लोग आते थे। प्राचीन काल में ह्वेनसांग, फाहियान, इत्सिंग, जैसे विदेशी यात्रियों का भारत अध्ययन के लिए आना हमारी इन्हीं गौरवशाली समृद्ध परंपरा की परिचायक है। यही नहीं, प्राचीन दर्शन की अलग–अलग धाराएँ तथा विविध मतैक्य उस समय के साहित्यिक धाराओं को अपनी मूल्य चेतना तथा प्राणदा शक्ति से प्रभावित कर रहे थे। वहीं मध्य काल के संत, सूफ़ी कवियों चाहे वह किसी सगुण ब्रह्म के उपासक हों या निर्गुण ब्रह्म के, वे भी किसी दार्शनिक मतवाद में बँधे नहीं थे। विभिन्न दार्शनिक मतैक्यों के अनुयायी होने के बावजूद सब के स्वर कमोबेश एक से थे। अनुभवजन्य ज्ञान, श्रम की महत्ता, उद्यमशीलता, साथ ही अनुशासन, सहनशीलता, मर्यादा, आदर्श जैसे जीवन–मूल्यों को एक साथ लेकर चले।

कुल मिलाकर भारतीय ज्ञान परंपरा को समझने के लिए यहाँ की साहित्यिक और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों को समझना होगा। ज्ञान की प्राप्ति निष्ठा, आस्था, विनम्रता और अहंकार से मुक्ति से ही संभव है। भगवद्गीता के चौथे अध्याय के चौतीसवें श्लोक में भली–भाँति इस बात को दर्शाया गया है–

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः । (37)

उस ज्ञान को तू तत्वदर्शी ज्ञानियों के पास जाकर समझ, उनको भलीभाँति दंडवत प्रणाम करने से, उनकी सेवा करने से और कपट को छोड़कर सफलतापूर्वक प्रश्न करने से वे परमात्मा तत्त्व को भलीभाँति जानने वाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञान का उपदेश करेंगे।[4]

अर्थात् ज्ञान की प्राप्ति कठिन साधना और धैर्य के साथ–साथ अहंकार के त्याग से ही होगी। कह सकते हैं कि भारतीय ज्ञान परंपरा पारंपरिक और प्रासंगिक जीवन–मूल्यों की उत्कट अभिव्यक्ति है।

संदर्भ सूची:–

1. के. दामोदरन, भारतीय चिंतन परंपरा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2018, पृ. 81
2. जयदयाल गोयन्दका (टीकाकार), श्रीमद्भगवद्गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर, 2023, पृ. 348
3. के. दामोदरन, भारतीय चिंतन परंपरा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2018, पृ. 161
4. जयदयाल गोयन्दका (टीकाकार), श्रीमद्भगवद्गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर, 2023, पृ. 278

❑❑❑

प्राप्ति स्वीकार

1. देवेंद्र सत्यार्थी की चुनिंदा कहानियाँ/गुरचरण सिंह अरशी, अनुवाद– डॉ. जुनीता/राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत/नेहरू भवन, 5 इंस्टीटयूशनल एरिया, फेज–II, वसंत कुंज, नयी दिल्ली–110070/प्रकाशन वर्ष 2016 /मूल्य–245/पृष्ठ– 293
2. सिक्किम लोकजीवन और संस्कृति/वीरेंद्र परमार/मित्तल पब्लिकेशन/4549/9, दरिया गंज, नयी दिल्ली–110002/प्रकाशन वर्ष 2024/मूल्य–700/पृष्ठ–170
3. मैथिली कविता संचयन/गंगेश गुंजन/राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत/नेहरू भवन, 5, इंस्टीटयूशनल एरिया, फेज–II, वसंत कुंज, नयी दिल्ली–110070/प्रकाशन वर्ष 2012/मूल्य–105/पृष्ठ–238
4. संभवामि युगे–युगे/कुमार सुरेश/विद्या विहार/19, संत विहार, गली नं–2, अंसारी रोड, नयी दिल्ली–110002/प्रकाशन वर्ष 2024/मूल्य–300/पृष्ठ– 199
5. किस्से कवि सम्मेलनों के/डॉ. कीर्ति काले/प्रभात प्रकाशन/4/19, आसफ अली रोड, नयी दिल्ली–110022/प्रकाशन वर्ष 2023/मूल्य–300/पृष्ठ– 208
6. मेरे प्रिय नाटक/सुरेंद्र वर्मा/राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत/नेहरू भवन, 5, इंस्टीटयूशनल एरिया, फेज–II, वसंत कुंज, नयी दिल्ली–110070/प्रकाशन वर्ष 2016/मूल्य– 375/पृष्ठ–380
7. भारत मुझमें बसता है/आराधना झा श्रीवास्तव/ग्रंथ अकादमी/भवन सं.–19, पहली मंजिल 2, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली–110002/प्रकाशन वर्ष 2025/मूल्य– 500/पृष्ठ–303
8. देह मन माध्यम तुम्हारे योग का/प्रवीण कुमार/प्रभात प्रकाशन/4/19 आसफ अली रोड, नयी दिल्ली–110022/प्रकाशन वर्ष 2024/मूल्य–499/पृष्ठ– 127
9. बर्नियर की भारत यात्रा/फैण्किस वर्निया एम.डी./राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत/नेहरू भवन, 5, इंस्टीटयूशनल एरिया, फेज–II, वसंत कुंज, नयी दिल्ली–110070/प्रकाशन वर्ष 2020/मूल्य–110/पृष्ठ–196
10. श्रावस्ती का विजयपर्व/शत्रुघ्न प्रसाद/प्रभात प्रकाशन/4/19, आसफ अली रोड, नयी दिल्ली–110022/ प्रकाशन वर्ष 2024/मूल्य–400/पृष्ठ–174

❑❑❑

संपर्क सूत्र

1. **प्रो. श्रीराम परिहार**
   आजाद नगर, खंडवा, मध्यप्रदेश–450001
   फोन–9425342748, ई-मेल– shriramknw@gmail.com
2. **डॉ. आलोक सिंह**
   सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग, मेघालय–793022
   फोन–7308473440, ई-मेल– singhalok530@gmail.com
3. **प्रो. अजय कुमार मिश्र**
   संयुक्त निदेशक (प्रकाशन), केंद्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, दिल्ली –110058
   फोन–9968303243, ई-मेल– ajaykmishracsu@gmail.com
4. **डॉ रमाकान्त राय**
   सहायक प्राध्यापक, हिंदी पी आर राजकीय बालिका स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इटावा, उत्तर प्रदेश– 206001
   फोन–9838952426, ई-मेल– royramakantrk@gmail.com
5. **प्रो. पार्थ सारथी पांडेय**
   क्षेत्रीय निदेशक, केंद्रीय हिंदी संस्थान, क्षेत्रीय केंद्र (शिलांग), मावकसियांग, मावड़ियांगड़ियांग, आई.एच.एम. के पास, शिलांग–793018, मेघालय।
   फोन–9453230818, 9919179302, ई मेल– parthsarthi1974@gmail.com
6. **प्रो. निर्मला एस.मौर्य**
   95/1, Thid cross street, Gill Nagar, Chennai-600094
   फोन– 98840429444, ई-मेल– nirmala.s.mourya@gmail.com
7. **श्री प्रमोद भार्गव**
   शब्दार्थ, 49, श्रीराम कालोनी, शिवपुरी, मध्य प्रदेश–473551
   फोन– 9925488229, ई-मेल– pramod.bhargava15@gmail.com
8. **डॉ. दिनेश कुमार गुप्ता**
   सहायक आचार्य, अग्रवाल महिला शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, गंगापुर सिटी (राजस्थान) 322201
   फोन–9462607259, ई-मेल– dineshg.gupta397@gmail.com
9. **डॉ. रजनी प्रताप**
   हिंदी विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, पंजाब–147002
   फोन–9888370486, ई-मेल– rajnipartap@yahoo.co.in

10. **प्रोफ़ेसर संध्या वात्स्यायन**
हिंदी विभाग, अदिति महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय–110039
फोन–9911115352, ई-मेल–dr.sandhyavats@gmail.com
11. **Prof. Elangbam Vijay Lakshmi**
Uripok, Ningthoukhongjam, Leikai, Imphal -795001, Manipur
फोन– 9856138333, ई-मेल– vningthoukhongjam@gmail.com
12. **डॉ. सी. जय शंकर बाबु**
अध्यक्ष, हिंदी विभाग,पांडिच्चेरी विश्वविद्यालय, केंद्रीय विश्वविद्यालय, रजत जयंती, पुदुच्चेरी–605014
फोन–9442071407, 9442023405, ई-मेल– professorbabuji1@gmail.com
13. **श्री संजय गोस्वामी**
सह–संपादक, एसबीएसआरडी, सुरभि, बी–06 अणुशक्तिनगर, मुंबई–94
फोन– 8693863804, ई-मेल– goswamisanjay80@yahoo.in
14. **श्री चेतनादित्य आलोक**
श्रीशिव–हनुमान मंदिर के पास रोड नं. 03, विद्यानगर (पश्चिम) हरमू, रांची–834002, झारखंड
फोन–07870900083, ई-मेल– shrichetanji.writer@gmail.com
15. **डॉ. अमित सिंह**
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, श्यामलाल महाविद्यालय 'सांध्य', दिल्ली विश्वविद्यालय– 110032
फोन–8826467205, ई-मेल– amitsinghkharb1980@gmail.com
16. **डॉ. अनुशब्द**
हिंदी विभाग, तेजपुर विश्वविद्यालय, तेजपुर, नापाम, असम– 784028
फोन– 8876049200, ई-मेल– dranushabda@gmail.com
17. **प्रो. रवि शर्मा 'मधुप'**
सुर सदन, डब्ल्यू जेड– 1987, रानी बाग, दिल्ली–110034
फोन–9811036140, ई-मेल– drrvshrma@gmail.com
18. **श्री राज बहादुर गुप्ता**
फ्लैट–K-701, एमराल्ड एस्टेट, गुड़गाँव-122001
फोन–88955101664, ई-मेल–rbggupta57@gmail.com
19. **डॉ. राजीव रंजन**
कमरा नं–263, साबरमती छात्रावास, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली–110067,
फोन–98119 76738, ई-मेल– rajeevmsb@gmail.com

20. **डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू',**
विश्वाधरम, 40, राजश्री, विनायक नगर, उदयपुर–313001,
फोन–9673872766, ई-मेल– skjugnnu@gmail.com
21. **प्रो. अनूप कुमार गक्खड़**
विभागाध्यक्ष, संहिता और सिद्धांत, ऋषिकुल परिसर, उत्तराखंड आयुर्वेद विश्वविद्यालय, हरिद्वार– 249401
फोन–9410982602, ई-मेल– anupgakkar@yahoo.com
22. **डॉ. मनोज कुमार**
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, किरोड़ीमल महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली–110007
फोन–9728424929, ई-मेल– manoj5023@kmc.du.ac.in
23. **श्री सुजीत ठाकुर,**
एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, दयाल सिंह कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली–110003
फोन–9891053975, ई-मेल– sujitthakur@gmail.com
24. **श्री शिवम**
शोधार्थी, हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग, जम्मू केंद्रीय विश्वविद्यालय, जिला सांबा, जम्मू–कश्मीर–181143
ई-मेल– ranashivam834@gmail.com
25. **डॉ. सुधा पांडेय,**
असिस्टेंट प्रोफेसर, प्रोफेसर, शारिरीक शिक्षा विभाग, कालिंदी कॉलेज, दिल्ली–110003
फोन–9891665935, ई-मेल– pandey.sudha75@gmail.com
26. **सुश्री मधुबाला,**
शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
फोन–9717240774, ई-मेल– madhucmnegi@gmail.com
27. **डॉ. महेंद्र प्रजापति,**
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग (साहित्य अध्ययन पीठ), ड़ॉ बी. आर. अंबेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली–110015
फोन–9871907081, ई-मेल– mahendra prajapati39@gmail.com
28. **डॉ. संगीता कुमारी,**
हिंदी विभाग, जगजीवन महाविद्यालय (मगध विश्वविद्यालय), गया–824234
फोन–9810606585, ई-मेल– sangitakumarijnu@gmail.com

❑❑❑

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
भाषा पत्रिका की सदस्यता हेतु आवेदन पत्र

सेवा में,

निदेशक
केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, पश्चिमी खंड–7, आर. के. पुरम्, नई दिल्ली – 110066
ई–मेल – chdsalesunit@gmail.com
फोन नं. – 011–26105211 एक्सटेंशन नं. 248, 244

महोदय/महोदया,

कृपया मुझे भाषा (द्वैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए / पाँच वर्ष के लिए/ दस वर्ष के लिए दिनांक .... से सदस्य बनाने की कृपा करें। मैं पत्रिका का वार्षिक/ पंचवर्षीय/ दसवर्षीय सदस्यता शुल्क .... रुपये, निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नयी दिल्ली के पक्ष में नयी दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट सं. .... दिनांक .... भेज रहा/रही हूँ। कृपया पावती भिजवाएँ।

नाम : ....
पूरा पता : ....
....
....
मोबाइल/दूरभाष : ....
ई–मेल : ....
संबद्धता/व्यवसाय : ....
आयु : ....
पूरा पता जिस पर : ....
पत्रिका प्रेषित की जाए ....

सदस्यता	शुल्क डाक खर्च सहित
वार्षिक सदस्यता	रु. 250.00
पंच वर्षीय सदस्यता	रु. 1250.00
दस वर्षीय सदस्यता	रु. 2500.00

सदस्यता शुल्क सीधे www.bharatkosh.gov.in – Quick Payment – Ministry (007 Higher Education)- Purpose (Education receipt)--- 211766 JR. ADMN. OFFICER, CENTRAL HINDI DIRECTORATE में digital mode से जमा करवाई जा सकती है।

डिमांड ड्राफ्ट निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय के पक्ष में नयी दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए। कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम, पूरा पता और दूरभाष भी लिखें।

नाम एवं हस्ताक्षर

नोट : कृपया पते में परिवर्तन होने की दशा में कम से कम दो माह पूर्व सूचित करने का कष्ट करें।

निदेशालय की योजनाओं का संक्षिप्त परिचय

भाषा/वार्षिकी/साहित्यमाला योजना

भाषा, वार्षिकी और साहित्यमाला केंद्रीय हिंदी निदेशालय के महत्वपूर्ण प्रकाशन हैं जो हिंदी में प्रकाशित होते हैं। इन प्रकाशनों का उद्देश्य विभिन्न भारतीय भाषाओं के बीच समानता की खोज करना और आदान–प्रदान का द्वार प्रशस्त करना है।

1. द्वैमासिक पत्रिका 'भाषा'

इसमें हिंदी और हिंदीतरभाषी लेखकों की मौलिक और अनूदित रचनाओं को प्रकाशित किया जाता है। विभिन्न साहित्यिक विधाओं यथा कहानी, कविता, यात्रा–वृत्तांत, संस्मरण, साक्षात्कार, विवेचनापूर्ण निबंधों और समीक्षा लेखों के अतिरिक्त पत्रिका में व्याकरण, भाषा, भाषा–विज्ञान और इन पर आधारित तुलनात्मक लेखों को भी प्राथमिकता दी जाती है। पत्रिका के सामान्य अंक के साथ–साथ समय–समय पर प्रासंगिक विषेशांक भी प्रकाशित किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त प्रख्यात साहित्यकारों की जन्मशती, पुण्यतिथि और विशेष अवसरों पर 'भाषा' में उससे संबंधित सामग्री का समावेश कर अंकों को विशिष्ट बनाया जाता है।

2. वार्षिक पत्रिका 'वार्षिकी'

इसमें संविधान–स्वीकृत सभी भारतीय भाषाओं में वर्ष भर में प्रकाशित साहित्य के आधार पर तथा हिंदी साहित्य की सभी विधाओं पर समीक्षात्मक, सर्वेक्षणात्मक आलेख प्रकाशित किए जाते हैं। इसका उद्देश्य इन सर्वेक्षणात्मक आलेखों के माध्यम से वर्षभर में भारतीय भाषाओं के साहित्य तथा हिंदी भाषा में प्रकाशित विभिन्न साहित्यिक विधाओं से संबंधित प्रकाशित पुस्तकों की जानकारी से पाठकों को अवगत कराना है। तुलनात्मक भारतीय साहित्य में रुचि रखने वाले सभी पाठकों और शोधार्थियों के लिए इसका प्रकाशन अत्यंत उपादेय है।

3. साहित्यमाला ग्रंथ

भारतीय भाषाओं की मूलभूत एकता को दृढ़ करने और साहित्य–प्रेमियों में विभिन्न भाषाओं के साहित्य की जानकारी और अभिरुचि में वृद्धि करने हेतु इसका प्रकाशन किया जाता है।

पंजी. संख्या 10646/61
ISSN 0523-1418

भाषा (द्वैमासिक)
BHASHA-BIMONTHLY
पी. ई. डी. 305–6–2025
500

साहित्यमाला के अंतर्गत प्रकाशित ग्रंथ

1. भारतीय भाषाओं के साहित्य का संक्षिप्त इतिहास — 1974 ई.
2. भारतीय कहानी — 1976 ई.
3. भारतीय निबंध — 1982 ई.
4. इंदिराजी का हिंदी प्रेम — 1982 ई.
5. भारतीय एकांकी — 1989 ई.
6. भारतीय उपन्यास — 1990 ई.
7. जयशंकर प्रसादः सृजन के विविध आयाम — 1990 ई.
8. भारतीय नाटक एवं रंगमंच — 1992 ई.
9. साहित्यकार विवरणिका — 1992 ई.
10. भारतीय कवयित्रियाँ (भाग–एक) — 1993 ई.
11. स्वातंत्र्योत्तर भारतीय साहित्य — 1997 ई.
12. निराला का कालजयी व्यक्तित्व — 1998 ई.
13. भारतीय कवयित्रियाँ (भाग–दो) — 1998 ई.
14. भारतीय कविता में राष्ट्रीय चेतना — 1999 ई.
15. भारतीय कविताः तीन दशक — 2002 ई.
16. भारतीय उपन्यासः अंतिम दशक — 2006 ई.
17. हिंदी और विभिन्न भाषाएँ: तुलनात्मक अध्ययन (1961–1975) — 2010 ई
18. आदिवासी विमर्श — 2015 ई.
19. पूर्वोत्तर भारतीय साहित्य — 2017 ई.
20. पर्यावरण विमर्श — 2024 ई.
21. हिंदीतर भारतीय भाषाओं का साहित्येतिहास (प्रकाशनाधीन) — 2026 ई.

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110066
दूरभाषः–011–20862356/26105211
एक्सटेंशन– 248/234/231

Central Hindi Directorate
(Ministry of Education, Govt. of India)
West Block-7, Ramakrishnapuram,
New Delhi-110066
www.chd.education.gov.in

भाषा नवंबर–दिसंबर 2025